इकाई 1 हठयोग का अर्थ, परिभाषा एवं उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

योग आरंभ से ही अत्यन्त व्यापक विषय रहा है। कालान्तर में तो इसकी व्यापकता दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही गई आज वर्तमान समय में तो योग अत्यन्त व्यापक एवं बहुप्रचलित शस्य हो गया है। आज बच्चे के मुँह पर योग का नाम है। इसका प्रयोग इतने अलग–अलग अर्थों में होने लगा है कि योग की कोई एक सर्वमान्य एवं पूर्ण परिभाषा दे पाना कठिन है। यदि हम वर्तमान परिवेश की बात ना करें तो भी प्राचीनकाल से ही योग साधना के अनेक भेद किये जाते है! यथा ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, मंत्रयोग, लययोग, ध्यानयोग, हठयोग इत्यादि।

प्रस्तुत इकाई में योग विद्या के प्रमुख अंग हठयोग के स्वरूप एवं उद्देश्य के विषय में वर्णन किया जायेगा।

अब विद्यार्थियों के मन में यह जानने की जिज्ञासा हो रही होगी कि –

- हठयोग क्या है ? किस ऋषि द्वारा इसका प्रतिपादन किया गया ?
- हठयोग, योग की अन्य विद्याओं से किस प्रकार भिन्न है ?
- हठयोग की साधना किस प्रकार से की जाती है?
- किन–किन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हठयोग विद्या का प्रणयन किया गया ? इत्यादि।
- विश्वास है अगले पृष्ठों का सम्यक अध्ययन करने के बाद आप इन प्रश्नों के उत्तर जानने में सक्षम हो जायेंगे।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप –

- हठयोग के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे।
- हठयोग की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- हठयोग की विभिन्न विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे।
- हठयोग के उद्देश्यों का विवेचन कर सकेंगे।

1.3 हठयोग : अर्थ एवं स्वरूप

योग विद्या की विविध परम्पराओं में ''हठयोग'' का महत्वपूर्ण स्थान हैं। हठयोग विद्या को तंत्र विद्या के अत्यधिक निकट माना जाता है अर्थात् – ऐसा मत है कि तंत्र से ही हठयोग की उत्पत्ति हुई। संभवतः ऐसा मानने के पीछे यह कारण रहा होगा कि भगवान् आदिनाथ (शिव) ही इन दोनों विद्याओं (तंत्र एवं हठविद्या) के आदिप्रणेता थे। उन्हीं से इनका आवीर्भाव माना जाता है।

एक प्रचलित मान्यता के अनुसार 14वीं–15वीं सदी में भारत में तंत्र विद्या अपने चरम उत्कर्ष पर थी। अत्यधिक प्रचलित होने के कारण लोगों ने अत्यन्त गूढ इस विद्या का दुरूपयोग करना प्रारंभ कर दिया। परिणामतः समाज में सुख–समृद्धि के स्थान पर त्राहि–त्राहि मच गई। तब उस समय में नादसम्प्रदाय के आचार्यो मवचेन्द्रनाथ एवं गोराक्षनाथ ने इसके (हठविद्या) विकृत स्वरूप को परिष्कृत कर उसे जनसामान्य के लिए सुलभ सुगम ''हठयोग विद्या'' के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया जिसे राजयोग के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया गया है।

आचार्य जितेन्द्र कुमार पाठक कृत योग व्यायाम के अनुसार –

''सिद्धाचार्यो ने जिस काय साधन पर विशेष बल दिया था उसी को नाथ सम्प्रदाय के योगियों ने और अधिक विकसित करके उसे चरम विकास तक पहुॅचाया। यही काय साधन–प्रधान योग पद्धति हठयोग के नाम से प्रसिद्ध हुई।''

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत नाथ सम्प्रदाय के अनुसार – ''हठयोग का सबसे प्राचीन उल्लेख गुहच समाज में आता है, वहॉ बोधि प्राप्ति की विधि बता देने के बाद आचार्य ने कहा कि यदि ऐसा करने पर भी बोधि प्राप्त न हो आचार्य : ज्ञान न हो तो हठयोग का आश्रय लेना चाहिए।''

अतः यह स्पष्ट है कि हठयोग के आदि प्रेणता भगवान् शिव है। यह विद्या शिव–पार्वती संवाद के रूप में है। जिसे बाद में नाथ सम्प्रदाय के आचार्यों में जनसामान्य में प्रचलित किया।

''श्री आदिनाथय नमोऽस्तु,
तस्मै पेनोपदिष्टा हठयोग विद्या।
विभ्राजते प्रोन्नत राजयोग
मारोदुमिच्छोरधिरो हिणीव।।''

– (हठप्रदीपिका / 1 / 1)

अर्थात् उन सर्वशक्तिमान् अदिनाथ को नमस्कार है जिन्होंने हठयोग विद्या की शिक्षा दी, जो राजयोग के उच्चतम शिखर पर चढ़ने की इच्छा रखने चाले अभ्यासियों के लिए सीढ़ी के समान है।''

हठयोग : अर्थ एवं स्वरूप

हठयौगिक ग्रन्थों में हठयोग को ''प्राण निरोध प्रधान साधना पद्धति'' के रूप में अंगीकार किया गया है और तद्नुरूप अनेक प्रकार से हठयोग शब्द की व्युत्पत्ति मानी गयी है। एक मत के अनुसार 'ह' सूर्य का प्रतीक है और 'ठ' चंद्र का। अतः सूर्य और चंद्र का योग ही 'हठयोग' है। ये सूर्य और चंद्र वस्तुतः मानव शरीर में विद्यमान नाड़ियों के भी प्रतीक हैं, जिन्हें क्रमशः पिंगला या सूर्य नाड़ी और इड़ा या चंद्र नाड़ी कहा जाता है। परस्पर दो विपरीत धर्म वाले तत्वों के संकेत के रूप में भी 'ह' और 'ठ' का प्रयोग देखने को मिलता

है। यथा – प्राण और अपान, पित्त और कफ, ग्रीष्म और शीत, दिन और रात, शिव और शक्ति आदि।

मानव के अन्दर दो प्रमुख शक्तियॉ सदैव कार्य करती है ये हैं –

1) मनस् या चित् शक्ति
2) प्राणशक्ति

जिनके प्रतीक क्रमशः 'सूर्य' और 'चंद्र' है। 'ह' और 'ठ' का प्रयोग अन्य दूसरे अर्थों में भी किया जाता है। यथा –

	ह	**ठ**
1)	सूर्य	चंद्र
2)	पिंगला नाड़ी	इड़ा नाड़ी
3)	ग्रीष्म	शीत
4)	पित्त	कफ
5)	शिव	शक्ति
6)	दिन	रात
7)	रजस्	तमस

हठयोग की एक व्याख्या के अनुसार हकार का अर्थ प्राण वायु तथा ठकार का अर्थ अपान वायु हैं। अतः प्राणायाम के अभ्यास से प्राणायाम का संयोग या निरोध ही हठयोग हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भिन्न–भिन्न विद्वानों ने हठयोग कि व्याख्या भिन्न–भिन्न प्रकार से की है। वस्तुतः इड़ा–पिंगला में प्राण का संतुलन होने पर सुखम्ना में प्राण का प्रवाह होना तथा कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से षट्चक्रों का क्रमशः भेदन करते हुए साधक का समाधिस्थ हो जाना, आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना ही हठयोग है।

1.4 हठयोग : परिभाषा

विभिन्न ग्रन्थों में हठयोग को भिन्न–भिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है, जिसका विवेचन निम्नानुसार है

''हकारः कथितः सूर्य
ठकांरचंद्र उच्यते।
सूर्य चंद्रमसोर्योगात
हठयोग निगद्यते।।''

– (सिद्ध सिद्धान्त पद्धति)

अर्थात् ''हकार से सूर्य स्वर और ठकार से चंद्र स्पर को कहा गया है। सूर्य एवं चंद्र स्वर के योग को ही हठयोग कहते हैं।''

''हकारेण तु सूर्यः स्यात्
ठकारेणोन्दुअच्यते।
सूर्यचंद्रमसोरैण्यं
हठ इत्यभिधीयते।।''

– (योग शिखोपनिषद्)

अर्थात् ''हकार से आशय सूर्य स्वर से है और ठकार का अभिप्राय चंद्र स्वर से है। सूर्य एवं चंद्र के एक्य को हठयोग कहा जाता है।

हकार का अर्थ दॉये स्वर, पिंगला नाड़ी अथवा यमुना तथा ठकार का अर्थ बॉये स्वर, इड़ा नाड़ी गंगा लिया जाता है। अग्नि स्वर, सुषुम्ना स्वर। जरास्वती स्वर चलने लगता है,

परिणामस्वरूप ब्रह्मनाड़ी के निचले सिरे के पास कुंडलिनी शक्ति सुप्तावस्था में विद्यमान रहती है। साधक द्वारा नियमित प्राणायाम का अभ्यास करने पर प्राणाहात से लुप्त कुंडलिनी फुफंकार मारती हुई जाग जाती है तथा ब्रह्मनाड़ी में गमन करती है। जिससे साधक में अनेक विभूतियों का जागरण होता है और वह आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यह प्रक्रिया इस योग पद्धति का मूलाधार है। अतः इसे हठयोग के नाम से अभिहित किया गया है।

हठयोग प्रदीपिका के टीकाकार ब्रह्मानंदजी के अनुसार – ''हकार से तात्पर्य सूर्य अर्थात् प्राणवायु से है और ठकार से आशय चंद्र अर्थात् अपान वायु से है। इन दोनों का प्राणायाम द्वारा निरोध करना ही हठयोग है।''

''उद्घाटयेत् कपातं ह।
यथा कुञ्चिकाया हठात्।
कुण्डलिन्या तथा योगी
मोक्षद्वारं विभेदयेत्।।''

– (हठप्रदीपिका /3/101)

अर्थात् जिस प्रकार चाबी से हठता किवार खोलते हैं, उसी प्रकार योगी कुण्डलिनी द्वारा (हठात्) मोक्ष द्वार का भेदन करते है अथवा हठात् मोक्षद्वार को उद्घाटित करने वाली साधना पद्धति का नाम ही हठयोग है।

''प्राणवायु मुख्यरूप से कुछ दिनों तक एक रन्ध्र से प्रवाहित होती है और कुछ दिनों दूसरे से। दोनों रन्ध्रों से प्रवाहित वायु मन की चंचलता का कारक है। अतः कुशक द्वारा वायु प्रवाह को रोककर सुषुम्ना में प्रवाहित करना ही 'ह' और 'ठ' का योग हे। तभी उच्च अवस्था बनती है और राजयोग की प्रवृत्ति होती है। (रामहर्ष सिंह : स्वास्थ्यवृत्त विज्ञान, P. 2007, 297)

प्रश्न खण्ड (अ) खण्ड एवं (ब) को मिलाए –

(खण्ड अ)	**(खण्ड ब)**
राजयोग	चन्द्र, इड़ा, शीत
हकार	महर्षि पतंजलि
हठयोग	सूर्य, पिंगला, ग्रीष्म
ठकार	भगवान् आदिनाथ

1.5 हठयोग के उद्देश्य

हठयोग के अर्थ एवं स्वरूप को जानने के बाद मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि आखिर किस प्रयोजन की प्रर्ति हेतु हठयोग विद्या का प्रतिपादन किया गया ? अर्थात् हठयोग के उद्देश्य क्या है ? प्रस्तुत पृष्ठों में इसी विषय पर सविस्तार प्रकाश डाला जा रहा है।

हठयोग को राजयोग का अभिन्न अंग माना गया है। अथवा यदि यह कहा जाये कि हठयोग, राजयोग का पूर्वाभ्यास है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। इसी का उल्लेख करते हुए योगीन्द्र स्वात्माराम सूरी ने अपनी अमूल्य कृति हठप्रदीपिका के ''आसन विधि कथन'' नामक प्रथम उपदेश के 67वें श्लोक में कहा है –

''पीठानि कुम्भकाश्चित्रा।

स्र्वाण्यपि हठाश्यासे
राजयोग फलावधि।।''
— (हठप्रदीपिका /1/67)

अर्थात् 'विविध आसन, विविध कुंभक तथा विविध उत्कृष्ट मुद्राए ये सब हठयोग के अभ्यास राजयोग में सफल होने तक करने चाहिए।

वस्तुतः हठयोग एवं राजयोग मिलकर ही पूर्णयोग का निर्माण करते हैं। यद्यपि राजयोग का चरमलक्ष्य चित्त की समस्त वृत्तियों का पूर्णतः निरोध करना है तथापि पहले स्वस्थ शरीर से ही प्रारंभ की जाती है, तत्पश्चात् क्रमशः उत्तरोत्कर प्रगति होती है। हठयोग को कायासाधन — प्रधान पद्धति माना जाता है अर्थात् इसका प्रभाव प्रथम स्थूल शरीर पर पड़ता है, तदनन्तर क्रमशः सूक्ष्म एंव कारण शरीर पर। अतः हठयोग को राजयोग के शिखर पर आकढ़ होने के सोपान के रूप में स्वीकार किया गया है। हठ यौगिक ग्रन्थों में षट्कर्म आसन, मुद्रा, प्राणायाम इत्यादि का तब तक अभ्यास करने का निर्देश दिया गया है, जब तक कि हठयोग का एक प्रमुख उद्देश्य राजयोग की प्राप्ति है। शास्त्रों में हठयोग तथा योग की अन्य विधाओं को गोपनीय रखने के निर्देश दिये गये हैं ताकि सुपात्र जिज्ञासु साधक ही इसका अभ्यास कर सकें।

योगिराज स्वात्माराम सूरी जी ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है —

''हठयोग परं गोप्वा,
योगिनां सिद्धिमिच्छताम्।
भवेद्वीर्यवती गुप्ता
निर्वीर्यातु प्रकाशित।।''
— (हठप्रदीपिका/1/11)

अर्थात् ''योग में सिद्धि की इच्छा रखने वाले साधकों को यह हठविद्या नितान्त गुप्त रखनी चाहिए। गुप्त रहने पर यह शक्तिशालिनी होती है तथा प्रकट करने से यह शक्तिहीन हो जाती है।''

वस्तुतः जिस समय हठविद्या का प्रतिपादन किया गया था, उस समय यह सामान्य जन की पहुॅच से बाहर थी। उस समय योग साधना को मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से की जाने वाली साधना के रूप में ही जाना—समझा जाता था, किन्तु वर्तमान में परिस्थितियॉं बदल गई है। आमजन के बीच योग अत्यन्त लोकप्रिय होता जा रहा है। लोग इसकी महत्ता को समझ गये है और हठयोग के अभ्यास (षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्राणायाम आदि) तो विशेष रूप से लोगों द्वारा किये जाते है। आज योग का चिकित्सीय स्वरूप उभर कर हमारे सामने आ रहा है, जिसमें अनेक शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक रोगों के निदान में योग की अनेक तकनीकों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा रहा है। अतः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हठयोग के उद्देश्यों का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है—

1. राजयोग की प्राप्ति
2. समग्र स्वास्थ संवर्धन
3. आरोग्य की प्राप्ति
4. व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास
5. प्रसुप्त शक्तियों का जागरण
6. आत्म परिष्कार

1.राजयोग की प्राप्ति – हठविद्या का सर्वप्रथम प्रयोजन राजयोग की प्राप्ति है। हठयोग के अभ्यासों का तब तक श्रद्धापूर्वक किया जाता है, जब तक कि राजयोग में सफलता प्राप्त न हो जाये।

2. स्वास्थ्य का परिरक्षण – आयुर्वेद की भॉति ही हठयोग का भी एक प्रमुख उद्देश्य जो व्यक्ति स्वस्थ है, उसके स्वास्थ्य का और अधिक संवर्धन, संरक्षण करना है। विभिन्न हठयौगिक अभ्यासों जैसे षट्कर्म (धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभॉति), आसन, प्राणायाम इत्यादि से शरीर की शुद्धि होकर दृढ़ता की प्राप्ति होती है तथा मानसिक तनाव एवं भावनात्मक विक्षोभ दूर होकर आन्तरिक शांति की प्राप्ति होती है। परिणामस्वरूप शरीर में समुचित प्राणशक्ति का संचार होता है। सभी समुचित प्राणशक्ति का संचार होता है। सभी अंग–प्रत्यंग सुचारू रूप से कार्य करते है और अन्ततः समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

3. आरोग्य की प्राप्ति – रोगों से मुक्ति प्रदान करने में भी हठयोग के अभ्यास अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो रहे है। वर्तमान यांत्रिक एवं भौतिकवादी जीवन में हठयोग का चिकित्सकीय स्वरूप ही जनसामान्य के बीच अधिक लोकप्रिय है। विभिन्न प्रकार के शारीरिक रोगों जैसे कि कब्ज, मधुमेह, मोटापा, माइग्रेन, अस्थमा, अम्लपित्त, संधिपात इत्यादि में तथा साथ ही मनोरोगों (तनाव, चिन्ता, अवसाद इत्यादि) में भी शुद्धि क्रिया, आसन, मुद्रा प्राणायाम आदि का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा रहा है।

नेति क्रिया कान, नाक एवं गले से सम्बद्ध रोगों को दूर करने में अत्यन्त प्रभावशाली है। इसी प्रकार मत्स्येन्द्रासन का प्रभाव विशेष रूप से पाचन संस्थान पर होने के कारण यह उदर विकारों के शमन में लाभदायक है। हठप्रदीपिका में इसके महत्व को बताते हुए कहा भी गया है –

''मस्त्येन्द्रपीठं जठरं प्रदीप्तिं,
प्रचण्डकग्मण्डल खण्डनास्त्रम्।
अभ्यासतः कुण्डलिनी प्रबोधं,
चन्द्रस्थिरत्वं च ददाति पुंसाम्।।''

– (हठप्रदीपिका/1/27)

अर्थात् ''मत्स्येन्द्रासन का अभ्यास करने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। यह रोगों को नष्ट करने में अस्त्र के समान है। इससे कुण्डलिनी जागृत होती है तथा चन्द्रमंडल स्थिर होता है।

आसन के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करते हुए योगीन्द्र स्वात्मारामजी कहते है –

''कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं।
चाड्.गलाघवम।।''

– (हठप्रदीपिका/1/17)

अर्थात् ''आसन (शारीरिक एवं मानसिक) स्थिरता, आरोग्य तथा शरीर में हल्कापन का अनुभव लाता है।''

षटकर्मों के नियमित अभ्यास से अनेक रोग दूर होते हैं। कहा भी गया है –

''कासश्वासप्लीह कुष्टं कफरोगाश्च विंषतिः।
धौतिकर्मप्रभावेन प्रयान्त्येव न संशयः।।''

– (हठप्रदीपिका/2/25)

अर्थात् ''धौति क्रिया के फलस्वरूप खॉसी, दमा, तिल्ली, कुष्ठ तथा अन्य बीसों प्रकार के कफ सम्बन्धी रोग निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं।''

महर्षि घरेण्ड ने भी धौति की महत्ता को इंगित करते हुए कहा है –

''वातसारं परं गोप्यं
देहं निर्मलकारकम्।
सर्वरोगक्षय करं,
देहानलविवर्द्धकम्।।''

– (घेरण्ड संहिता/1/16)

अर्थात् ''वातसार अत्यन्त गुप्त क्रिया है। यह शरीर में निर्मलता लाने का कारण है। सभी रोगों को नष्ट करती है। जठराग्नि को तीव्र बनाती है।''

इसी प्रकार ''जलवस्ति'' के लाभों का वर्णन करते हुए घेरण्ड संहिता में कहा गया है –

'प्रमेहं च उदावर्त,
क्रूरवायुं निवारयेत्।
भवेत् स्वच्छन्ददेहश्च,
का मंदेवसमो भवेत्।।''

– (घेरण्ड संहिता/1/47)

अर्थात् ''यह जल वस्ति कर्म प्रमेह, उदावर्त क्रूर वायु का निवारण कर शरीर को कामदेव के समान सुन्दर बना देता है।''

अतः स्पष्ट है कि विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करने में हठयोग के अभ्यासों का अति महत्वपूर्ण योगदान है। इस क्षेत्र में किए जाने वाले अनुसंधान कार्यों ने भी इस बात को सिद्ध कर दिया है।

1. **व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास –** हठयोग का एक अन्य उद्‌देश्य साधक के व्यक्तित्व का समग्र विकास है अर्थात् न केवल शरीर को वरन् चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार को परिष्कृत बनाना है। जैसे–जैसे इन अभ्यासों को लम्बे समय तक नियमित रूप से पूर्ण श्रद्धा भाव से किया जाता है तो साधक के आन्तरिक एंव बाह्य स्तर में अनेक परिवर्तन लक्षित होने लगते हैं।

   ''हठसिद्धि के लक्षण'' के नाम से अभिहित किया गया है। मुख्यमण्डल पर चमक, नेत्रों में तेज स्विता, वाणी में मधुरता, आचरण में पवित्रता, व्यवहार में सादगी व सौम्यता तथा शरीर में हल्कापन इत्यादि गुणों का समावेश होने लगता है, जो उसके व्यक्तित्व का चहुँमुखी नियोजित विकास करते हैं। हठप्रदीपिका में इसी को स्पष्ट करते हुए कहा गया है–

''वायुः कृशत्वं बदने प्रसन्नता,
नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले।
अरोग्यता बिन्दुजयोडग्निदीपनम्।
नाड़ीविशुद्धिर्हठसिद्धिलक्षणम्।।''

– (हठप्रदीपिका/2/78)

अर्थात् ''शरीर में हल्कापन, मुख पर प्रसन्नता, स्वर में सौष्ठव, नयनों में तेजस्वता, रोग का अभाव, बिन्दु पर नियंत्रण, जठराग्नि की प्रदीप्ति तथा नाड़ियों की विशुद्धता ये सब हठसिद्धि के लक्षण है।

5. **प्रसुप्त शक्तियों का जागरण –** वास्तव में यदि देखा जाये तो योग की जितनी भी साधना–पद्धतियॉ है, चाहे हठयोग है, राजयोग हो, ज्ञानयोग–भक्तियोग,कर्मयोग इत्यादि जो भी हो, सभी का प्रयोजन बाहर से अन्दर की ओर यात्रा है अर्थात् योग वास्तव में अन्तर्जगूत की यात्रा का ज्ञान–विज्ञान है। हठयोग में पहले स्थूल शरीर पर नियंत्रण की बात कही गयी है। उसके बाद क्रमशः प्राण एवं मन मन को नियंत्रित करने का अभ्यास किया जाता है। हठयौगिक अभ्यासों से इंडा एवं पिंगला में प्राण का संतुलन होने से सुषुम्ना में प्राण प्रवाह होने लगता है। जिससे प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर उर्ध्वगामी हो षट्चक्रों का भेदन करती हुई शिव से मिल जाती है और साधक को योग के चरम लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

अतः स्पष्ट होता है कि हठयोग का एक प्रमुख उद्देश्य है – ''प्रसुप्ति से जागरण की यात्रा।''

6.आत्म परिष्कार – हठयोग का एक प्रमुख उद्देश्य ''आत्मपरिष्कार'' करना है। यह पूर्व में ही स्पष्ट किया जा चुका है कि हठयोग, राजयोग का अभिन्न अंग है तथा इसका अभ्यास तक किया जाता है, जब तक राजयोग की सिद्धि न हो जाये और राजयोग का अंतिम लक्ष्य मनोनिग्रह के माध्यम से चिप्त, के मलों को, विक्षेपों को, पंचक्लेशों (अविद्या, अष्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश) को दूर करना है। अतः यह कहा जा सकता है कि जो प्रयोजन राजयोग का है, वहीं हठयोग का भी है। वस्तुतः सभी योग साधनाओं का भी है। वस्तुतः सभी योग साधनाओं का चरम लक्ष्य तो एक ही है, बस यदि भिन्न है तो उस लक्ष्य तक पहॅुचने के मार्ग या पद्धतियॉ।

गुहचसमाज में कहा भी गया है –

''यदा न सिद्धयते बोधिर्हठयोगेन साधयेत्।''

– (गुहचसमाज)

अर्थात् ''यदि बोधि अर्थात ज्ञान प्राप्ति न हो तो हठयोग का आश्रय लेना चाहिए। अतः स्पष्ट है कि हठयोग का प्रमुख उद्देश्य तो राजयोग की प्राप्ति ही है किन्तु साथ ही स्वास्थ्य संवर्धन, रोगमुक्ति, व्यक्तित्व विकास, आत्मपरिष्कार तथा प्रसुप्त क्षमताओं का जागरण इत्यादि भी इसके प्रयोजन हैं, जिससे साधक को भौतिक एवं पारमार्थिक दोनों की क्षेत्रों में आनंद की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 1. ''मत्स्येन्द्रपीठं जठर प्रदीप्तिं.......''यह श्लोक किस ग्रन्थ का है ?

क. शिवसंहिता ख. घेरण्ड संहिता ग. वशिष्ठ संहिता घ. हठप्रदीपिका

प्रश्न 2. धौति क्रिया किसके अन्तर्गत आती है –

क. आसन ख. प्राणायाम ग. षट्कर्म घ. मुद्रा

प्रश्न 3. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए –

क. ....स्थिरता, आरोग्य तथा शरीर में हल्कापन का अनुभव लाता है।

ख. यह..................प्रमेह, उदावर्त, क्रूर वायु का निवारण कर शरीर को कामदेव के समान सुन्दर बना देता है।

1.6 सारांश

इड़ा एंव पिंगला नाड़ी में प्राण संतुलन होने पर सुषुम्ना में प्राण का प्रवाह होना तथा प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने पर क्रमशः षट्चक्रों को भेदन करते हुए शक्ति का शिव

से मिलन अथवा साधक का समाधिस्थ हो जाना ही हठयोग है, जो योगसाधना का चरम लक्ष्य है।

हकार – सूर्य नाड़ी का प्रतीक
ठकार – चंद्र नाड़ी का प्रतीक

हठयोग के उद्देश्य – हठयोग का सर्वप्रमुख प्रयोजन राजयोग की सिप्ति है। अन्य उद्देश्य निम्नानुसार हैं –

1. स्वास्थ्य परिरक्षण
2. आरोग्यता
3. व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास
4. प्रसुप्त शक्तियों का जागरण
5. आत्म परिष्कार।

शब्दावली

- विकार – रोग
- षट्कर्म – छः शुद्धि क्रियायें
- बोधि – ज्ञान
- उदावर्त्त – ऊपर जाने वाली वायु
- क्रूरवायु – दूषित वायु
- वस्ति – आंतों को शुद्ध करने वाली क्रिया
- धौति – शरीर को शुद्ध (स्वस्थ) बनाने की क्रिया
- प्रसुप्त – सोपी हुई, जो जागृत नहीं है
- मनोनिग्रह – मन पर नियंत्रण करना
- कुभंक – श्वॉस को बाहर या भीतर रोकना
- षट्चक्र – छः ऊर्जा केन्द्र
- कुंडलिनी शक्ति – चेतना शक्ति
- नाड़ी – जिनमें प्राण–प्रवाह होता है।

1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1. घ प्रश्न 2. घ
प्रश्न 3. (क) आसन (ख) जलवस्ति

1.9 संदर्भग्रन्थ सूची

1. सूरी, स्वात्माराम (2001), हठप्रदीपिका। कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनावला – 410403 (पुणे), महाराष्ट्र।
2. सरस्वती, निरंजनानंद (1997), घेरण्ड संहिता। योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।
3. सरस्वती, विज्ञानानंद (2007), योग विज्ञान। योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि की रेती, ऋषिकेश – 249192।

4. वशिष्ठ संहिता (1984) कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनबला (पुणे), महाराष्ट्र।
5. व्योतिर्मचानंद (1999) व्यावहारिक योग। इंटरनेशनल योग सोसाइटी, लालबाग, लोनी, 201102, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश।
6. सिंह रामहर्ष (2007) स्वस्थवृत्त विज्ञान। चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
7. सिंह रामहर्ष (1999) योग एंव यौगिक चिकित्सा। चौखंभा सूरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. हठयोग से आप क्या समझते है ? इसकी विभिन्न परिभाषाओं का विस्तार से विश्लेषण कीजिए।

प्रश्न 2.''हठयोग, राजयोग का अभिन्न अंग है।'' इस कथन की तर्कसहित व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 3. हठयोग के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।

इकाई– 2 सप्तसाधन

2.1 प्रस्तावना –

प्रिय विद्यार्थियों, इससे पूर्व की इकाई में आप हठयोग क्या है? विभिन्न विद्वानों ने किस–किस ढंग से इसे परिभाषित किया है, इसका स्वरूप एवं उद्देश्य क्या है। इत्यादि का अध्ययन कर चुके हैं।

प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है–

''सप्तसाधन'' महर्षि घेरण्ड, राजा चण्डकपालि को तत्वज्ञान का उपदेश देते हुये इसकी प्राप्ति के उपायों के विषय में बतलाते हैं।

महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति आत्मज्ञान की प्राप्ति हेतु घटस्थ योग अर्थात् हठयोग का अभ्यास करना चाहता है, तो उसके अन्दर इसके लिये पात्रता होनी चाहिये। पाठकों, जैसा कि हम सभी जानते है कि यदि हमें अपने जीवन में कुछ भी प्राप्त करना हो, कोई भी उपलब्धि हासिल करनी हो तो उसके लिये कुछ गुणों या योग्यताओं का विकास करना न केवल आवश्यक वरन् अनिवार्य है। जब सामान्य जीवन के लिये भी पात्रता या योग्यता का नियम लागू होता है तो, आध्यात्मिक क्षेत्र में तो बिना उपयुक्त पात्रता के उन्नति या परिष्कार की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

अतः पाठकों, महर्षि घेरण्ड ने योग मार्ग पर अग्रसर होने के लिये एक साधक में जो गुण आवश्यक है जो योग्यतायें, क्षमतायें उसके अन्दर होनी चाहिये, उन्हीं को 'सप्तसाधन'' की संज्ञा दी है। ऐसे गुण सात बताये गये हैं। अतः संख्या में सात होने से सप्तसाधन हैं। जैसे कि शुद्धता, दृढ़ता, स्थिरता, लाघवता इत्यादि।

अब आपके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि इन सप्तसाधनों को किस प्रकार से विकसित किया जा सकता है? इसमें क्या–क्या कठिनाइयाँ आ सकती हैं, इत्यादि। तो आइये, आपकी इन्हीं सब जिज्ञासाओं के समाधान के लिये चर्चा करते है सप्तसाधनों के स्वरूप पर।

2.2 उद्देश्य –

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत ईकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप–

- सप्तसाधन के अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे।
- सप्तसाधन कौन–कौन से है, इसका वर्णन कर सकेंगे।

- सप्तसाधनों का पारस्परिक विश्लेषण कर सकेंगे।
- सप्तसाधन की प्राप्ति के लिये कौन–कौन से हठयौगिक अभ्यास किये जाते हैं, इनका ज्ञान प्राप्त करेंगे।

2.3 सप्तसाधन : अर्थ–

हठयोग का या साधन–प्रधान साधना पद्धति है, जिसे महर्षि घेरण्ड ने घ्टास्थ योग नाम दिया है। महर्षि का मत है कि हठयोग के अभ्यास के लिये शरीर का शुद्ध होना, पवित्र होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना साधना में प्राप्ति नहीं हो सकती। इस शुद्धि को उन्होंने ''हाटशुद्धि'' का नाम दिया। अब प्रश्न यह उठता है कि ''हाटशुद्धि'' से क्या आशय है? यह शुद्धि किस प्रकार होती हैं? देखिये, 'हाटशुद्धि' का अर्थ यहां शारीरिक शुद्धता शारीरिक पवित्रता से नहीं वरन् शरीर शुद्धि के द्वारा आत्मशुद्धि करना है। इसको स्पष्ट करते हुये महर्षि घेरण्ड कहते हैं–

''आकुम्भ इवाम्भस्यो, जीर्यमाणः सदा घटः।
योगानलेन संदहय, घटशुद्धिं समाचरेत्।।''
– (घेरण्ड संहिता 1/8)

अर्थात् ''मिट्टी के कच्चे हाट में जल भर दिया जाये तो वह गलकर नष्ट हो जायेगा किन्तु यदि हाट को पका कर जल भरें, तो न गलेगा और नष्ट ही होगा। इसी प्रकार जीव के अपरिपक्व के विषय में समझना चाहिये। यह शरीर योगाग्नि के द्वारा ही परिपक्व हो सकता है। अतः शरीर को परिपक्व बनाने के लिये योगाभ्यास आवश्यक हैं।''

उपर्युक्त श्लोक का आशय यह है कि योग के निरन्तर अभ्यास से जो ऊर्जा उत्पन्न होती है, उसे योगाग्नि या योग का तेज कहा जाता है। इस योगशक्ति रूप अग्नि से शरीर के विकार तो दूर होते ही है, साथ ही हमें मन एवं अन्तःकरण (अहं का बुद्धि और चित्त) की शुद्धि भी प्राप्त होती है क्योंकि शरीर, मन, अन्तःकरण तीनों एक दूसरे से संबंधित है। जिस व्यक्ति का शरीर शुद्ध होता है, उसका मन भी शुद्ध होता है और जिसका मन शुद्ध होता है। उसकी भावनायें भी अच्छी होती है अर्थात्– बुद्धि विवेकपूर्ण निर्णय लेती है, अहंकार का शमन होता है और चित्त के संस्कारों का क्षय होता है। इसी ''आत्मशुद्धि'' को महर्षि घेरण्ड ने ''हाटशुद्धि'' कहा है। इस हाटशुद्धि के लिये जिन साधनों का वर्णन किया गया है, उन्हें ही 'सप्तसाधन' कहते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि ''हाटशुद्धि के लिये अपनायें जाने वाले सात साधनों (शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लालच, प्रत्यक्ष, निर्लिप्तता) को ''सप्तसाधन'' के नाम से अभिहित किया जाता है।

2.4 घेरण्ड संहिता के अनुसार सप्तसाधनों का वर्णन–

महर्षि घेरण्ड राजा चण्डकपालि की जिज्ञासा को शान्त करते हुये हाटशुद्धि के उपायों की चर्चा करते है। राजा महर्षि से पूछते हैं कि ''हम घटस्थ योग का अभ्यास कैसे करें?'' इस पर महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि–

''शोधनं दृढ़ता चैव, स्थर्य धैर्य च लाघवम्।
प्रत्यक्षं च निर्लिप्तं च, घटस्य सप्तसाधनम्।।''
– (घेरण्ड संहिता 1/9)

अर्थात् ''शरीर की शुद्धि के लिये अर्थात् घटस्थ योग के अभ्यास के लिये सात गुणों का होना आवश्यक है–शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष, और निर्लिप्तता।

इन सप्तसाधनों का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार हैं–

1. शोधनम्–

शोधन का सामान्य अर्थ है– शुद्धिकरण। पवित्रीकरण किन्तु प्रश्न यह कि यह शुद्धि किसकी हो? महर्षि घेरण्ड ने यहाँ जिस शुद्धि की बात की है, वह शरीर की भी है, मन की भी है और अन्तःकरण की भी अर्थात् शरीर और मन का विकार रहित होना, बुद्धि का विवेकशील होना, अहंकार का नाश तथा चित्त के मलों का नाश ही शोधन है।

2. दृढ़ता–

सप्तसाधनों में इसका दूसरा स्थान 'दृढ़ता' का है। सामान्यतया दृढ़ता से आशय शारीरिक बल से लिया जाता है, किन्तु घटस्थ योग के सन्दर्भ में दृढ़ता से आशय प्रचण्ड संकल्प शक्ति से है। लक्ष्य प्राप्ति होने तक धैर्यपूर्वक निरन्तर नियमित अभ्यास करते रहना दृढ़ता का लक्षण है दूसरे शब्दों में आदर्शो से समझौता न करना अथवा अचल निष्ठा का नाम ही दृढ़ता है। अतः स्पष्ट है कि आत्मशुद्धि के लिये साधक को न केवल शारीरिक वरन् मानसिक वैचारिक एवं भावनात्मक रूप से भी अत्यन्त दृढ़ होना आवश्यक है।

3. स्थैर्यम्–

आत्मशुद्धि के लिये तीसरा प्रमुख गुण हैं– 'स्थिरता'। स्थिरता का अर्थ यहाँ पर देह की स्थिरता से लिया गया है, क्योंकि जब तक व्यक्ति का शरीर स्थिर नहीं होता, तब तक उसका साधना में मन नहीं लगेगा। उसे हर पल यह अनुभव होगा कि मैं शरीर हूँ अर्थात् वह देहभाव से ऊपर नहीं उठ पायेगा जबकि साधना के मार्ग पर अग्रसर होने के लिये शरीर से ऊपर उठने का भाव अत्यावश्यक है। स्थिरता की इस महत्ता को महान् दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, अध्यात्मपेप्ता महर्षि पतंजलि ने भी अपने योगसूत्र में वर्णित किया है। उन्होंने आसन के सन्दर्भ में इसका वर्णन करते हुये कहा है–

"स्थिरं सुखमासनम्।"

– (पातंजल योगसूत्र साधन पाद 46)

अर्थात् "स्थिरतापूर्वक सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है।"

इसका मतलब यह है कि आसन करते समय हमें अपने शरीर को स्थिर रखना चाहिये किसी प्रकार का तनाव, खिंचाव महसूस नहीं होने देना चाहिये। क्योंकि स्थिरता के अभाव में हमारा मन साधना में एकाग्र नहीं होगा। अतः सहज भाव से आसन करने चाहिये।

4. धैर्यम्–

चौथा गुण है– धैर्य। यह एक मानसिक गुण है। धैर्य का अर्थ है– "परिस्थितियों से अप्रभावित रहना अर्थात् स्थिति प्रतिकूल होने पर भी उद्विग्न न होना। सहनशीलता बरकरार रखना और चुनौतियों का डटकर मुकाबला करना। जब मन में किसी प्रकार का विकार नहीं रहता, तब मानसिक क्षमता प्रखर होती है और धैर्य का गुण विकसित होता है।

5. लाघवम्–

हठयोग के साधक के लिये पांचवाँ आवश्यक गुण है– लाघवता अर्थात् हल्कापन। शरीर दुबला–पतला स्फूर्तिवान होना चाहिये। स्थूल, भारी–भरकम नहीं क्योंकि स्थलू शरीर में अनेक प्रकार के विकार जन्म लेते है तथा व्यक्ति आलस्य और प्रमाद से ग्रस्त रहता है। किन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं है कि चर्बीयुक्त शरीर वाले लोग योगी नहीं बन सकते। यहाँ पर साधक के लिये आवश्यक गुणों की चर्चा की जाती है। अतः ऐसा कहा गया है, किन्तु आपने प्रायः देखा होगा कि जितने भी बड़े–बड़े योगी हुये हैं, उनमें से

अधिकांश का पेट बड़ा होता है? वस्तुतः योगसाधना करते हुये जब प्राणशक्ति का जागरण होता है तो बहुधा ऐसा होता है कि वह जीवनीशक्ति नाभिचक्र (मणिपुरचक्र) में केन्द्रित हो जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप पेट मोटा हो जाता है। अतः स्पष्ट है कि योगियों के पेट बढ़ने का कारण गरिष्ठ भोजन का सेवन नहीं वरन् श्रणशक्ति का मणिपुर चक्र में केन्द्रीभूत होना है। यह शरीर की विकृत अवस्था नहीं वरन् प्राण–जागृति की अवस्था है, किन्तु योगाभ्यास प्रारंभ करने की स्थिति में शरीर हल्का अर्थात् दुबला–पतला होना चाहिये।

6. प्रत्यक्षम्–

सप्तसाधनों में छठा हैं– ''प्रत्यक्ष''। प्रत्यक्ष शब्द प्रति उपसर्गपूर्वक अक्षम् धातु से बना है– प्रति+अक्षम् = प्रत्यक्षम्

प्रति – सामना, साम्मुख्य
अक्षम् – नेत्र, चक्षु, देखना

इसका अर्थ है– गृहणशीलता अर्थात् ग्रहण करने का स्वभाव। वस्तुतः सूक्ष्म या आन्तरिक अनुभवों को मन की दृष्टि में स्पष्ट रखना ही 'प्रत्यक्ष' है। प्रत्यक्ष एक अनुभव की अवस्था है, जिसमें साधक एक आन्तरिक अनुभव को देखता, अनुभव करता और उसी में अपने आपको स्थित करता है। इसे एक उदाहरण द्वारा आसानी से समझा जा सकता है। जैसे माना कि आप, अपने मुँह में एक गुलाबजामुन डालते हैं। अब आँखें बन्द करके गुलाब जामुन के स्वाद का अनुभव कर रहे हैं वह न तो चासनी का है औन नहीं उस सामग्री का जिससे गुलाब जामुन बना है, वरन् चासनी और उसे सामग्री के मिलने से जो तीसरा तत्व उत्पन्न हो रहा है, उसे आप अनुभव कर रहे हैं और कह रहे हैं अहाः कितना स्वादिष्ट है। वह स्वाद इतना सूक्ष्म है कि आप उसे देख नहीं सकते किन्तु अनुभव कर सकते हैं क्योंकि वह वहाँ पर उपस्थित है। इसी का नाम 'प्रत्यक्ष' है।

7. निर्लिप्तम्–

घटशुद्धि हेतु आवश्यक अंतिम गुण है– निर्लिप्तता। निर्लिप्त होने से यहाँ आशय समाधिस्थ होने से नहीं है, वरन् सांसारिक विषय–वासनाओं के प्रति मन का अनासक्त होना ही निर्लिप्त होना है। लिप्त होने का अर्थ हैं– राग होना, आसक्ति होना। जैसे–

''माखी गुड़ में गड़ी रहे, पंख रहे लपटाय।
हाथ मले औ सिर धुने, लालच बुरी बलाय।।''

निर्लिप्त होने का अर्थ है– ''इन्द्रिय विषयों से विमुख होकर आत्मज्ञान में स्थित हो जाना।

अतः स्पष्ट है कि महर्षि घेरण्ड ने घटस्थ योग के अभ्यास के लिये साधक में शुद्धि, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लाघवता, प्रत्यक्ष और निर्लिप्तता ये सात गुण आवश्यक माने हैं।

सप्तसाधन

1. शोधन
2. स्थैर्य
3. लाघवता
4. प्रत्यक्ष
5. दृढ़ता
6. धैर्य
7. निर्लिप्तता

2.5 सप्तसाधन हेतु आवश्यक योगाभ्यास–

महर्षि घेरण्ड ने घटस्थ योग (हठयोग) के लिये साधक में निम्न सात गुण आवश्यक बताये हैं–

1. शोधन
2. दृढ़ता
3. स्थिरता
4. धैर्य
5. लाघवता
6. प्रत्यक्ष
7. निर्लिप्तता

उपर्युक्त सात गुणों के समावेश के लिये सात विशेष प्रकार के योगाभ्यास है, जिनका उल्लेख करते हुये कहा गया है–

''षट्कर्मणा शोधनं च, आंसनेन भवेद् दृढ़म्।
मुद्रप्त स्थिरता चैव, प्रत्याहारेण धीरता।।
प्राणायामाल्लाघवंन्च, ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनः।
समाधिना निर्लिप्तं च, मुक्तिरेव न संशयः।।''

– (घेरण्ड संहिता 1/10–11)

अर्थात् ''षट्कर्मो से शरीर शुद्धि और आसनों से दृढ़ता मुद्राओं से स्थिरता तथा प्रत्याहार से धैर्य की प्राप्ति होती है। प्राणायाम से शारीरिक स्फूर्ति या हल्कापन, ध्यान से आत्म–साक्षात्कार एवं समाधि से निर्लिप्तता तथा बिना संशय मुक्ति प्राप्त होती है।''

सप्तसाधन हेतु योगाभ्यास :–

षट्कर्म	–	शोधन
आसन	–	दृढ़ता
मुद्रा	–	स्थिरता
प्रत्याहार	–	धैर्य
प्राणायाम	–	लाघवता
ध्यान	–	प्रत्यक्ष
समाधि	–	निर्लिप्तता

उपर्युक्त योगाभ्यासों का विस्तृत विवेचन निम्नानुसार हैं–

1. षट्कर्म–

जिस प्रकार आयुर्वेद में पंचकर्म विज्ञान है, उसी प्रकार हठयोग में षट्कर्मो का विकास हुआ हैं। इन क्रियाओं का प्रयोग देह की आन्तरिक शुद्धि के लिये किया जाता है। योग साधना और विशेष रूप से प्राणायाम के अभ्यास के लिये शरीर का आन्तरिक रूप से शुद्ध होना प्रमुख रूप से नाड़ी संस्थान की शुद्धि अत्यावश्यक है। ऐसा माना जाता है कि षट्कर्म शरीर शोधक, उत्थापक और विचित्र गुण संस्थापक है। वस्तुतः आयुर्वेदीय पंचकर्म से प्रेरित होकर ही हठयौगिक षट्कर्मो का विकास हुआ है। आयुर्वेदीय पंचकर्मो को प्रमुखतः रूग्णावस्था में प्रयुक्त किया जाता है। अतः इनमें शुद्धि क्रियाओं के साथ–साथ उपयुक्त यंत्रों एवं औषधियों का भी प्रयोग किया जाता है, किन्तु हठयोग के षट्कर्म प्रधानतः स्वस्थ साधकों के लिये हैं, तथा साधना के रूप में हैं। इसलिये इनमें बहुत अधिक यंत्रों एवं

औषधियों के प्रयोग पर बल नहीं दिया गया है। जैसा कि ऊपर पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि षट्कर्मो का मुख्य उद्देश्य काया शोधन है। अतः प्रदीपिका कार योगीन्द्र स्वात्मारामसूरी के अनुसार–

भेदः श्लेस्माधिकः पूर्व षंट्कर्माणिसमाचरेत्।
अन्यस्तु नाचरेप्तानि, दोषाणां समभावतः।।''

– (हठप्रदीपिका 2/21)

अर्थात् ''स्थूलता और कफ जिसे अधिक हो उसे पहले छः शोधन क्रियायें करनी चाहिये किन्तु जिनमें त्रिदोषों (वात, पित्त, कफ) की समानता हो, उन्हें इन क्रियाओं के अभ्यास की विशेष आवश्यकता नहीं है। अतः स्पष्ट है कि षट्कर्मो का अभ्यास प्रतिदिन करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु कभी–कभी करते रहना चाहिये जिससे की स्फूर्ति एवं आन्तरिक स्वच्छता बनी रहे। सामान्यतः निम्न छः कर्मी की गणना षट्कर्मो के अन्तर्गत की जाती हैं–

1. धौति
2. वस्ति
3. नेति
4. नौलि (लौलिकी)
5. त्राटक
6. कपालभाँति

इन षट्कर्मो के अभ्यासों से हम विकारों को दूर कर शरीर को स्वच्छ, निर्मल, दीर्धायु बना सकते हैं। वेदों, उपनिषदों में अनेक स्थानों पर कहा गया है–

''जीवेम शरदंशतम्।।

अर्थात् – ''हम सौ वर्षो तक जीयें''

यह प्राचीन ग्रन्थों की विचार धारा नहीं वरन् एक वास्तविक सत्य है। यदि मनुष्य रोगों से मुक्त हो जाये तो 100 वर्ष ही नहीं वरन् इससे अधिक जीना भी स्वाभाविक है। षट्कर्मों के अभ्यास से समाधि की प्राप्ति भी होती है, क्योंकि इनका उद्देश्य मात्र देहशुद्धि नहीं वरन् आत्मशुद्धि भी है। जब शरीर, मन एवं अन्तःकरण तीनों की पवित्रता होती है। तभी योग के उच्च अभ्यासों में प्रवृत्त हुआ जा सकता है। इन षट्कर्मो का क्रमशः वर्णन निम्नानुसार है–

धौति– षट्कर्मो में प्रथम शुद्धि क्रिया है– 'धौति'। यह आमाशय और आहारनाल की सफाई का कार्य करती है। यह सफाई पानी, वायु एवं कपड़े तीन प्रकार से की जाती है। लाभ धौति के अभ्यास से पाचन संस्थान से सम्बद्ध रोग जैसे कब्ज, अपच, अम्लपित्त, दूर होते है। भेद धौति के निम्न चार भेद हैं–

1. अन्तधौति
2. दन्तधौति
3. हृदधौति
4. मूलशोधन।

पुनः अन्तधौति के चार प्रकार हैं–

1. वातसार अन्तधौति
2. वारिसार अन्तधौति
3. अग्निसार अन्तधौति

4. बहिष्कृत अन्तधौति ।

दन्तधौति के पाँच भेद हैं, जो निम्न हैं–

क. दन्तमूल
ख. जिह्वामूल
ग. कर्णरन्ध्र–दो
घ. कपालरन्ध्र।

हृदधौति के तीन भेद किये गये हैं–

अ. दण्डधौति
ब. वमनधौति
स. वस्त्रधौति

चतुर्थ 'मूलशोधन' को 'गणेशक्रिया' के नाम से भी जाना जाता है।

वस्ति– 'वस्ति; द्वितीय शुद्धि क्रिया है। यह एनिमा की भाँति कार्य करती है। वस्ति बड़ी आँत को धोने एवं स्वच्छ करने की एक सरल प्रक्रिया है। इसमें गुदा द्वार से जल या वायु को खींचकर बड़ी आँत में रखा जाता और कुछ समय बाद उसका निष्कासन कर दिया जाता है।

वस्ति के भेद– वस्ति के निम्न दो भेद हैं–

क. जलवस्ति
ख. स्थल वस्ति।

लाभ– बड़ी आँत की सफाई की सर्वोत्तम विधि।

जठनाग्नि की प्रदीप्ति – कब्ज, अपच, अम्लपित्त, इत्यादि पाचन संस्थान से सम्बद्ध रोगों में लाभकारी।

नेति– तीसरी शुद्धि क्रिया 'नेति' है। नाक, कान, एवं गले की सफाई के कारण यह ई.एन. टी. डॉक्टर की तरह कार्य करती है।

विधि– जल नेति में एक नासिकारन्ध्र से पानी डाला जाता है और दूसरे से निकाला जाता है।

भेद– नेति क्रिया के अनेक भेद हैं–

क. जल नेति
ख. रबड़ नेति
ग. सूत्र नेति

लाभ– साइनोसाइटिस, माइग्रेन, अग्र ललाट में दर्द, आँखों का थकना, आँखों में जलन एवं पानी आना, राइनाइटिस, कान एवं गले से सम्बद्ध रोगों में लाभकारी।

नौलि– चौथी क्रिया है– नौलि। इसे ''लौलिकी'' के नाम से भी जाना जाता है इस क्रिया के अभ्यास से उदरस्थ अंगों की मालिश होती है, परिणामस्वरूप उनकी कार्यक्षमता में अभिवृद्धि होती है।

भेद– नौलि के निम्न चार भेद हैं–

क.सामान्य या मध्यम नौलि
ख.वाम नौलि
ग.दक्षिण नौलि

घ.भ्रमर नौलि या केवल नौलि

लाभ–

- पेट के समस्त अंगों की मालिश।
- माँसपेशियों, रक्तवाहिकाओं, तन्त्र–तंत्रिकाओं, अन्तःस्रावी ग्रन्थियों, रक्त–परिसंचरण संस्थान को शुद्ध करना।
- सुचारू रक्त प्रवाह
- सम्पूर्ण शरीर के भीतर प्राणशक्ति का नवसंचार
- पाचन संस्थान के रागों में लाभदायक।

त्राटक– पाँचवी शुद्धि क्रिया है 'त्राटक' वस्तुतः स्थिर दृष्टि से किसी एक बिन्दी को देखना ही त्राटक है। त्राटक के द्वारा मस्तिष्क के क्षेत्र का शान्त एवं निर्मल बनाने का प्रयास किया जाता है। आँखों एवं मस्तिष्कीय संस्थान के अंगीय एवं कार्यात्मक विकारों को दूर करने में इसका अभ्यास अत्यन्त लाभकारी है।

भेद– महर्षि घेरण्ड ने त्राटक के निम्न तीन भेद बताये हैं–

क. बहिर्त्राटक
ख. अन्तर्त्राटक
ग. अधोर्त्राटक

लाभ–

- मानसिक एकाग्रता बढ़ाने वाला।
- नेत्र ज्योति बढ़ाने वाला।
- त्राटक के अभ्यास से दूर दृष्टि दोष, निकट दृष्टि दोष तथा आँखों से सम्बद्ध अनेक रोगों को बहुत कुछ हद तक नियंत्रित रखा जा सकता है।

कपालभाँति– अंतिम शुद्धि क्रिया है–

"कपालभाँति" का संबंध प्राणमय कोश की शुद्धि से हैं कपालभाँति वस्तुतः फेफड़ों का अभ्यास है।

भेद– कपालभाँति के निम्न तीन भेद हैं–

अ. वातकर्म कपालभाँति
ख. व्युत्क्रम कपालभाँति
ग. शीतकर्म कपालभाँति

लाभ–

- श्वांस नली को विकाररहित बनाना
- फेफड़ों से सम्बन्धित रोग दूर करना
- स्मरण शक्ति में वृद्धि
- स्नायविक अव्यवस्था एवं मस्तिष्क रोग में लाभकारी।
- रक्त को शुद्ध करना इत्यादि।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभांति इन छः शुद्धि क्रियाओं के रूप में महर्षि घेरण्ड ने सम्पूर्ण शरीर के आन्तरिक शोधन का अत्यन्त उपर्युक्त उपाय बताया है।

	षट्कर्म		
धौति	–	1.	अन्तधौति
	–	2.	दन्तधौति
	–	3.	हृदधौति
	–	4.	मूलशोधन (गणेश क्रिया)
वस्ति	–	1.	जल वस्ति
	–	2.	स्थल वस्ति
नेति	–	1.	जल नेति
	–	2.	रबड़ नेति
	–	3.	सूत्र नेति
नौलि	–	1.	सामान्य या मध्यम नौलि
	–	2.	वाम नौलि
	–	3.	दक्षिण नौलि
	–	4.	भ्रामर या केवल नौलि
त्राटक	–	1.	बहिर्त्राटक
	–	2.	अन्तर्त्राटक
	–	3.	अधोर्त्राटक
कपालभाति	–	1.	वातकर्म कपालभाति
	–	2.	व्युत्क्रम कपालभाति
	–	3.	शीतक्रम कपालभाति

धौति के भेद

अन्तधौति	–	1.	वातसार
	–	2.	वारिसार
	–	3.	अग्निसार
	–	4.	बहिष्कृत
दन्तधौति	–	1.	दन्तमूल
	–	2.	जिह्वामूल
	–	3.	कर्णरन्ध्र – दो
	–	4.	कपालरन्ध्र
हृदधौति	–	1.	दण्ड धौति
	–	2.	वमन धौति
	–	3.	वस्त्र धौति

मूलशोधन या गणेश क्रिया

आसन– महर्षि घेरण्ड ने सप्तसाधनों की चर्चा करते हुये दृढ़ता का गुण विकसित करने के लिये आसनों का अभ्यास आवश्यक बताया है। योगसाधना में आसनों के अभ्यास पर सभी आचार्यो ने बल दिया है, और इसके महत्व को बताया है, किन्तु भिन्न–भिन्न योग पद्धतियों में इसके (आसन) के क्रम में भिन्नता मिलती है। महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग में आसनों को यम–नियम के बाद तीसरा स्थान दिया गया है। जबकि हठप्रदीपिका में आसन का प्रथम उपदेश में ही वर्णन है और महर्षि घेरण्ड ने षट्कर्मो के बाद दूसरे नम्बर पर आसनों

का उल्लेख किया है। साथ ही विभिन्न उपनिषदों जैसे ध्यानबिन्दु उपनिषद, तेजबिन्दु उपनिषद, योगचूड़ामणि उपनिषद, में भी आसनों का उल्लेख मिलता है, किन्तु विस्तार नहीं किया गया है। इनका विस्तृत विवेचन हठयोग के ग्रन्थों (हठप्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, शिवसंहिता) में ही उपलब्ध है।

मण्डलब्राह्मणोपनिषद में लम्बे समय तक सुखपूर्वक बैठने की स्थिति को आसन कहा गया है। तेजबिन्दु उपनिषद में भी आसन को इसी रूप में परिभाषित किया गया है। उपनिषदों में जो परिभाषायें दी गई हैं, वे पातंजल सम्मत परिभाषा के समान ही है। 'योगसूत्र' में कहा गया है–

''स्थिरसुखं आसनम्''

– (योगसूत्र/समाधिपाद/46)

अर्थात् ''स्थिर सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है।'' हठयोग में आसनों के अनेक प्रकार बताये गये हैं। ऐसा माना जाता है कि जितनी योनियाँ है अर्थात् 84 लाख योनियों के समान 84 लाख आसन भी हो सकते हैं–र

''आसनानि समस्तानि, पावन्तो जीवजन्तपः।

चतुररीति लक्षाणि, शिवंन कन्थितानि च।।

तेषां मध्ये विशिष्टानि, षोडशोनं शतं कृतम्।

तेषां मध्ये मर्त्यलोके, द्वात्रिंशदासनं शुभम्।।''

– (घेरण्ड संहिता 2 /1/2)

अर्थात् महर्षि घेरण्ड ने कहा– ''संसार में जितने जन्तु हैं, उतनी ही संख्या आसनों की है। भगवान् शिव ने पहले चौरासी लाख आसन कहे, उनमें से चौरासी आसन श्रेष्ठ हैं। उन चौरासी आसनों से भी पच्चीस आसनों को अति विशिष्ट और अधिक शुभ समझना चाहिये। हठप्रदीपिका में स्वात्माराजी ने 15 आसनों का वर्णन किया है।

परन्तु योगसूत्रानुसार साधक अपनी आवश्यकता के हिसाब से जिस भी विधि से चिरकाल तक स्थिरभाव से सुखपूर्वक बैठ सके वही आसन उसके लिये सबसे उपर्युक्त है। इसके अलावा जिस आसानी पर बैठकर योगाभ्यास किया जाता है, उसे भी आसन कहते हैं। अतः वह भी ऐसी हो, जिसमें स्थिरतापूर्वक एवं स्वस्थपूर्वक बैठा जा सके। श्रीमद्भगवद गीता में भी आसानी की स्थिर एवं अचल स्थापना करने का निर्देश दिया गया है और साथ ही कहा गया है कि योगाभ्यास के दौरान शरीर, गर्दन और सिर तीनों एक सीध में स्थिर रहे। वहां भी किसी आसन विशेष का नामोल्लेख नहीं है। जब साधक देहभाव से ऊपर उठ जाता है पुयत्न शिथिल हो जाते हैं और मन अब विराट ब्रह्म में लीन हो जाता है तो आसन सिद्ध हो जाता है। स्थिर सुखपूर्वक बैठकर समस्त प्रकार का शारीरिक चेष्टाओं का परित्याग कर देना ही वस्तुतः ''प्रयत्न शैथिल्य'' है। अतः आसन को सिद्ध करने के निम्न दो उपाय बताये गये हैं–

क. प्रयत्न शैथिल्य
ख. अनंतसमापति।

आसन सिद्ध हो जाने पर शरीर शीत–उष्ण इत्यादि द्वन्द्वों के आघात को सहन करने लायक हो जाता है अर्थात् इनसे अप्रभावित रहता है, दृढ़ता का विकास होता है, जिससे ये द्वन्द्व चित्त को अस्थिर करके साधना में विध्न नहीं डाल पाते। यदि उपर्युक्त परिभाषा को दृष्टिगत रखा जाये तो आसनों की कोई निश्चित संख्या नहीं बतायी जा सकती फिर भी विभिन्न योग ग्रन्थों में आसनों के भिन्न–भिन्न नाम एवं संख्याओं का उल्लेख मिलता है, जो निम्नानुसार हैं–

घेरण्ड संहिता के अनुसार आसन भेद–

सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वक्रं च स्वस्तिकम्।
सिंहं च गोमुखं वीरीं धनुरासनमेव च।।
मृतं गुप्तं तथा मात्स्यं मत्स्पेन्द्रासनमेव च।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानमुफ्कटं संकटं तथा।।
मयूरं कुक्कुटं कूर्म तथा चोप्तान कूर्मकम्।
उप्तानमण्डूकं वृक्ष मण्डूकं, गरूडं वृषम्।।
शलभं मकरं चोष्ट्रं भूजंङः योगमासनम्।
द्वात्रिंशदासनान्येप मर्त्ये मर्त्ये सिद्धि प्रदानि च।।
– (घेरण्ड संहिता 2/3–6)

अर्थात् महर्षि घेरण्ड कहते हैं– ''रस मृत्यु लोक में, जहाँ प्रत्येक मानव की मृत्यु अनिवार्य है, सिद्धि के लिये निम्न 32 आसन पर्याप्त हैं–

1. सिद्धासन
2. पद्मासन
3. भद्रासन
4. मुक्तासन
5. वक्रासन
6. स्वक्तिकासन
8. सिंहासन
9. गोमुखासन
10. वीरासन
10. धनुरासन
11. मृतासन (शवासन)
12. गुप्तासन
13. मत्स्यासन
14. मत्स्येन्द्रासन
15. गोरक्षासन
16. पश्चिमोतानासन
17. उत्कट आसन
18. संकटआसन
19. मयूरासन
20. कुक्कुटासन
21. कूर्मासन
22. उप्तान कूर्मासन
23. मण्डूकासन
24. उप्तान मण्डूकासन
25. वृक्षासन
26. गरूड़ासन
27. वृषासन
28. शलभासन
29. मकरासन
30. उष्ट्रासन
31. भुजंगासन
32. योगासन।

योगासन करते समय शरीर को विभिन्न प्रकार की स्थितियों में इस प्रकार रखते हैं कि शरीर के सभी संस्थान मुख्य रूप से तंत्रिका तंत्र और अन्तःस्रावी संस्थान सुचारू रूप से कार्य करते हुये शरीर और मन दोनों को स्वस्थ बना सके। वास्तव में योगासन एक ऐसी पद्धति है, जिसके माध्यम से शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक विकास, वृद्धावस्था ताकि रोग निवारण, स्वास्थ्य संवर्धन, जो कि योग का अभीष्ट प्रभाव है, सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है। आसनों का अभ्यास किसी योग्य योगगुरू के निर्देशन में

दैनिक जीवन में किसी प्रकार की अशान्ति के बिना प्रत्येक प्रकार की उम्र, लिंग, स्थान, जलवायु आदि में किया जा सकता है।
इस प्रकार आसनों से केवल स्थूल शरीर का संवर्धन ही नहीं होता अपितु शारीरिक, मानसिक विक्षांति भी मिलती है। इसलिये वर्तमान समय में तनाव, चिन्ता, अवसाद इत्यादि को दूर करने के लिये आसनों का अभ्यास किया जाता है। योगीन्द्र स्वात्माराम जी ने आसनों के महत्व का वर्णन करते हुये कहा है–

हठस्य प्रथमाड गत्वादासनं पूर्वमुच्यते।
कुपन्तिदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाड्गलाघावम्।।
– (हठप्रदीपिका 1/17)

अर्थात् ''आसन चूँकि हठयोग का पहला अंग है, अतः सर्वप्रथम उसका निरूपण करते हैं। आसन (शारीरिक एवं मानसिक) स्थिरता आरोग्य तथा शरीर में हल्कापन का अनुभव लाता है। सामान्य शारीरिक व्यायाम केवल माँसपेशियों को प्रभावित करते है, किन्तु आसनों का प्रभाव शरीर के प्रत्येक संस्थान पर पड़ता है। आसनों से न्यूरॉनन की नेटवर्किंग सुचारू रूप से होती है, प्रत्येक हार्मोन का संतुलित मात्रा में स्राव होता है, जिसका प्रभाव विभिन्न प्रकार की चयापचय क्रियाओं के रूप में शरीर पर देखने को मिलता है। विभिन्न प्रकार के योगासनों से प्राप्त होने वाले लाभ का यही आधार है।
''आसनों से ध्यान तथा समाधि के लिये आवश्यक सुखकर तथा स्थिर शारीरिक स्थितियों तथा शरीर विकार के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के शरीर क्रियायिक, जैवरासायनिक तथा मानसिक परिवर्तन शरीर में होते हैं। इन परिवर्तनों में भार में कमी, श्वाँस गति में कमी, वक्षःस्थल के विस्तार में वृद्धि। वाइटल कैपेसिटी में वृद्धि (फुफ्फुसों के फुलाव एवं संकोच में वृद्धि), रक्तगत शर्करा में कमी, रक्तगत वसा में कमी, रक्तगत प्रोटीन में वृद्धि, अधिवृक्क ग्रन्थि के कार्यो में विकास तथा कुछ मानसिक क्रियाओं में प्रगति जैसे बुद्धि लब्धि (IQ) स्मृति लस्धि (MQ) कार्यक्षमता तथा मानसिक थकान में ह्रास हुआ। इसके साथ–साथ न्यूरोफिजियोलॉजिकल तथा न्यूरोहार्मोनल परिवर्तन भी ध्यान देने योग्य थे। (उड्डुवा एवं सिंह, 1971)

''योगासनों से मुख्य रूप से शरीर की माँसपेशियों को समुचित व्यायाम तथा विश्रान्ति प्राप्त होती है और शरीर में बिना किसी थकान के स्थिर, दृढ़ तथा समन्वित कार्य करने की क्षमता आती है।''

(डॉ. सिंह 1974)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आसन शारीरिक रोगों को दूर कर सुदृढ़, सुगठित, आकर्षण शरीर एवं स्वस्थ मन प्राप्त करने के प्रभावशाली साधन हैं।

ग्रन्थ	योग साधना के अंग	योग साधना में आसनों का स्थान
पातंजल योग सूत्र	अष्टॉग योग	तृतीय स्थान
हठयोग प्रदीपिका		प्रथम स्थान
घेरण्ड संहिता	सप्तांग	द्वितीय स्थान
ध्यान बिन्दूपनिषद	षडंग	प्रथम स्थान
तेज बिन्दूपनिषद	पंचदशांग	सप्तम स्थान

विविध ग्रन्थों के अनुसार आसनों की संख्या

ग्रन्थ नाम	आसनों की संख्या	आसनों के नाम
योग चूड़ामणि उपनिषद	2	सिद्धासन, कमलासन
योग कुंडल उपनिषद	2	पद्मासन, वज्रासन
अमृतानाद उपनिषद	3	पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन
हठप्रदीपिका	15	स्वस्तिकासन, गोमुखासन, वीरासन, कूर्मासन, कुक्कुटासन, उप्तानकूर्मासन, धनुरासन, मत्स्येन्द्रासन, पश्मिोप्तानासन, मयूरासन, शवासन, सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन, भद्रासन
घेरण्ड संहिता	32	सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, स्वस्तिकासन, सिंहासन, गोमुखासन, वीरासन, धनुरासन, मृतासन (शवासन), गुप्तासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन, गोरक्षासन, पश्चिमोत्तानासन, उत्कट आसन, संकट आसन, मयूरासन, कुक्कुटासन, कूर्मासन, उप्तान कूर्मासन, मण्डूकासन, उप्तानमण्डूकासन, वृक्षासन, गरूड़ासन, वृषासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजंगासन, योगासन

आसनों के भेद

ध्यानात्मक आसन	विश्रान्तिकारक आसन	संवर्धनात्मक आसन
• पदमासन	• शवासन	• वीरासन
• सिद्धासन	• बालासन	• धनुरासन
• स्वस्तिकासन	• मकरासन इत्यादि	• भुजांगासन
• वज्रासन		• गोमुखासन
• मुक्तासन		• पश्चिमोत्तानासन
• भद्रासन इत्यादि		• पादहस्तासन
		• योगासन
		• उष्ट्रासन
		• कुक्कुटासन
		• मयूरासन
		• मत्स्यासन
		• मत्स्येन्द्रासन
		• मण्डूकासन

- कूर्मासन
- उप्तान कूर्मासन
- चक्रासन
- हलासन
- शलभासन
- हस्तउत्थानासन
  इत्यादि

मुद्रा– सप्तांगों की चर्चा करते हुये महर्षि घेरण्ड आगे कहते हैं कि मन एवं प्राण की चंचलता समाप्त कर स्थिरता की प्राप्ति के लिये मुद्राओं का अभ्यास किया जाता हे। मुद्रा का अर्थ है– ''आसन, प्राणायाम एवं बंध की सम्मिलित वह विशिष्ट स्थिति जिसके द्वारा उच्च आध्यात्मिक शक्ति का जागरण संभव है। मुद्रायें अनेक प्रकार की होती हैं। जैसे– ज्ञानमुद्रा, चिनमुद्रा, शांभवी मुद्रा, योगमुद्रा, काकीमुद्रा, पाशिनी मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा, इत्यादि। विविध ग्रन्थों में मुद्राओं की संख्या के संबंध में भेद मिलता है। घेरण्ड संहिता में कुल 25 मुद्राओं का वर्णन किया गया है। जिसमें चार प्रकार के बंध, पाँच प्रकार की धारणायें एवं सोलह मुद्राओं का समावेश है, जबकि हठप्रदीपिका में दस–मुद्राओं का विवेचन मिलता है। इस प्रकार घेरण्ड संहिता में योगाभ्यास के क्रम में मुद्रा एवं बन्ध को तृतीय स्थान पर रखा गया है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार मुद्रायें – 25 मुद्रायें

चार बंध	पंचधारणा	सोलह मुद्रायें
1. मूलबंध	1. पार्थिवीधारणा	1.महामुद्रा
2. जालन्धर बंध	2. आम्भसी धारणा	2. नभोमुद्रा
3. उड्डियान बंध	3. आग्नेयी धारणा	3. खेचरी मुद्रा
4. महाबन्ध	4. वायवीय धारणा	4. महाबेध मुद्रा
	5. आकाशी धारणा	5. विपरीत मुद्रा
		6. योनि मुद्रा
		7. वज्रोणि मुद्रा
		8. शक्तिचालिनी
		9. तड़ागी मुद्रा
		10. माण्डुकी मुद्रा
		11. शांभवी मुद्रा
		12. अश्विनी मुद्रा
		13. पाशिनी मुद्रा
		14. काकी मुद्रा
		15. मातङिनी मुद्रा
		16. भुजंगिनी मुद्रा

प्रत्याहार– अगला अभ्यास 'प्रत्याहार' का है, जिसका घेरण्ड संहिता के अनुसार चौथा स्थान है। प्रत्याहार का अभिप्राय है– ''इन्द्रियों को बाह्यविषयों से हटाकर अन्तर्मुखी बनाना। प्रत्याहार के निरन्तर अभ्यास से मन की चंचलता समाप्त होकर मानसिक धैर्य की प्राप्ति होती है।

प्राणायाम–'प्राणायाम' हठयोग का एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसे महर्षि घेरण्ड ने योगसाधना में पाँचवा स्थान प्रदान किया है। प्राणायाम मात्र श्वांस–प्रवास का व्यायाम नहीं वरन् प्राणमूलक प्रक्रिया है, जिसका मस्तिष्क, सुषुम्ना तथा नाड़ी–विज्ञान से गहरा संबंध है। वस्तुतः जीवनी शक्ति का नियमन' ही प्राणायाम है। महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम को परिभाषित करते हुये कहा है–

''तस्मिन् सति श्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।।''

– (पातंजल योग सूत्र 2/49)

अर्थात् ''आसन के स्थिर होने पर श्वास–प्रश्वास की गति का रूकना ही प्राणायाम हैं।

त्रिशिखब्रह्माणोपनिषद के अनुसार–

''निरोधः सर्ववृप्तीनां प्राणायामः।''

अर्थात् ''सभी प्रकार की वृत्तियों के निरोध को प्राणायाम कहा गया है।''

हठप्रदीपिका के अनुसार–

''पापद्वायुः स्थितो देहे तावन्जीवन मुच्चते।
मरण तस्य निस्क्रान्तिस्ततो वायुं निरोधयेत्।।''

– (हठप्रदीपिका 2/3)

अर्थात् ''जब तक शरीर में वायु विद्यमान है, तब तक ही जीवन कहलाता है। उसका शरीर से निकल जाना ही मरण है। अतः प्राणायाम का अभ्यास करें।

प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ियों का मल दूर होकर उनकी शुद्धि हो जाती है तथा शारीरिक स्थूलता कम होकर लाघवता (हल्कापन) एवं स्फूर्ति आती है। प्राणायाम की महिमा का वर्णन करते हुये हठप्रदीपिका में कहा गया है–

''प्राणायामेन युक्तेन,
सर्वरोगक्षयोभवेत्।।''

– (हठप्रदीपिका 2/16)

अर्थात् ''उचित रीति से प्राणायाम का अभ्यास करने से सभी रोगों का नाश होता है।''

''प्राणायाम के द्वारा हल्केपन की प्राप्ति होती है स्थूलता को कम किया जाता है।''

– (घेरण्ड संहिता पृ.सं. 20)

महर्षि पतंजलि के अनुसार–

''ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।।– (पातंजल योगसूत्र 2/52)

अर्थात् ''प्राणायाम के अभ्यास से प्रकाश का आवरण हर जाता है या नष्ट हो जाता है।

महर्षि पतंजलि ने चार प्रकार के प्राणायामों की चर्चा की है, जबकि हठप्रदीपिका एवं घेरण्ड संहिता में आठ प्रकार के प्राणायाम बताये गये हैं–

''सूर्यभेदन मुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनी व्यस्ट कुम्भकाः।।'' – (हठप्रदीपिका 2/44)

अर्थात् ''सूर्य भेदन उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी ये आठ प्रकार के कुंभक होते हैं।

घेरण्ड संहिता के अनुसार प्राणायाम के भेद – आठ भेद

1. सहित प्राणायाम

2. सूर्य भेदी प्राणायाम
3. उज्जायी प्राणायाम
4. शीतली प्राणायाम
5. भस्त्रिका प्राणायाम
6. भ्रामरी प्राणायाम
7. मूर्च्छा प्राणायाम
8. केवली प्राणायाम

ध्यान– किसी आदर्श लक्ष्य का निर्धारण का उसमें तन्मय हो जाने को ध्यान कहते हैं। सप्तांगों के लिये योगाभ्यास के, क्रम में ध्यान का छठवाँ स्थान है। ध्यान के द्वारा हम मन की गहराई में प्रवेश करते है तथा स्वयं के वास्तविक स्वरूप को पहचानने का प्रयास किया जाता है। इसी को यहाँ पर आकर साक्षात्कार का नाम दिया गया है। आत्मसाक्षात्कार का अर्थ है– स्वयं का अनुसंधान अर्थात् आत्मज्ञान की प्राप्ति।
महर्षि पतंजलि ने ध्यान को परिभाषित करते हुये कहा है–

''तत्र प्रत्यैकतानताध्यानम्'' – (पातंजल योगसूत्र 3/2)

अर्थात् ''जहाँ पर धारणा की गई है, उसी में वृत्ति का एकतार चलना ध्यान है।''
ध्यान के अभ्यास से वस्तुतः ऊर्जा का क्षरण रोककर मन को एकाग्र किया जाता है। महर्षि घेरण्ड ने ध्यान के तीन प्रकार बताये हैं–

स्थूलं ज्योतिस्थ, सूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः।
स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजामयं तथा।
सूक्ष्मं, बिन्दुमयं ब्रहम कुण्डली परदेवता।। – (घेरण्ड संहिता 6/1)

अर्थात् ''स्थूल ध्यान, ज्योतिर्ध्यान और सूक्ष्म ध्यान के भेद से ध्यान तीन प्रकार का होता है। स्थूल ध्यान वह होता है, जिसमें मूर्तिमय इष्टदेव का ध्यान हो ज्योतिर्मन ध्यान वह है, जिसमें तेजोमय ज्योतिरूपं ब्रहमे का चिन्तन हो तथा सूक्ष्म ध्यान उसे कहते हैं। जिसमें बिन्दुमय ब्रहम कुण्डलिनी शक्ति का चिन्तन किया जाये।

घेरण्ड संहिता के अनुसार ध्यान के भेद – तीन भेदे

स्थूल ध्यान	–	मूर्तिमय इष्टदेव का ध्यान
ज्योति ध्यान	–	तेजोमय ज्योतिरूप ब्रहा का चिन्तन
सूक्ष्म ध्यान	–	बिन्दुमय ब्रहा कुण्डलिनी शक्ति का चिन्तन

समाधि–सप्तांगों की प्राप्ति हेतु किये जाने वाली योग साधनाओं में अंतिम सातवाँ स्थान समाधि का है, जिससे निर्लिप्तता और अन्ततः मुक्ति की प्राप्ति होती है। समाधि की अवस्था में ध्याता एवं ध्येय एक हो जाते है, अद्वैत की अनुभूति होती है। चेतना तुयावस्था में पहुँच जाती है। अन्तजागृति की प्राप्ति होती है, साधक वासनाओं में लिप्त नहीं रहता है। योगों को भी पार कर जाता है। इसी को निर्लिप्त अवस्था कहते हैं।

घेरण्ड संहिता में समाधि के छः भेद बताये गये हैं–

शांभत्या, चैव भ्रमर्या खेचर्च्या योनिमुद्रया।
ध्यानं नादं रसानन्दं लय सिद्धिश्चतु र्विधा।।
पम्चधा भक्ति योगेन मनोमूर्च्छा च षडविधा।
षड्विधोडयं राजयोगः प्रत्येकमवधारयेत्।।
– (घेरण्ड संहिता 7/5–6)

अर्थात् ''समाधि योग के छः भेद हैं– ध्यान योग, नादयोग, रसानंद योग, लयसिद्धि योग, शक्तियोग और राजयोग। ध्यान योग की समाधि शांभवी मुद्रा से, नादयोग की खेचरी मुद्रा से, रसानंद योग की भ्रमरी मुद्रा से। लयसिद्धियोग की योनिमुद्रा से भक्तियोग, की मनोमूर्च्छा से और राजयोग समाधि कुंभक से सिद्ध होती है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार समाधि के भेद – छः भेद

1. ध्यान योग समाधि
2. नादयोग समाधि
3. रसानंद समाधि
4. लयसिद्धि समाधि
5. भक्तियोग समाधि
6. मनमूर्च्छा समाधि

अभ्यास प्रश्न –

खण्ड 'अ' एवं 'ब' को मिलाइये–

(खण्ड अ)	(खण्ड ब)
षट्कर्म	दृढ़ता
आसन	लाघव
मुद्रा	शोधन
प्रत्याहार	स्थिरता
प्राणायाम	निर्लिप्तता
ध्यान	प्रत्यक्ष
समाधि	धैर्य

2.6 सारांश–

सप्तसाधन का अर्थ–

घटशुद्धि हेतु साधक मैं आवश्यक सात गुण ही सप्तसाधन कहलाते हैं।

सप्तसाधन–शोधन, दृढ़ता, स्थिरता, धैर्य,लाघवता, प्रत्यक्ष, निर्लिप्तता

सप्तसाधन हेतु आवश्यक योगाभ्यास

शोधन हेतु षट्कर्म (धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक, कपालभाँति)

- दृढ़ता हेतु आसन
- स्थिरता हेतु मुद्रा
- धैर्य हेतु प्रत्याहार
- लाघवता हेतु प्राणायाम
- प्रत्यक्ष हेतु ध्यान
- निर्लिप्तता हेतु समाधि

2.7 शब्दावली–

- **घटस्थ योग–** हठयोग अर्थात् स्थूल शरीर पर नियंत्रण के माध्यम से मनोनिग्रह करने की साधना पद्धति। कायासाधन–प्रधान योग पद्धति।
- **घटशुद्धि–** आत्मशुद्धि/शरीर, मन एवं अन्तःकरण की पवित्रता।

- **अन्तःकरण–** बुद्धि, अहंकार, चित्त।
- **सप्तसाधन–** आत्मशुद्धि हेतु आवश्यक सात गुण।
- **निर्लिप्त–** आसक्ति का भाव न होना/रोग से निवृत्त होना/सांसारिकता से विमुखता।
- **षट्कर्म–** शुद्धि की छः क्रियायें। (धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभाँति)
- **लौलिकी–** नौलि
- **नौलि–** उदरस्थ माँसपेशियों का घुमाना
- **त्राटक–** स्थिर दृष्टि से किसी एक केन्द्र को देखना।
- **प्रत्याहार–**इन्द्रियों को बहिर्मुखी होने से रोककर अन्तर्मुखी बनाना।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

(खण्ड अ)	(खण्ड ब)
षट्कर्म	शोधन
आसन	दृढ़ता
मुद्रा	स्थिरता
प्रत्याहार	धैर्य
प्राणायाम	लाघवता
ध्यान	प्रत्यक्ष
समाधि	निर्लिप्तता

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. सूरी, स्वात्माराम (2001), हठप्रदीपिका। कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनावला–410403 पुणे, महाराष्ट्र।
2. सरस्वती, निरंजनानंद (1997), घेरण्ड संहिता। योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।
3. सरस्वती, विज्ञानानंद (2007), योग विज्ञान। योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि की रेती, ऋषिकेश–249192
4. वशिष्ठ संहिता (1984), कैवल्यधाम। श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनबल। पुणे। महाराष्ट्र।
5. ज्योतिर्मयानंद (1999), व्यावहारिक योग। इंटरनेशनल योग सोसायटी, लालबाग, लोनी, 201102, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश।
6. रामहर्ष सिंह, (2007), स्वथ्यवृत्त विज्ञान। चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
7. सिंह रामहर्ष (1999), योग एवं यौगिक चिकित्सा। चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2.10 निबंधात्मक प्रश्न–

प्र.1 घटशुद्धि हेतु आवश्यक उपायों का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिये।

प्र.2. सप्तसाधन के लिये आवश्यक योगाभ्यासों पर प्रकाश डालिये।

इकाई –3 हठयोग सिद्धि के लक्षण, हठयोग की उपयोगिता

3.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाईयों में आप अध्ययन कर चुके हैं कि हठयोग क्या है ? इसका स्वरूप क्या है ? भिन्न–भिन्न योगग्रन्थों में किस प्रकार इसे परिभाषित किया गया है ? किस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु हठयोग का प्रतिपादन किया गया तथा उसे उद्देश्य प्राप्ति के लिए धौति–वस्ति इत्यादि षट्कर्मों, आसन, मुद्रा, बन्ध, प्राणायाम इत्यादि का किस प्रकार से अभ्यास किया जाता है। अब जिज्ञासु पाठकों के मन में निम्न प्रश्नों का उत्तर जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि –

- हठयोग के मार्ग में अग्रसर होने पर क्या साधक में किसी प्रकार का परिवर्तन आता है ?
- उसे कौन सी ऋद्धि–सिद्धियों की प्राप्ति होती है ?
- क्या हम हठयोग के द्वारा अपने भौतिक और आध्यात्मिक जीवन को उन्नत बना सकते है ?

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपको अपने प्रश्नों का समाधान मिल जायेगा। प्रस्तुत इकाई में हठसिद्धि के लक्षणों एवं हठयोग की उपादेयता पर प्रकाश डाला जाएगा।

सिद्धि की शिखर पर आरूढ़ होने से पूर्व साधक के शरीर, चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार में जो परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं, उन्हें ही वस्तुतः, ''हठसिद्धि के लक्षण''

कहा जाता है। अगले पृष्ठों में जो वर्णन किया गया है, उसमें अलग–अलग हठयौगिक ग्रन्थों के अनुसार हठसिद्धि के लक्षणों को स्पष्ट किया गया है। साथ ही हम हठयोग के अभ्यासों को व्यवहारिक जीवन में किस प्रकार उपयोगी बना सकते हैं, इस पर भी प्रकाश डाला गया है।

3.2 उद्देश्य

प्रिय पाठकों, प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

- हठसिद्धि के लक्षणों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- हठयोग की उपयोगिता का वर्णन कर सकेंगे।
- हठयोग को व्यावहारिक जीवन में किस प्रकार से अपनाया जा सकता है, इसे स्पष्ट कर सकेंगे।

3.3 हठयोग सिद्धि के लक्षण

''बोओं और काटों'' के सिद्धान्त से प्रायः हम सभी परिचित है अर्थात् प्राणी जिस प्रकार का कर्म रूप बीज डालता है, उसी के अनुसार उसे परिणाम रूप फल की प्राप्ति होती है। यह सिद्धान्त योग साधना पर भी पूर्णतः लागू होता है। शास्त्रोक्त विधि–विधान से अथवा गुरू के निर्देशानुसार जो साधक निरन्तर नियमित रूप से उपयुक्त समय एवं स्थान पर पूर्ण क्षद्धाभाव से योगसाधना करता है, उसे निश्चित रूप से परम लक्ष्य की प्राप्ति भी होती है। योग साधना वस्तुतः रूपान्तरण की पित्त के परिष्कार की साधाना है। जैसे–जैसे साधक इस पथ पर अग्रसर होता है, वैसे–वैसे स्थूल सूक्ष्म एवं कारण स्तर पर अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते है। जब साधना परिपक्व होकर पल्लवित–पुष्पित होने, लगती है तो योगी के आन्तरिक एंव बाह्य जीवन में क्या–क्या परिवर्तन होते है, कौन से लक्षण दिखाई देते है इसी को ''हठसिद्धि के लक्षण'' कहा जाता है। इस रूपान्तरण की झॉकी साधक के व्यक्तित्व के प्रत्येक आयाम में झलकती है।

हठसिद्धि के लक्षणों का विवेचन विविध हठयौगिक ग्रन्थों के अनुसार निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है –

3.3.1 हठप्रदीपिका के अनुसार

हठप्रदीपिका के ''प्राणायाम विधि कथन'' नामक द्वितीय उपदेश के 18वें श्लोक में हठसिद्धि के लक्षणों का वर्णन मिलता है।

हठसिद्धि के लक्षणों को स्पष्ट करते हुए कहा गया है –

''वयुः कृशत्वं बदने प्रसन्नता
नादस्फटत्वं नपने सुनिर्मले।
अरोगता बिन्दुजयो अग्निदीपनम्
नाड़ी विशुद्धि हठसिद्धि लेखणम्।।''

– हठप्रदीपिका 2/78

अर्थात् शरीर में हलेकापन, मुख पर प्रसन्नता, स्वर में सौष्ठव, नयनों में तेजस्विता, रोग का अभाव, बिन्दु (आज्ञाचक्र से स्त्रावित होने वाला एक प्रकार का स्रोव) पर नियंत्रण, जठराग्नि की प्रदीप्ति तथा नाड़ियों की विशुद्धता ये सब हठसिद्धि के लक्षण हैं।

हठसिद्धि के लक्षण

↓

हठप्रदीपिका के अनुसार (2/78)

↓

1. शरीर में लाघपता (हल्कापन)
2. मुख पर प्रसन्नता
3. स्वर में सौष्ठव
4. नयनों में तेजस्विता
5. आरोग्य की प्राप्ति
6. बिन्दु पर नियंत्रण
7. जठराग्नि को प्रदीप्ति
8. नाड़ी शोधन

3.3.2 शिवसंहिता के अनुसार

हठप्रदीपिका के समान ही शिवसंहिता में भी हठसिद्धि के लक्षणों का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है। शिव संहिता के तृतीय अध्याय के तैंतीसवें श्लोक में कहा गया है –

प्रौढ़ वहिनः सुभोजी च सुखी सर्गांडग्सुन्दरः सम्पूर्ण हृदयो योगी सर्वोत्साहबलान्वितः।
जायते योगिनोऽवश्यमेतत्सर्व कलेवरे।।

– (शिवसंहिता 3/33)

अर्थात् योगसाधाक प्रदीप्त जठराग्नि वाला, उचित अर्थात् यौगिक आहार ग्रहण करने वाला, सुखी, सभी प्रकार के बल एवं उत्साह से परिपूर्ण उदांप्त हृदय वाला –ऐसे सभी लक्षण योगी के शरीर में निश्चय ही आ जाते है।

हठसिद्धि के लक्षण

↓

शिवसंहिता के अनुसार (3/33)

↓

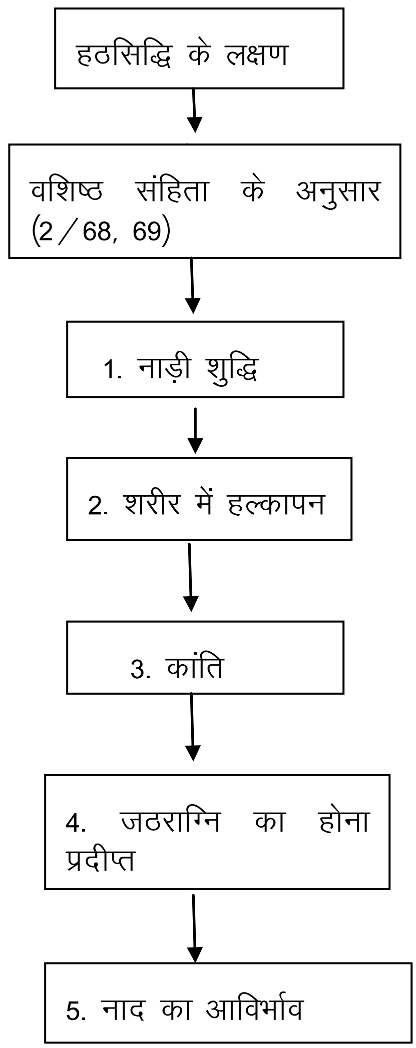
1. प्रदीप्त जठराग्नि
2. सात्विक/यौगिक आहार का शक्षण
3. सुख एवं आनंद की प्राप्ति
4. बल एवं उत्साह की प्राप्ति
5. उदाप्त हृदय

3.3.3 वशिष्ठ संहिता के अनुसार – हठसिद्धि के विविध लक्षणों का विवेचन वशिष्ठसंहिता में भी किया गया है। द्वितीय अध्याय के 68, 69 वें श्लोक में इसका वर्णन मिलता है। हठसिद्धि के लक्षणों को बताते हुए वशिष्ठ संहिता में कहा गया है –

नाड़ी शुद्धिमवात्नोति पृथक् चिह्नोपलक्षिताम्
शरीरलघुता दीप्तिर्जठराग्नि विवर्धनम्।।
नादा भित्यक्तिरिप्येतच्चिह्नं तच्छुद्धिसूचकम्।
यावतेतानि सम्पश्येत्तावदेवं समाचरेत्।।

– (वशिष्ठ संहिता 2/68,69)

''इससे अर्थात् हठयोग सिद्ध होने पर नाड़ी शुद्धि सूचक पृथक–पृथक चिन्ह प्राप्त होते है। जैसे शरीर में हल्कापन, कान्ति, जठराग्नि का बढ़ना ओर नाद का आविर्भाव ये सभी पिन्ड चिन्ह दिखाई देने तक इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए।



3.3.4 योग तत्वों उपनिषद् के अनुसार – योगतत्वोपनिषद् में हठसिद्धि के लक्षणों की चर्चा करते हुए कहा गया है –

जायन्ते योगीनो देहेतानि पक्ष्याम्य शेषतः
शरीरलघुता दीप्ति जाठराग्नि विवर्धनम्।
कृशत्वं च शरीरस्य तदा जायेत निश्चितम्
योग विहनकराहारं वर्जयेद्योगवित्तमः।।

– (योगतत्वोपनिषद्/45–46)

अर्थात् ''ये ऐसे बीज हैं कि शरीर में हल्कापन अनुभव होता है। जठराग्नि बढ़ जाती है, शरीर भी निश्चित रूप से कृश हो जाता हैं, ऐसे समय में योग में बाधा उपस्थित करने वाले आहार परित्याग कर देना चाहिए।

हठसिद्धि के लक्षण

↓

योगतत्वोपनिषद् के अनुसार (45–46)

↓

1. शरीर में लाघवता
2. जठराग्नि तीव्र होना
3. कृशकाय शरीर
4. सात्विक आहार ग्रहण करना

3.3.5 घेरण्डसंहिता के अनुसार – महर्षि घेरण्ड के अनुसार घटस्थ योग के अभ्यास के लिए साधक में निम्न सात गुणों का होना अत्यावश्यक हैं –

i. शोधन
ii. दृढ़ता
iii. स्थैर्य
iv. धैर्य
v. लाहान
vi. प्रत्यक्ष/आत्मसाक्षात्कार
vii. निर्लिप्तता

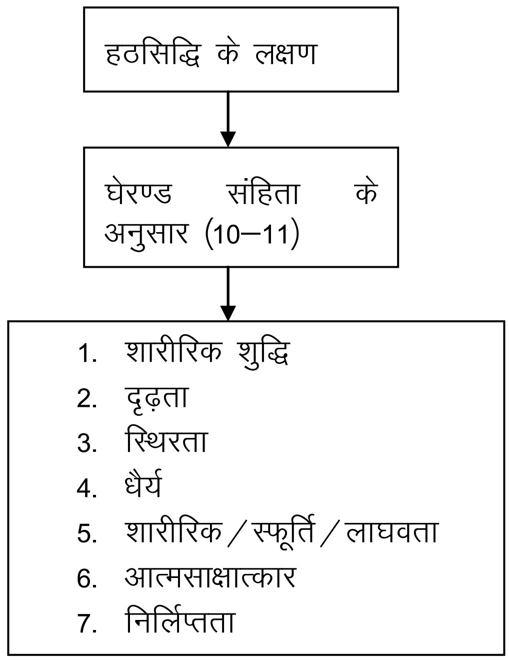
अर्थात् जैसे–जैसे साधक हठयोग का ऋद्धापूर्वक अभ्यास करता है। वैसे–वैसे उसमें इन गुणों का आविर्भाव (विकास) होने लगता है। इन्हीं सातगुणों को उन्हें ''सप्तसाधन'' नाम दिया है।

वास्तव में यदि देखा जाये तो साधक में धीरे–धीरे इन गुणों का विकसित होना उसके हठसिद्धि के लक्षणों की ओर ही ईशारा करता है। एक साधक किस प्रकार से स्वयं में इन

गुणों का विकास कर सकता है। अर्थात् वे कौन–कौन से योगाभ्यास है जिनको करने से हठयोग सिद्ध होता है इसकी चर्चा करते हुए महर्षि घेरण्ड कहते है –

''षट्कर्म'' शोधनं च आसनेन भवेत् दृढ़म्।
मुद्रया स्थिरता चैद प्रत्याहारेण धीरता।।
प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनः।
समाधिना निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः।।
– (घेरण्ड संहिता / 10–11)

अर्थात् ''षटकर्मों (धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक और कपालभॉति) से शरीर शुद्धि, आसनों से दृढ़ता, मुद्रया से स्थिरता तथा प्रत्याहार से धैर्य की प्राप्ति होती है। प्राणायाम से शारीरिक स्फूर्ति अर्थात् हल्कापन, ध्यान से आत्मसाक्षात्कार और समाधि से निर्लिप्तता तथा बिना संशय मुक्ति प्राप्त होती है।''



उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि योग के अनेक ग्रन्थों में हठसिद्धि के लक्षणों का अत्यन्त सुन्दर विवेचन किया गया है। प्रायः सभी ग्रन्थों में इन लक्षणों के विषय में समान बात कही गई है अर्थात् हठयोग सिद्ध होने पर यद्यपि साधक का शरीर पतला हो जाता है किन्तु उसका मुख्यमण्डल एक अलग प्रकार की आश्प से वैदीत्यमान रहता है। नेत्रों में तेजस्थिता झलकती है। शरीर स्फूर्तिवान रहता है। आलस्य–प्रभाव का नाश होता है, आरोग्य की प्राप्ति होती है, जठराग्नि तीव्र हो जाती है। शरीर में जो 72,000 नाड़ियॉ पायी जाती है। उनका मलनाश हो जाता है तथा श्रवण होने लगता है अर्थात् साधक ओजस्वी, तेजस्वी, पर्चस्वी बन जाता है, जो स्वयं के कतयण के साथ–साथ जगत के कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

अतः हम समझ सकते है कि हठयोग के माध्यम से किस प्रकार हम अपने जीवन का चहुमुॅखी नियोजित विकास करने साधना के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं तथा इस मार्ग को

हम कितना तय कर चुके हैं तथा कितना अभी शेष है, हठसिद्धि के लक्षणों द्वारा हम स्वयं ही इसकी परख भी कर सकते हैं। अतः स्पष्ट है कि हठयोग हमारे लौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सुखी एवं समृद्ध बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

प्रश्न 1. हठप्रदीपिका के कौन से उपदेश में हठसिद्धि के लक्षणों का वर्णन किया गया है ?

क. प्रथम ख. द्वितीय ग. तृतीय घ. चतुर्थ

प्रश्न 2. शिवसंहिता के कौन–से अध्याय एवं श्लोक में हठसिद्धि के लक्षण बताये गये है –

क. 4/32 ख. 2/33 ग. 1/32 घ. 3/33

प्रश्न 3. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें –

i. हठयोग के अभ्यास से नाड़ियॉ ....
ii. हठयोग सिद्ध होने पर जठराग्नि......................... हो जाती है।
iii. हठप्रदीपिका के द्वितीय उपदेश का नाम..........................है।

3.4 हठयोग की उपयोगिता

योग की पुण्य परम्परा में ''हठयोग'' का अनिवर्धनीय स्थान है। पतंजलि योग या अष्टांग योग के साथ जिस योग विद्या ने मानव जाति का समग्र विकास किया, उन्हीं में से एक लोकप्रिय एवं अति महत्वपूर्ण नाम है –''हठयोग''।

हठयोग वस्तुतः राजयोग का ही अभिन्न अंग है। यह एक ऐसी प्रणाली है, जिसके माध्यम से न केवल शरीर एवं मन को स्वस्थ बनाया जा सकता है, वरन् इनके (शरीर एवं मन) पारस्परिक संबंधों का भी ठीक प्रकार से समझा जा सकता है अथवा यह कहा जा सकता है कि हठयोग वस्तुतः मनोकाचिक अभ्यासों की एक अद्भुत श्रृखंला प्रस्तुत करता है। इसके निरन्तर एवं नियमित अभ्यास द्वारा आप अपना खोया हुआ स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य प्राप्त कर सकते हैं तथा मानसिक शक्ति प्राप्त कर प्रसुप्त क्षमताओं का जागरण कर सकते हैं तथा अपने सत्–चित–आनंदमय रूप दिव्य स्वरूप को प्रस्फुटित कर सकते है। हठयोग के दीर्घकालीन श्रद्धापूर्वक अभ्यास से आप अनंत संकल्प शक्ति के धनी बनकर राजयोग के सर्वोच्च शिखर पर आसीन हो सकते है। इसील का उल्लेख करते हुए हठप्रदीपिका के आसन विधि कथन नामक प्रथम उपदेश के प्रथम ही श्लोक में कहा गया है –

''श्री आदिनाथय नमोऽस्तु।
तस्मै येनोपदिष्टा हठयोग विद्या।
विभ्राजते प्रोन्नतराजयोग।
मारोढुमिच्छोरधिरोहिणीय।।''

– (हठप्रदीपिका/1/1)

अर्थात् ''उन सर्वशक्तिमान् आदिनाथ को नमस्कार है, जिन्होंने हठयोग विद्या की शिक्षा दी, जो राजयोग के उच्चतम शिखर पर चढ़ने की इच्छा रखने वाले अभ्यासियों के लिए सीढ़ी के समान है।''

यदि कोई साधक अन्य सभी योगों में कुशलता प्राप्त करना चाहता है तो उसे हठयोग का अभ्यास करना चाहिए क्योंकि सभी प्रकार की सांसारिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों को स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मन रूपी साधन के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। रोगग्रस्त शरीर एवं मन के द्वारा नहीं। अतः आयुर्वेद में भी कहा गया है –

''धमार्थकाममोक्षाणां आरोग्यं मूलमुप्तमम्।।''

अर्थात् पुरूषार्थ चतुस्टथ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि के लिए शरीर का स्वस्थ रहना अत्यन्त आवश्यक है।'' रोगी शरीर के द्वारा किसी भी प्रकार के पुरूषार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती और स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। कहा भी गया है –

"Sound mind lives in a sound body"

अतः चाहे कोई योगमार्ग को अनुयायी हो, चाहे गृहस्थ जीवन व्यतीत कर रहा हो अथवा जिसने सब कुछ त्याग कर सन्यास ग्रहण कर लिया हो, चाहे बालक, जवान, वृद्ध हो, स्त्री हो या पुरूष निरोग शरीर एवं स्वच्छ निर्मल मन सभी के लिए अत्यावश्यक है।

संसार में जो शक्ति ग्रह–नक्षत्रों की गति को नियंत्रित करती है, जो प्रकाश, वायु, ऊष्मा, विद्युत, रेडियो–तरंग इत्यादि का परिचालन करती है वह वस्तुतः हमारे भीतर ही विद्यमान है। वस्तुतः इस संसार में जो कुछ भी विद्यमान है। वह हमारे शरीर में भी विद्यमान है कहा भी गया है –

''यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे।।''

आवश्यकता है तो मात्रा उस सोयी हुई शक्ति को जगाने की। हम हठयोग रूपी कुंजी उसे उस प्राणशक्ति के अतुलित भंडार का द्वार खोलकर अपने जीवन को सुख, समृद्धि, शक्ति, शांति, आनंद, साहस एवं प्रभुता से परिपूर्ण कर सकते है।

शक्ति, आनंद, शक्ति रूप प्रकाश से दुःख, भय, रोग और मनोकायिक क्लेश रूप अंधकार को दूर कर सकते हैं।

आज की मानवता जो विविध प्रकार की शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक समस्याओं से ग्रस्त है, हठयोग उनके लिए एक वरदान है। अतः योगविद्या के पूर्ण ज्ञाता तथा योग्य, गुरू के मार्गनिर्देशन में प्राणी यदि स्वयं की जीवनशैली को व्यवस्थित बनाकर प्रकृति के अनुकूल जीवन व्यवस्थित करें तथा शुद्ध, संतुलन, सात्विक आहार–विहार अपनायें तथा कतिपय आसनों एवं प्राणायामों का नियमित अभ्यास करें तो आजीवन निरोग शरीर, स्वस्थ मन एवं दीर्घायु जीवन निःसंदेह प्राप्त कर सकते हैं।

''सार्वभौमिक शांति और समता स्थापित करने के लिए हठयोग एक प्रभावशाली साधन है, क्योंकि बाह्य संसार की शान्ति व्यक्ति के अन्तर्मन की शांति पर निर्भर है। जब तक प्रत्येक हृदय में योगाभ्यास के द्वारा क्रोध, द्वेष, लोभ, कामना, अज्ञान और अन्य ऋणात्मक वृत्तियों को समाप्त कर शांति स्थापित नहीं कर दी जाती तब तक संसार में सुख, शांति और क्षमता लाने के सभी बाह्य प्रयास व्यर्थ एवं निरर्थक सिद्ध होंगे।''

– (स्वामी ज्योतिप्रचानंद, 1999)

हठयोग के ग्रन्थों जैसे कि घेरण्ड संहिता में हठयोग साधना के लिए सात प्रकार के योगाभ्यास बताये गये हैं, जो निम्नलिखित हैं –

i. षट्कर्म
ii. आसन
iii. मुद्रा
iv. प्रत्याहार
v. प्राणायाम
vi. ध्यान
vii. समाधि

इन अभ्यासों को करते हुए जब साधक समाधिस्थ हो जाता है तो यह साधना ''हठयोग की साधना'' कही जाती है। इनके अतिरिक्त यम–नियम, यौगिक आहार को भी हठयोग में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

यदि वर्तमान व्यावहारिक जीवन की दृष्टि से देखें तो हठयोग के अन्तर्गत रोग एवं रोगी की स्थिति अर्थात् बलाबल के अनुसार विभिन्न प्रकार के षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्राणायाम का नियमित अभ्यास उसे करवाया जाता है, उसके आहार को संतुलित बनाया जाता है, जिससे कि उसे स्वास्थ्य की प्राप्ति हो। इस प्रकार हठयोग के अभ्यासों द्वारा विभिन्न प्रकार के रोगों का नियंत्रण एवं उनकी चिकित्सा की जाती है।

हठयोग की उपादेयता का विवेचन वस्तुतः इसके जो प्रमुख सात अंग बताये गये है, उनके आधार पर निम्नानुसार किया जा सकता है –

3.4.1 षट्कर्मों की महत्ता– हठयोग में षट्कर्म से आशय छः शोधन क्रियाओं – धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभॉति से है। जो शरीर से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालकर पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) तथा त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) को संतुलित अर्थात् आवश्यक अनुपात में बनाये रखती है। प्रत्येक शोधन क्रिया शरीर के एक विशिष्ट संस्थान पर अपना प्रभाव डालती है और उसकी कार्यक्षमता को बढ़ाती है। जैसे –

धौतिक्रिया– धौति क्रिया पाचन संस्थान को शुद्ध करती है। घेरण्ड संहिता में धौति के अनेक प्रकार बताये गये है। श्वासरोग, कफरोग, रक्तविकार, एकर्जी, मोटापा, कब्ज, अग्निमांध, चर्मरोग अर्थात् पेट की खराबी से उत्पन्न होने वाले रोगों में यह क्रिया विशेष रूप से उपयोगी है।

वस्ति क्रिया– वस्ति क्रिया से मलाशय एवं बड़ी आंत की सफाई होती है। इसके अभ्यास से प्लीहा, कब्जरोग, वातरोग इत्यादि विकारों को दूर किया जाता है।

नेति क्रिया– नेति क्रिया एक ई0 एन0 टी0 डॉक्टर की भूमिका का निर्वाह करती है। अर्थात् इसका अभ्यास नाक, कान एवं गले की सफाई के लिए किया जाता है। साइनोसाइटिस, माइग्रेन, सिरदर्द, ऑखों में जलन, दृष्टि कमजोर होना इत्यादि समस्याओं को दूर करने में यह क्रिया विशेष रूप से लाभकारी है।

नौलि क्रिया– 'नौलि' को 'लौलिकी' के नाम से भी जाना जाता है। उदरस्थ अंगों की अभ्यास मालिश तथा बल प्रदान करने के लिए इसका अभ्यास किया जाता है। पाचन एवं प्रजनन संस्थान की समस्याओं के निराकरण में यह क्रिया मुख्य रूप से उपयोगी है।

त्राटक– ऑख एवं तंत्रिका तंत्र (मस्तिष्कीय संस्थान) से संबंधित विकारों को दूर करने के लिए त्राटक का अभ्यास किया जाता है। इसका निरन्तर अभ्यास करने पर एकाग्रता एवं स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है।

कपाल भॉति– फेफड़ों को बल प्रदान करने वाली अंतिम शोधन क्रिया कपालभॉति है। तंत्रिका तंत्र सम्बद्ध रोग भी इससे दूर होते है। यह कफरोग, चर्मरोग को दूर करती है, वायुनली (श्वॉसनली) की सफाई करती है तथा मधुमेह में भी इसका अभ्यास लाभकारी है।

इस प्रकार षट्कर्मों के नियमित अभ्यास से विभिन्न प्रकार के रोगों से दूर रहा जा सकता है।

3.4.2 आसन का महत्व– शारीरिक रोगों को दूर कर प्रखर स्वास्थ्य प्राप्त करने के प्रभावशाली साधन के रूप में आसनों का हठयोग में अत्यन्त व्यापक विवेचन मिलता है। स्थिर एंव सुखपूर्वक एक विशेष शारीरिक स्थिति में बैठना ही वस्तुतः आसन है, जिससे कि

व्यक्ति देह भाव से ऊपर उठ सके। आसनों के नियमित अभ्यास से शरीर दृढ़ एंव हल्का बन जाता है, आलस्य दूर होकर स्फूर्ति आती है। विभिन्न प्रकार के आसन हमारे शरीर के विभिन्न संस्थानों जैसे कि मांसपेशीय संस्थान, पाचन संस्थान, अन्तः स्त्रावी संस्थान, तंत्रिका संस्थान, रक्त–परिसंचरण संस्थान, प्रजनन संस्थान इत्यादि पर अनुकूल प्रभाव डालते है तथा इन संस्थानों से सम्बद्ध रोगों को दूर कर शरीर को पुष्ट एवं स्वस्थ बनाते है।

''हठयोग के आसनों के अभ्यास से शरीर सुदृढ़, गठित, आकर्षक और पूर्णतः, रोगमुक्त हो जाता है।''

– (स्वामी ज्योतिर्मयानंद, 1999, P–260)

3.4.3 मुद्रा एवं बन्ध की उपयोगिता– हठयोग में मुद्रा–बंध का भी विशेष स्थान है। मुद्राओं के अभ्यास से मन स्थिर होता है।

''मुद्रया स्थिरता चैव।।''

– (घेरण्ड संहिता / 10)

मुद्रा के दौरान मन, आत्मा के साथ संयुक्त हो जाता है, चंचलता दूर होती है तथा साधक धारणा एवं ध्यान के अभ्यास में आगे बढ़ता है।

बंध, प्राणशक्ति को शरीर के किसी एक अंग विशेष पर बांध देते है। प्राणवायु के उर्ध्व एवं अपान वायु के नीचे की ओर होने वाले प्राण प्रवाह को नियंत्रित करने में बंध विशेष भूमिका निभाते है।

3.4.4 प्रत्याहार का महत्व– इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाने का अभ्यास प्रत्याहार है। इससे व्यक्ति में धैर्य का गुण विकसित होता है अर्थात् वह सुख–दुःख, अच्छी–बुरी प्रत्येक परिस्थिति का डटकर मुकाबला करता है तथा संसार में घटित होने वाली प्रत्येक घटना को साक्षी भाव से देखता है। कहा भी गया है –

''प्रत्याहारेण धीरता''

– (घेरण्ड संहिता / 10)

अर्थात् ''प्रत्याहार से धीरता की प्राप्ति होती है।''

3.4.5 प्राणायाम की उपदेयता – मन एवं इन्द्रियों को नियंत्रित करने के लिए जिस प्राणशक्ति की आवश्यकता होती है, प्राणायाम के अभ्यास से उस शक्ति को संरक्षित किया जाता है। प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ियॉ शुद्ध होती है। शरीर में हल्कापन आता है। भिन्न–भिन्न रोगों में भिन्न–भिन्न प्रकार के प्राणायामों का अभ्यास करवाया जाता हैं। तनाव, चिन्ता, भय, शंका इत्यादि को दूर कर मन में आशा, उत्साह, उमंग का संचार करने में प्राणायाम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

3.4.6 ध्यान की भूमिका – ध्यान, अन्तःकरण की साधना का नाम हैं ध्यान के माध्यम से प्रसुप्त मानसिक शक्तियों का जागरण होता है तथा मानसिक असंतुलन एवं भावनात्मक विक्षोभ से उत्पन्न होने वाले रोग दूर होते हैं। ध्यान जब प्रगाढ़ होता है तो यह संस्कारों तक का नाश करने की सामर्थ्य रखता हैं। योगीजन ध्यान के माध्यम से अपने कर्मसंस्कारों का क्षय करते हैं।

3.4.7 समाधि की महत्ता – हठयोग साधना के अंतिम अंग के रूप में समाधि का विवेचन मिलता है। वस्तुतः समस्त संस्कारों का क्षय होना तथा साधक का आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होना ही समाधि है। इस स्थिति में पहॅुचने पर साधक के लिए कोई भी कर्म

संस्कार शेष नहीं रहता है। वह निर्लिप्तता की स्थिति को प्राप्त करता है। अन्ततोगत्वा सत्–चित–आनंदमय रूप मुक्ति की प्राप्ति साधक को हो जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हठयोग के नियमित निरंतर अभ्यास से व्यक्ति यांत्रिक जिन्दगी में बिना एलोपैथी दवाईयों के न केवल अनेक रोगों को दूर कर सकता है। वरन् स्वास्थ्य का संरक्षण भी कर सकता है। वरन् स्वास्थ्य का संरक्षण भी कर सकता है। जब शरीर स्वस्थ होगा तो मन भी स्वस्थ होगा और जब व्यक्ति स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मन के साथ जिस भी कार्य को करेगा, उसी कार्य में सफलता उसके कदम चूमेगी, संख उसकी प्रतिभा के आगे नतमस्तक होगा।

योगिराज स्वात्मारामजी ने हठयोग के महत्व को निरूपित करते हुए कहा है –

''अशेषतापतप्तानां समाश्रयमठो हठः।
अशेषयोगयुक्तानामाधारकमठो हठः।।''

– (हठप्रदीपिका 1/10)

अर्थात् ''सभी प्रकार के दुःखों से पीड़ित जनों के लिए हठयोग आश्रयरूप मंत्र है। सभी प्रकार के योगाभ्याससियों के लिए हठयोग आधारभूत कच्छप है।''

''हठयोग का मुख्य कार्य है शरीर का शोधन करना और 72,000 नाड़ियों का मलदोष दूर कर उन्हें परिशुद्ध करना। हठयोग पेट की तमाम गड़बड़ियों को दूर करता है। स्नायु तथा मांसपेशियों में शक्ति एवं स्फूर्ति प्रदान करता है। हमारे शरीर के अन्दर जो अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियॉ है, जैसे थायरॉइड, पिट्यूटरी, एड्रीनल इत्यादि को स्वस्थ, निरोग, क्रियाशील एवं आलस्य रहित कार्यक्षमता प्रदान करता है।''

(स्वामी विज्ञानानंद सरस्वती, 2007, P–125)

अभ्यासार्थ प्रश्न –

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

4. धौति क्रिया .... को शुद्ध करती है।
5. मुद्रा से.......................... की प्राप्ति होती है।
6. नेति क्रिया .... डॉक्टर की तरह कार्य करती है।

3.5 सारांश

हठसिद्धि के लक्षण का अर्थ – योगसाधना के चरम लक्ष्य तक पहुॅचने से पूर्व योग के आन्तरिक एवं बाह्य व्यक्तित्व में जो–जो रूपान्तरण होता है अर्थात् परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं, उन्हें हठसिद्धि के लक्षण कहा जाता है।

हठसिद्धि के लक्षण –

- शरीर में हल्कापन
- मुख्यमण्डल पर प्रसन्नता
- सात्विक आहार का भक्षण
- स्वर सौष्ठव
- नेत्रों में तेजस्विता
- आरोग्यता
- जठराग्नि की प्रदीप्ति

- बिन्दु पर नियंत्रण
- नाड़ियों की शुद्धि
- नाद का आविर्भाव
- बल एवं उत्साह की प्राप्ति इत्यादि।

हठयोग के प्रमुख अभ्यास –

i. षट्कर्म (धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभॉति)
ii. आसन
iii. मुद्रा एवं बंध
iv. प्रत्याहार
v. प्राणायाम
vi. ध्यान
vii. समाधि

हठयोग की उपयोगिता – हठयोग के दीर्घकाल तक आलस्य रहित नियमित अभ्यास से शुद्धता, दृढ़ता, स्थिरता, धीरता, लाघवता, आत्मसाक्षात्कार और अन्ततः निर्लिप्तता की प्राप्ति होती है।

3.6 शब्दावली

- हठसिद्धि – हठयोग साधना का सफल होना
- षटकर्म – छः शोधन क्रियायें
- प्रदीप्ति – जागृत होना या तीव्र होना
- भक्षण – ग्रहरण करना, खाना
- कृश – दुबला–पतला
- नाड़ी – सूक्ष्म नलिकायें, जिससे प्राण शक्ति का प्रवाह होता है।
- प्रसुप्त – सोई हुई अर्थात् जो जागृत नहीं है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न 1. ख
प्रश्न 2. घ
प्रश्न 3.
i. शुद्ध
ii. प्रदीप्त/तीव्र
iii. प्राणायाम विधि कथन
प्रश्न 4. पाचन संस्थान
प्रश्न 5. स्थिरता
प्रश्न 6. ई0 एन0 टी0

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सूरी, स्वात्माराम (2001), हठप्रदीपिका। कैवतयधाम श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनावला – 410403 (पुणे)

2. सरस्वती, निरंजनानंद (1997) घेरण्ड संहिता। योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत।
3. सरस्वती विज्ञानानंद (2007), योग विज्ञान। योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि की रेती, ऋषिकेश–249192
4. सिंह राम हर्ष (2007) स्वस्थवृत्त–विज्ञान। चौरखंभा सांस्कृतिक प्रतिष्ठान।
5. वशिष्ठ संहिता (1984) कैवल्यधाम श्रीमन्माधवयोग मंदिर समिति, लोनावाला (पन्त) महाराष्ट्र।
6. ज्योतिर्मयानंद (1999) व्यावहारिक योग। इंटरनेशनल योग सोसाइटी, लालबाग, लोनी, 201102, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश।

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. विभिन्न यौगिक तथ्यों के अनुसार हठसिद्धि के लक्षणों का विस्तृत विवेचन कीजिए।

प्रश्न 2. सांसारिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से हठयोग की उपादेयता पर प्रकाश डालिए।

इकाई 4 षट्कर्म का अर्थ एवं परिभाषा, षट्कर्मो का वर्गीकरण

4.1 प्रस्तावना–

प्रिय पाठकों, हठयोग शरीर की शुद्धि एवं राजयोग में प्रवेश का एक मार्ग है। हठयोग में योग के सात अंगों का वर्णन किया गया है। जिसे हठयोग के सप्तांग की संज्ञा दी जाती है। इन सात अंगों का प्रथम अंग षट्कर्म है जिसमें शरीर शोधन की छह प्रमुख क्रियाओं का वर्णन किया गया है। इन क्रियाओं का अभ्यास करने से शरीर का शोधन होता है। शरीर से मेद एवं श्लेष्मा की अधिकता दूर होती है। परिणामस्वरूप शरीर स्वस्थ बनता है। आधुनिक काल में जहाँ चारों ओर प्रदूषण की अधिकता बढ़ती जा रही है तथा जिसके कारण सर्दी, जुकाम, सायनस, सिरदर्द, एलर्जी, दमा, त्वचा रोग, कब्ज, अपच, मोटापा जैसे रोग फैलते जा रहे हैं तथा विभिन्न दवाईयों का प्रयोग इन रोगों पर निष्प्रभावी सिद्ध हो रहा है, ऐसे रोगों में षट्कर्मो का अभ्यास अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होता है तथा इन षट्कर्मो का नियमित अभ्यास करने से ये रोग जीवन में आते ही नहीं है। इन षट्कर्मो की उपयोगिता को जानने के बाद अब आपके मन में इनके अध्ययन करने की जिज्ञासा अवश्य उत्पन्न हुई होगी अतः अब हम इन षट्कर्मो के अर्थ, परिभाषा एवं वर्गीकरण पर विचार करते हैं –

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- षट्कर्मो का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- षट्कर्मो के अर्थ को बताने में सक्षम हो सकेंगे।
- षट्कर्मो को वर्गीकरण कर सकेंगे।
- षट्कर्मो का विश्लेषण कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अंत में दिए प्रश्नों के उत्तर को दे सकेंगे।

4.3 षट्कर्म का अर्थ एवं परिभाषा–

प्रिय पाठकों, शाब्दिक अर्थ करने पर षट्कर्म दो शब्दों षट्+कर्म से मिलकर बना है। षट् का अर्थ छह और कर्म का अर्थ क्रियाओं से होता है अर्थात् षट्कर्म के अन्तर्गत छह क्रियाओं का वर्णन आता है। षट्कर्म की ये छह क्रियाएं शरीर शोधन का कार्य करती हैं। ये क्रियाएं स्थूल शरीर को शुद्ध करती हुई सूक्ष्म शरीर के शुद्धिकरण में भी अत्यन्त सहायक होती है। इन क्रियाओं का अभ्यास करने से शरीर की स्थूलता नष्ट होती है और कफ दोष की अधिकता भी दूर होती है। षट्कर्म का अभ्यास शरीर की नाड़ियों में प्राण प्रवाहों के मध्य सामंजस्य स्थापित करता है। इसी सामंजस्य से शारीरिक एवं मानसिक शुद्धि होकर शारीरिक एवं मानसिक संतुलन प्राप्त होता है।

हठयोग के ग्रन्थों घेरण्ड संहिता एवं हठ प्रदीपिका में इन षट्कर्मो पर मुख्य रूप से प्रकाश डाला गया है। घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड षट्कर्मों की सविस्तार व्याख्या करते है। महर्षि घेरण्ड इन षट्कर्मों को हठयोग के प्रथम अंग के रूप में वर्णित करते हुए इनका उपदेश घेरण्ड संहिता नामक ग्रन्थ में करते हैं। महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि शरीर का शोधन करने के लिये एवं शरीर की नाड़ियों में प्राण प्रवाहों के मध्य सामन्जस्य स्थापित करने के लिये षट्कर्मो का अभ्यास करना चाहिए। इनके अभ्यास से शरीर एवं मन की शुद्धि के साथ–साथ शारीरिक एवं मानसिक संन्तुलन की प्राप्ति होती है।

वात, पित्त, कफ नामक त्रिदोषों की विषमता में भी इन षट्कर्मो की उपयोगिता को दर्शाते हुए महर्षि घेरण्ड उपदेश करते है कि शरीर में स्थित त्रिदोषों में विषमता उत्पन्न होने पर साधक को षट्कर्मो का अभ्यास करना चाहिए। घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड षट्कर्मो को इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिः लौलिकी त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत्।।
– (घेरण्ड संहिता 1/2)

अर्थात् धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक एवं कपालभाति इन छह कर्मो का आचरण योगी के लिए आवश्यक है।

हठयोग के दूसरे प्रमुख ग्रन्थ हठ प्रदीपिका के द्वितीय उपदेश में इन षट्क्रियाओं (षट्कर्म) का उपदेश करते हुए कहा गया है कि शरीर में स्थूलता होने पर साधक को इन षट्कर्मो का अभ्यास करना चाहिए। हठप्रदीपिका में शरीर में स्थूलता अथवा वात–पित्त, कफ दोषों की विषमता होने पर भी इन षट्कर्मो के अभ्यास का उपदेश किया गया है तथा शरीर में मुख्य रूप से कफ दोष की विषमता में इन षट्कर्मो का विशेष रूप से अभ्यास का उपदेश है। यहां पर षट्कर्मो के परिभाषित करते हुए कहा गया–

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते।
– (ह0 प्र0 2/22)

अर्थात् धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि एवं कपालभाति ये छः शोधन क्रियाएं कहे गये है। शरीर में मलों की अधिकता होने पर नाड़ियों में प्राण का प्रवाह बाधित हो जाता है साथ ही ये मल शरीर में वात पित्त, कफ नामक त्रिदोषों में विषमता उत्पन्न करते हैं, ऐसी अवस्था में शरीर में व्याधि (रोग) उत्पन्न होते हैं एवं साधक की साधना बाधित होती है। इसके निवारण हेतु इन षट्कर्मो के अभ्यास का उपदेश ऋषियों द्वारा किया गया है। इन षट्कर्मो का अभ्यास करने से शरीर की स्थूलता (भारीपन) दूर होती है एवं शरीर में निर्मलता उत्पन्न होती है। इन ऋषिप्रोक्त षट्कर्मो का वर्गीकरण इस प्रकार है–

4.4 षट्कर्मों का वर्गीकरण–

धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, (नौलि) त्राटक एवं कपालभाति नामक षट्कर्मो का वर्गीकरण इस प्रकार है–

4.4.1 धौति कर्म – धौति कर्म का सामान्य अर्थ धोने से है। यहां पर धौति कर्म से तात्पर्य सम्पूर्ण पाचन तंत्र को धोने के संदर्भ में लिया गया है। घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड धौति कर्म को इस प्रकार वर्णित करते है–

अन्तर्धौतिर्दन्तधौतिर्हृद्धौतिर्मूलशोधनम्।
धौतिं चतुर्विद्यां कृत्वा घटं कुर्वन्ति निर्मलम्।।
– (घेरण्ड संहिता 1/13)

अर्थात् अन्तः धौति, दन्त धौति, हृद्ध धौति और मूलशोधन के भेद से धौति कर्म चार प्रकार का होता है। इसके द्वारा योगी जन अपने शरीर को स्वच्छ (स्वस्थ) बनाता है।

(क) अन्तर्धौति – अन्तर्धौति का अर्थ होता है आन्तरिक सफाई। अन्तर्धौति में वायु और जल के प्रयोग से उदर प्रदेश का शोधन होता है।

वातसारं वारिसारं वहिन्सारं बहिष्कृतम्।
घटस्य निर्मलार्थाय "यन्तर्धौतिश्चतुर्विधा।।
– (घे0 सं0 1/14)

धौति कर्म के चार प्रकारों में से प्रथम अन्तधौति के भी चार भेद होते हैं – वातसार, वारिसार, वह्निसार, और बहिष्कृत, ये चारों ही शरीर को निर्मल बनाने के लिए ही की जाती है।

1. **वातसार अन्तर्धौति–**

विधि– कौवे की चोंच के समान दोनों ओठों को करके धीरे–धीरे वायु को पीयें। पूर्ण रूप से पान कर लेने पर पेट में उसका परिचालन करें और फिर उस वायु को निकाल दें।

2. **वारिसार अन्तर्धौतिः–**

वारि का अर्थ है जल तथा सार का अर्थ है तत्व, अर्थात् जल तत्व से उदर प्रदेश को धोना।

विधि– वारिसार अन्तर्धौति की विधि का उल्लेख करते हुए महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि मुख से धीरे–धीरे जल पीते हुए कण्ठ तक जल भर लेना है, उसके बाद उदर को चलाकर जल को अधोमार्ग से निकाल देना है। यह वारिसार संज्ञक धौति परम गोपनीय एवं शरीर को स्वच्छ करने वाली है। इसका प्रयत्न पूर्वक साधन करने वाले योगी को देवताओं के समान शरीर की प्राप्ति होती है।

प्रिय पाठकों वारिसार अन्तर्धौति के समान शंख प्रक्षालन क्रिया का वर्णन भी ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इस क्रिया में जल पीने के उपरान्त पांच आसनों ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन, तिर्यक भुजंगासन व उदरार्कषण आसन का अभ्यास करते हुए जल को अधोमार्ग से निकाल देते हैं। यह अभ्यास वारिसार अन्तर्धौति के समान उदर प्रदेश का शोधन करता है।

3. **वह्निसार अथवा अग्निसार अन्तर्धौति**

ऐसी क्रिया जिसके द्वारा जठराग्नि को तीव्र करके पाचन शक्ति को बढ़ाया जाता है, वह्निसार अथवा अग्निसार अन्तर्धौति कहलाती है। इसकी विधि का वर्णन करते हुए महर्षि घेरण्ड कहते है–

विधि– प्राण वायु को रोककर नाभि को मेरू पृष्ट भाग में लगाये। इससे अग्निसार संज्ञक धौतिकर्म सम्पन्न होता है। यह धौति कर्म अत्यन्त गोपनीय और देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।

4. **बहिष्कृत अन्तर्धौति**

विधि– कौवे की चोंच के समान ओंठों को करके उनके द्वारा वायु पान करते हुए उदर को भर लें। उस पान की हुई वायु को आधे पहर (डेढ़ घंटा) तक उदर में रोककर परिचालित करते हुए अधोमार्ग से निकाल दें यह परम गोपनीय बहिष्कृत धौति कहलाती है।

(ख) दन्त धौति– दन्तधौति का शाब्दिक अर्थ दातों की सफाई से होता है, लेकिन यहां पर इसे सम्पूर्ण शीर्ष प्रदेश की सफाई करने के अर्थ में वर्णित किया गया है। इसका वर्णन करते हुए महर्षि घेरण्ड कहते हैं–

दन्तमूलं जिह्वामूलं रन्ध्रं च कर्णयुग्मयोः।
कपालरन्ध्रं चैते दन्तधौतिर्विधीयते।।
– (घे0 सं0 1/25)

अर्थात् दन्त धौति के पांच भेद है। दन्तमूल, जिह्वामूल, कर्णरन्ध्र और कपालरन्ध्र। ये चार प्रकार की धौतियाँ हुई, इनमें दोनों कानों के रन्ध्रों से होने वाली दो धौति मानी गयी है। इस प्रकार दन्त धौति के पाँच प्रकार हुए।

1. **दन्तमूल धौति –**

विधि– जब तक मैल न छूटे तब तक खादिर के रस अथवा विशुद्ध मिट्टी से दातों की जड़ों को माँजना चाहिए। योगियों को यह साधन अपने दातों की रक्षा के लिए नित्य प्रातःकाल अवश्य कराना चाहिए। यह दन्तमूल धौति कहलाती है।

2. **जिह्वामूल धौति अथवा जिह्वाशोधन धौति –**

विधि– तर्जनी, मध्यमा और अनामिका तीनों अंगुलियों को एक साथ मिलकर कंठ में डाल जिह्वा की जड़ को स्वच्छ करना चाहिए। धीरे–धीरे कोमलता से रगड़ने से कफ दोष का निवारण होता है।

3. **कर्णरन्ध्र धौति –**

विधि– तर्जनी और अनामिका को मिलाकर योगीजन दोनों कानों के छिद्रों की सफाई करते हैं। इस योग विधि के नित्य अभ्यास से साधक नाद की अनुभूति करने में सक्षम होता है। यह अभ्यास कर्णरन्ध्र धौति कहलाती है।

4. **कपालरन्ध्र धौति –**

विधि– अपने दाहिने हाथ की अंगुलियों को समेटकर एक कप की आकृति बनाकर उस कप की आकृति वाले हाथ में पानी भरकर कपालरन्ध्र में थपकी देनी चाहिए। यह अभ्यास कपालरन्ध्र धौति कहलाती है।

(ग) हृद्धौति– घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड हृद्धौती के तीन प्रकारों का वर्णन करते हैं–

(i) **दण्ड धौति**

विधि– केले के मृदु भाग के डण्डे अथवा हल्दी के डंडे को हृदय के मध्य बार–बार घुसाकर धीरे–धीरे निकालना चाहिए। फिर कफ, पित्त, क्लेद का मुख द्वार से रेचन करना चाहिए। यह अभ्यास करने से हृदय रोग दूर होते हैं। वर्तमान समय में केले अथवा हल्दी

के डण्डे के स्थान पर रबर के मुलायम एवं लचीले पाइप का प्रयोग कर दण्ड धौति का अभ्यास किया जाता है।

(ii) **वमन धौति–** यह क्रिया दो प्रकार से होती है –

(a) **कुंजल क्रिया या कुंजर क्रिया–**

विधि– प्रातःकाल शौचादि से निवृत होकर, एक से डेढ किलो गुनगुने पानी में हल्का सा नमक मिलाकर जितना संभव हो उतना प्रयत्न पूर्वक पानी पीजिए। फिर खड़े होकर 90 डिग्री के बीच झुककर बायें हाथ के बीच की दो अँगुलियों को मुख में डालकर गले का स्पर्श करने पर वमन होकर पानी बाहर निकल जाता है। इस अवस्था में दाहिने हाथ को उदर पर रखते हैं।

(b) **व्याघ्र क्रिया या बाघी क्रिया–**

कुछ जानवर जैसे शेर, बाघ तथा कुत्ता इस क्रिया का प्रायः अभ्यास करते है तथा इस क्रिया के द्वारा ये आमाश्य में स्थित अपाच्य अन्न को बाहर निकाल देते हैं।

विधि– भोजन के बाद पानी को पीकर कण्ठ तक पूरा भर लेते है, कुछ क्षणों के लिए अपनी दृष्टि को ऊपर करते हुए इस पानी को बाहर निकाल देते है। यह व्याघ्र क्रिया कहलाती है।

(ग) वस्त्र धौति–

विधि– इसमें सूती अथवा मलमल का एक 22 फुट लम्बा एवं चार अंगुल चौड़ा वस्त्र होता है। उखडु बैठकर इस वस्त्र के एक सिरे को जिह्वा मूल पर रखते हुए जैसे भोजन को निगलते हैं उसी प्रकार लार के साथ वस्त्र को निगले हुए आठ से दस मिनट के अन्दर पूरे वस्त्र को निगल लेते हैं। तत्पश्चात् वमन के रुप में इस वस्त्र को बाहर निकाल देते हैं। यह अभ्यास वस्त्र धौति कहलाता है।



(घ)मूल शोधन– जिस क्रिया से शरीर के मूल भाग की सफाई होती है, उस क्रिया को मूल–शोधन क्रिया कहा गया है। इसमें शरीर के मूल भाग अर्थात् गुदा (बड़ी आँत) की सफाई की जाती है।

विधि– हल्दी की जड़, अथवा मध्यमा अंगुली के द्वारा जल के योग से पुनः–पुनः प्रक्षालन करना मूल शोधन कहलाता है।

प्रिय पाठकों, हठप्रदीपिका में स्वात्माराम योगी धौति कर्म के दो प्रकारों का वर्णन करते हैं–

(क) वस्त्रधौति

(ख) गजकरणी

(क) वस्त्र धौति– वस्त्र धौति का अभ्यास उपरोक्त विधिनुसार किया जाता है।

(ख) गजकरणी

विधि – जिस प्रकार हाथी सूंड में पानी भरकर बाहर फेंकता है उसी रुप में इस क्रिया का वर्णन किया गया है। इस अभ्यास हेतु हल्के गर्म अथवा गुनगुने पानी में हल्का सा नमक मिलाकर यत्नपूर्वक अधिक से अधिक पानी पीते है, तत्पश्चात् अंगुलियों को बिना मुख में डाले फव्वारे की तरह इस जल को धारा प्रवाह के रुप में बाहर निकाल देते हैं। यह अभ्यास गजकरणी कहलाता है।

4.4.2 वस्ति कर्म– षट्कर्म की दूसरी क्रिया वस्ति कर्म है। जिसमें बड़ी आँत के शोधन का वर्णन है। घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड इसके दो भेदों का वर्णन करते हुए कहते हैं –

जलवस्तिः शुष्कवस्तिर्वस्ति च द्विविधौ स्मृतौ।
जल वस्तिं जले कुर्याच्छुकवस्तिं सदा क्षितौ।
– (घे.सं. 1/45)

अर्थात् वस्ति कर्म दो प्रकार का होता है– जल वस्ति और शुष्क वस्ति। जल वस्ति का अभ्यास जल में तथा शुष्क वस्ति का अभ्यास भूमि पर किया जाता है।

(क) जलवस्ति–

विधि– इसके अभ्यास के लिए एक बड़े टब में अथवा नाभि तक गहरे जल (स्वच्छ) से भरे किसी स्थान पर उत्कट आसन में खड़े हो जाते हैं। जल में खडे होकर गुदा द्वार के संकुचन एवं प्रसारण की क्रिया करते हैं। जब श्वास लेते है तब गुदा द्वार को अन्दर की ओर खींचते है और जब श्वास छोड़ते है तब गुदा द्वार को ढीला छोड़ते है। यह अभ्यास जल वस्ति कहलाता है। इसके लिए यदि बहता हुआ जल हो तो वह अधिक उपयुक्त रहता है। संकुचन की क्रिया से जल आँतों में प्रविष्ट होकर आँतों में चिपके सूखे मल को भी शरीर से बाहर निकाल देता है। जब पानी अन्दर चला जाता है तब नौलि संचालन क्रिया भी की जा सकती है।

(ख) शुष्क वस्ति अथवा पवन वस्ति–

विधि– पवन वस्ति का अभ्यास करने के लिए जमीन पर पश्चिमोत्तान आसन में बैठकर अश्विनी मुद्रा का अभ्यास किया जाता है। यहां पर पश्चिमोत्तान आसन में दोनों पैरों के पंजों के मध्य 1 फुट की दूरी रखकर गुदा द्वार का आंकुचन एवं प्रसारण करते है। श्वास की स्थिति पूर्ववत् ही रखते हैं अर्थात् श्वास भरते समय आंकुचन क्रिया एवं श्वास छोड़ते समय प्रसारण किया करते हैं। यह अभ्यास पवन वस्ति कहलाता है।

4.4.3 नेति कर्म– षट्कर्मों में शुद्धिकरण की तीसरी क्रिया के रुप में नेति कर्म का वर्णन किया गया है। यह अभ्यास सम्पूर्ण शीर्ष प्रदेश का शोधन करता है। नेति कर्म के संदर्भ में महर्षि घेरण्ड लिखते हैं –

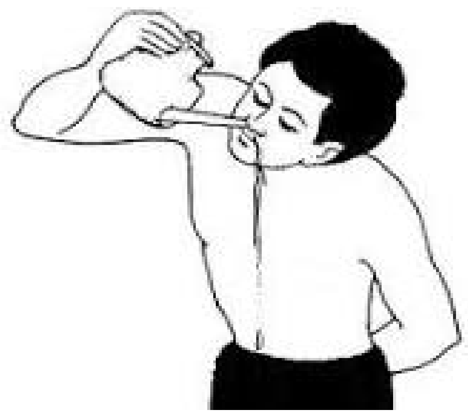
विस्तिमानं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात् प्रोच्यते नेतिकर्मकम्।।
– (घे.सं. 1/50)

अर्थात् आधा हाथ लम्बा डोरा लेकर नासिका में घुसाएं और मुख से बाहर निकाल दें, यह नेति कर्म कहलाता है।

प्रिय पाठकों ऊपर वर्णित सूत्रनेति क्रिया का अभ्यास करने से पूर्व जल नेति क्रिया का अभ्यास भी किया जा सकता है। इसकी विधि इस प्रकार है–

जल नेति–

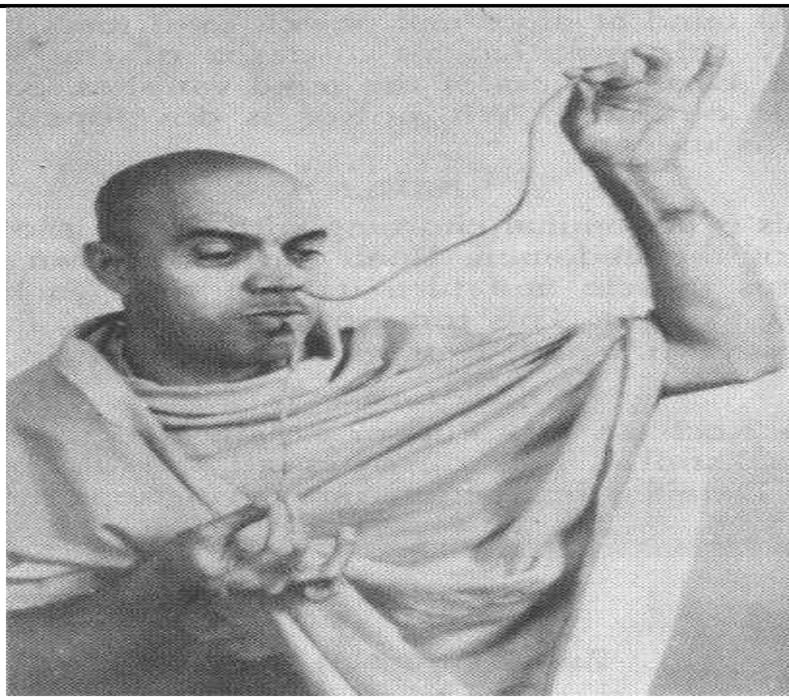
विधि– जल नेति के लिये एक विशेष आकार का लोटा बनाया जाता है। इस लोटे में गुनगुना एवं नमकीन जल भरकर लोटे की नली को दाँयी नासिका में लगाकर बाँयी नासिका को थोड़ा नीचे की ओर रखते है। मुख को थोड़ा खोलकर श्वास–प्रश्वास की प्रक्रिया मुख से ही करते हैं। ऐसा करने पर जल स्वतः ही बाँयी नासिका से बाहर आने लगता है। इसी प्रकार दूसरी नासिका से भी प्रकार अभ्यास करते हैं।



नेति के लिए प्रातः काल का समय अधिक उपयुक्त होता है किन्तु रोग होने की स्थिति में इसका अभ्यास दोनों समय (प्रातः काल व सायं काल) भी किया जा सकता है।

सूत्रनेति

विधि– यह सूत की बनी हुई एक रस्सी होती है। जिसे सूत्रनेति कहा जाता है। सूत्रनेति को नासिक में डालने से पूर्व जल में भिगोते हैं। अब सूत्रनेति को थोड़ा वृत्ताकार मोड़कर नासिक में प्रवेश कराते हैं। नासिक में धीरे– धीरे आगे बढ़ती हुई सूत्रनेति मुख में आ जाती है। मुख में आने पर हाथ की सहायता से इसके एक सिरे को पकड़कर बाहर निकाल लेते हैं। अब दोनों हाथों से सूत्रनेति के दोनों सिरों को पकड़कर नासिक एवं मुख में इसका दोहन व चालन करते हैं। चालन करने के पश्चात इसको मुख से बाहर निकालते हैं।



4.4.4 लौलिकी कर्म– लौलिकी शब्द की व्युत्पत्ति "लोल" शब्द से हुई है, इसका अर्थ उत्तेजना पूर्वक इधर–उधर घुमना होता है। यहां इसका अर्थ पेट की मांसपेशियों एवं उससे सम्बन्धित मांसपेशियों को संकुचित कर घुमने से है। इससे पाचन संस्थान के सभी अंग, मांसपेशियां एवं स्नायु उत्तेजना शक्ति को प्राप्त कर ज्यादा सक्रिय होते हैं। इस क्रिया का यौगिक नाम नौलि क्रिया है। इस किया पर प्रकाश डालते हुए महर्षि घेरण्ड कहते हैं–

अमन्दवेगेन तन्दं भ्रमायेदुभपार्श्वयोः।
सर्वरोात्रिहन्तीह देहानलविवद्धनम्
– (घे.सं. 1/52)

अर्थात् उदर को दोनों पार्श्वों में अत्यन्त वेगपूर्वक घुमाना चाहिए। यह लौकिकी, अर्थात् नौलि कर्म सब रोगों का नाशक और जठरानल का उद्दीपक है। इस क्रिया से उदर की मांसपेशियां मजबूत होती हैं एवं पाचन संस्थान की आन्तरिक क्रियाएं अच्छी प्रकार अपना कार्य करती हैं। इस क्रिया को करने से उदर की मांसपेशियों को पर्याप्त शक्ति मिलती है और इन मांसपेशियों के कारण उन सभी क्रियाओं पर पूर्ण नियंत्रण रहता है जिनके द्वारा आंतरिक अंग क्रियाशील रहते हैं अर्थात् यह अभ्यास आन्तरिक अंगों को स्वस्थ एवं सकिय बनाता है। महर्षि घेरण्ड के अनुसार यह नौलि किया चार प्रकार की होती है–

(क). मध्यमा नौलि

विधि – इसके लिए पैरों में एक से डेढ़ फीट का अन्तर रखते हुए, घुटनों के ऊपर हाथ रखते हुए खड़े हो जाते हैं। हाथों से घुटनों को दबाते हुए तथा दृष्टि को सामने भूमि पर रखते हैं। अब श्वास बाहर निकालते हुए पेट को पहले पूरा अन्दर सिकोड़ते हैं फिर उदर के मध्य नाभि वाले भाग को आगे की ओर ढीला छोड़कर सामने की ओर निकालते हैं।

जब श्वास की इच्छा हो तो श्वास को अन्दर भर कर पेट को ढीला छोड़ देते हैं। इसी प्रकार पुनः अभ्यास को दोहराते हैं।

(ख). वाम नौलि

विधि – इसमें भी पैरों पर खड़े होकर हाथों से घुटनों को दबाते हुए पहले मध्यमा नौलि करते हैं। अब बाई ओर थोड़ा झुकते हुए, बांए हाथ पर दबाव डालते हैं। इससे उदर की बड़ी मांसपेशियां बांयी ओर निकल जाती हैं। इस प्रक्रिया में दांये हिस्से को ढीला रखना चाहिए।

(ग). दक्षिण नौलि

विधि – इसमें भी पूर्व की भांति ही स्थिति ग्रहण करते हैं। दृष्टि सामने भूमि पर रखते हैं। अब दांई ओर थोड़ा झुकते हुए, दांए हाथ पर दबाव डालते हैं। दांयी ओर दबाव पड़ने पर उदर की बड़ी मांसपेशियां दांयी ओर आगे की ओर निकल आती है। मध्यम नौलि में पूर्ण दक्षता प्राप्त होने पर ही वाम नौलिक एवं दक्षिण नौलि का अभ्यास करना चाहिए।

(घ). भ्रमर नौलि

विधि – भ्रमर नौलि करने के लिए पहले मध्यम नौलि करते हैं इसके बाद वाम नौलि करते हैं पुनः उड्डियान बन्ध लगाते हैं। इसके बाद दक्षिण नौलि का अभ्यास करते हैं अन्त में फिर मध्यम नौलि करते हैं। इस प्रकार यह पेट की मांसपेशियों को घुमाने की प्रक्रिया हुई। यह सारी क्रिया जब एक क्रम से की जाती है तब इसे भ्रमर नौली अथवा नौलि संचालन कहा जाता है। हठप्रदीपिका में स्वात्माराम योगी नौलि कर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं–

अमन्दावर्तवेगेन तुन्दं सव्यापसव्यतः।
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धैःप्रचक्ष्यते।।– (हठप्रदीपिका 2/34)

अर्थात् कन्धे को थोड़ा आगे की ओर झुकाकर तीव्र गति वाले भंवर के समान उदर को दाहिने से बांये ओर बांये से दांये घुमाना चाहिये। सिद्धों के द्वारा इसे ही नौलि कहा जाता है।

4.4.5 त्राटक कर्म– त्राटक षट्कर्म की पांचवी प्रमुख क्रिया है, जिसका अभ्यास शरीर शोधन के साथ–साथ मन की एकाग्रता को बढ़ाने वाला होता है। हठयोग में त्राटक को एक शुद्धिकरण क्रिया के रूप में देखा गया है जिसका उपयोग मस्तिष्क को शांत एवं निर्मल बनाने के लिए किया जाता है। त्राटक कर्म पर प्रकाश डालते हुए महर्षि घेरण्ड लिखते हैं –

निमेषोन्मेषकं त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत्।
पतन्ति यावदश्रूणि त्राटकं प्राच्यते बुधैः।। (घे.सं. 1/53)

अर्थात् निमेष–उन्मेष को रोककर जब तक आंसू न गिरने लगे, तब तक किसी भी सूक्ष्म लक्ष्य की ओर टकटकी लगाकर लगातार देखते रहने को त्राटक कहते हैं। इसके अभ्यास से नेत्रों के दोषों का निवारण होकर दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। हठप्रदीपिका में स्वात्माराम योगी त्राटक कर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं –

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।
अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम्।।''– (हठप्रदीपिका 2/32)

अर्थात् स्थिरदृष्टि से किसी सूक्ष्म लक्ष्य को एकाग्र होकर तब तक देखना चाहिए जबतक कि आंख से आंसू बाहर न आ जाये, आचार्यों ने इसे त्राटक कहा है।

विधि– त्राटक के अभ्यास के लिए किसी भी ध्यानात्मक आसन जैसे पद्मासन अथवा सिद्धासन आदि में बैठककर किसी भी ऐसी वस्तु जो आंखों से तीन–चार फुट की दूरी पर

रखी हो, पर दृष्टि को एकाग्र करते हैं। वस्तु का चयन करते समय ध्यान रखना चाहिए कि वह वस्तु मन में एकाग्रता बढ़ाने वाली एवं शांति प्रदान करने वाली होनी चाहिए। बहता हुआ जल, खिला हुआ फूल चन्द्रमा, जलते दीपक की लौ आदि पर दृष्टि की एकाग्रता बनाई जा सकती है। बिना पलक झपकाये हुए इन्हें तब तक देखना चाहिए, जब तक कि अश्रुपात न होने लगे। तत्पश्चात् आखें बंद कर उस वस्तु का ध्यान करना चाहिए।

4.4.6 कपालभाति कर्म– प्रिय पाठकों यौगिक ग्रन्थों में षट्कर्म की छटी क्रिया के रुप में कपालभाति कर्म का वर्णन किया गया है। यह अभ्यास शरीरस्थ कोषों को शुद्ध बनाता है। कपालभाति कर्म के अभ्यास से प्राणमय कोष शुद्ध होता है। कपालभाति शब्द कपाल और भाति से मिलकर बना है, कपाल का अर्थ है ललाट अथवा मस्तक और भाति का अर्थ है दीप्ति अथवा चेतना । अर्थात् वह क्रिया जिसके अभ्यास से शीर्ष प्रदेश की चेतना में वृद्धि होती है, कपालभाति कहलाता है। इस क्रिया में रेचक करते वायु को धौंकनी की तरह बाहर फेंकना पड़ता है, और सामान्य गति से वायु को शरीर के भीतर प्रवेश कराना पड़ता है कपालभाति पर प्रकाश डालते हुए महर्षि घेरण्ड लिखते हैं–

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीतक्रमेण विशेषतः।
भालभातिं त्रिधा कुर्यात्कफदोषं निवारयेत्।।– (घे.सं. 1/55)

अर्थात् वातक्रम कपालभाति, व्युतक्रम कपालभाति ओर शीतक्रम कपालभाति के भेद से कपालभाति तीन प्रकार की होती हैं। इसका अभ्यास करने से कफ से उत्पन्न दोषों का निवारण होता है।

(क). वातक्रम कपालभाति

विधि – इसमें सबसे पहले कमर एवं गर्दन को सीधी करते हुए किसी भी स्थिर आसन जैसे पद्मासन अथवा सिद्धासन में बैठते हैं। अब दांए हाथ की प्राणयाम मुद्रा बनाते हुए बाई नासिक या इडा नाड़ी से श्वास भरते हैं और दाहिने नासिका अर्थात् पिंगला नाड़ी से श्वास छोड़ते हैं। फिर दाई नासिका से श्वास भरते हैं और बांई नासिका से छोड़ते हैं। रेचक एवं पूरक की क्रियाओं की गति तेज नहीं होनी चाहिए।

यह अभ्यास पाचन अंगों को उत्प्रेरित कर उनकी मालिश करता एवं उन्हें शक्तिशाली बनाता है। मस्तिष्क का अग्र भाग रक्त की अधिक मात्रा से शुद्ध होकर अधिक सक्रिय होता है सूक्ष्म स्तर पर प्राण प्रवाह मस्तिष्क के इस क्षेत्र में होता है। यह अभ्यास फेफड़ों की शुद्धि का उनका विस्तार करता एवं उनकी क्षमता को बढ़ता है।

(ख). व्युत्क्रम कपालभाति

विधि – व्युत्क्रम कपालभाति में जल का प्रयोग किया जाता है। नासिक के दोनों छिद्रों से जल को खींचकर मुख से निकाल दिया जाता है और मुख से खींचकर नासिक से निकालते हैं।यह क्रिया व्युत्क्रम कपालभाति कहलाती है। घेरण्ड संहिता में कहा गया है–

नासाभ्याम जलमाकृष्य पुनर्वक्त्रेण रेचयेत्।
पायं पायं व्युत्क्रमेण श्लेषमादोषं निवारयेत्।।

अर्थात् नासिका के दोनों छिद्रों के द्वारा जल खींचे और मुख से निकाल दें तथा मुख से जल खींचकर नासिका से निकाल दें। यह व्युत्क्रम कपालभाति कफज दोषों का निवारण करती है। यह अभ्यास नेति के अभ्यास के समान नासिका मार्ग को स्वच्छ बनाता है एवं कफज दोषों का निवारण करता है।

(ग). शीतक्रम कपालभाति–

विधि – शीत्कार करता हुआ साधक मुख से जल ग्रहण करता है और इस जल को नासिका के द्वारा बाहर निकाल लेता है यह क्रिया शीतक्रम कपालभाति कहलाती है। हठप्रदीपिका में स्वात्माराम योगी कपालभाति कर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं–

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी।।

– (हठप्रदीपिका 2/36)

अर्थात् लोहार की धौंकनी के समान शीघ्रता से रेचक पूरक करने से कपालभाति होती है। यह कफ रोगों को नष्ट करने वाली है।

प्रिय पाठकों इस प्रकार हठयोग के ग्रन्थों में षट्कर्मों का सविस्तार वर्णन प्राप्त होता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

(1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

क. महर्षि घेरण्ड षट्कर्म को हठयोग के ....अंग के रूप में वर्णित करते हैं।
ख. उदर को दोनों पार्श्वों में अत्यन्त वेगपूर्वक घुमाना ....क्रिया है।
ग. वारिसार अन्तर्धौति के समान ....क्रिया का वर्णन भी ग्रन्थों में प्राप्त होता है।
घ. षट्कर्मों में शुद्धिकरण की तीसरी क्रिया के रुप में .... का वर्णन किया गया है।
च. घेरण्ड संहिता के अनुसार कपालभाति के .... प्रकार होते हैं।

(2) बहु विकल्पीय प्रश्न–

क. षट्कर्म में कितनी क्रियाओं का वर्णन आता है –
(a) चार (b) छह
(c) आठ (d) दस

ख. धौति क्रिया मुख्य रूप से किस तंत्र के शोधन से सम्बन्धित है–
(a) श्वसन तंत्र (b) पाचन तंत्र
(c) उत्सर्जन तंत्र (d) तंत्रिका तंत्र

ग. वस्ति क्रिया में किस मुद्रा का अभ्यास किया जाता है–
(a) ज्ञान मुद्रा (b) महबंध मुद्रा
(c) अश्विनी मुद्रा (d) विपरित करणी मुद्रा

घ. महर्षि घेरण्ड के अनुसार यह नौलि क्रिया कितने प्रकार की होती है?
(a) दो (b) चार
(c) पांच (d) छह

ड. मुख से जल ग्रहण कर नासिका से निकालना कौन सी क्रिया कहलाता है।
(a) वातक्रम कपालभाति (b) व्युत्क्रम कपालभाति
(c) शीतक्रम कपालभाति (d) जल नेति

4.5 सारांशः–

उपरोक्त अध्ययन स्पष्ट करता है कि हठयोग के ग्रन्थों में शरीर शोधनार्थ धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभाति नामक छह क्रियाओं का वर्णन किया गया है जिन्हें सम्मिलित रुप से षट्कर्म की संज्ञा दी गयी है। शरीर में वात–पित्त–कफ दोषों की

विषमता को दूर करने के लिये ये षट्कर्म अत्यन्त लाभकारी होते हैं। इन क्रियाओं के अभ्यास से शरीर की स्थूलता दूर होती है एवं शरीर लघुता (हल्कापन) को प्राप्त होता है। इन षट्कर्मों को घेरण्ड संहिता एवं हठप्रदीपिका नामक ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक वर्गीकरणे करते हुए समझाया गया है। प्रथम कर्म के रुप में धौतिकर्म का वर्णन किया गया है, यह कर्म वायु, जल एवं वस्त्र द्वारा उदर प्रदेश का शोधन करता है। द्वितीय कर्म के रुप में वस्ति कर्म बड़ी आंत को स्वच्छ बनाता है। षट्कर्म की तीसरी क्रिया के रुप में नेति कर्म का उल्लेख किया गया है। इस क्रिया का अभ्यास शीर्ष प्रदेश की सफाई करता है। षट्कर्म की चौथी क्रिया के रुप में वर्णित नौलि कर्म जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। त्राटक कर्म षट्कर्म की पांचवी क्रिया है जिसका अभ्यास मानसिक एकाग्रता उत्पन्न करता है तथा षट्कर्म की छटी क्रिया के रुप में कपालभाति कर्म का वर्णन किया गया है, यह कर्म वायु एवं जल के द्वारा शरीर शोधन का कार्य करता है।

4.6 शब्दावली

- सामंजस्य = सन्तुलन
- परासरण = फैलाना
- संकुचन = सिकोड़ना
- उदर प्रदेश = आमाशय अथवा पेट
- विकार = दोष
- निष्प्रभावी = प्रभाव रहित
- रेचक = श्वास छोड़ना
- पूरक = श्वास भरना
- मेरू = रीढ़ अथवा कमर
- प्रक्षालन = धोना

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. प्रथम	क. b
ख. नौलि	ख. b
ग. शंख प्रक्षालन	ग. c
घ. नेति कर्म	घ. b
ड. तीन	ड. c

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची—

1. हठप्रदीपिका—स्वामी दिगम्बर जी, डा. पीताम्बर झा, कैवल्यधाम लोनावाला।
2. घेरण्ड सहिता—स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार।
3. स्वस्थवृत्त विज्ञान—प्रो. रामहर्ष सिंह चौखम्बा, संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

4.9 निबंधात्मक प्रश्न—

1. हठयोग में वर्णित षटकर्मों की सविस्तार व्याख्या किजिए।
2. षटकर्मों को परिभाषित करते हुए वर्गीकरत किजिए।

इकाई 5 – षट्कर्मो का उद्देश्य, षट्कर्मो का फल

5.1 प्रस्तावना–

प्रिय विद्यार्थियों पूर्व की इकाई में आपने षट्कर्मो का ज्ञान प्राप्त किया। षट्कर्म हठयोग की साधना का प्रथम अंग है। इन षट्कर्मो के अभ्यास से योगसाधक अपनी साधना प्रारम्भ करता है। षट्कर्म के अन्तर्गत धौति, वस्ति, नेति, नौली, त्राटक एवं कपालभाति नामक छह क्रियाओं का वर्णन आता है। ये क्रियाएं मानव शरीर का शोधन करती हुई कायाकल्प करती है। षट्कर्म की इन क्रियाओं को करने का उद्देश्य क्या है यह प्रश्न निश्चित रूप से आपके मन में उपस्थित हुआ होगा तथा इन षट्कर्मो के अभ्यास से क्या–क्या फल प्राप्त होते हैं। यह जिज्ञासा भी अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। इस इकाई से आपको इन प्रश्नों के उत्तर अवश्य प्राप्त होगें, साथ ही आप षट्कर्मो के फलों के विषय में ज्ञान अर्जित करेंगे।
आधुनिक समय में प्रदूषण चारों ओर विकट रूप में फैला है इसके परिणाम स्वरूप मानव शरीर में गन्दगियाँ एकत्र होती है तथा वात, पित्त, कफ दोष में विषमताएं उत्पन्न होती है जो आगे चलकर रोग का कारण बनती है। षट्कर्म शरीर को प्रदूषण के कुप्रभाव से बचने में सक्षम बनाता है तथा इन क्रियाओं का अभ्यास करने से शरीर में एकग्र गन्दगियां बाहर निकलती है, शरीर शुद्ध एवं स्वच्छ बनता है तथा वात–पित्त, कफ दोष सम अवस्था को

प्राप्त होते हैं। वात–पित्त व कफ दोष की विषमता से उत्पन्न होने वाले रोगों से शरीर बचा रहता हैं शरीर के साथ–साथ ये षट्कर्म मानसिक स्तर पर भी स्वस्थ बनाते है। इन षट्कर्मो के उद्देश्य एवं फलों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है –

5.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप–

- षट्कर्मो के उद्देश्यों को भलिभाँति समझा सकेंगे।
- षट्कर्मो के फलों का विस्तृत रूप से विवेचन कर सकेंगे।
- धौति कर्म के लाभों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- वस्ति कर्म के शरीर पर प्रभावों का वर्णन करने में सक्षम हो सकेंगे।
- नेति कर्म के फल का वर्णन कर सकेंगे।
- नौली कर्म के लाभ जान सकेंगे।
- त्राटक कर्म की उपयोगिता का ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- कपालभाति कर्म के उद्देश्य एवं फल का अध्ययन कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

5.3 षट्कर्मो का उद्देश्य–

षट्कर्मो के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए स्वामी स्वात्माराम योगी हठप्रदीपिका में लिखते है–

मेदः श्लेष्माधिकः पूर्व षट्कर्माणि समाचरेत्।
अन्यस्तु नाचरेत्तानि दोषाणां समभावतः।। – *(ह0प्र0 2/21)*

अर्थात् जिसके शरीर में मेद एवं श्लेष्मा की अधिकता हो उसे पहले षट्कर्म के द्वारा शरीर का शोधन करना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि शरीर के मेद एवं श्लेष्मा की अधिकता को दूर करना एवं शरीर का शोधन करना ही षट्कर्मो का मुख्य उद्देश्य है। मेद की अधिकता शरीर में भारीपन एवं जडता उत्पन्न करती है जबकि इस मेद की सन्तुलित अवस्था शरीर में हल्कापन एवं निरोगिता उत्पन्न करने के साथ साथ शरीर को बलवान बनाती है। शरीर में श्लेष्मा की अधिकता कफ दोष को असन्तुलित करती है तथा कफ विकार उत्पन्न करती है। षट्कर्मो का उद्देश्य शरीरस्थ मेद एवं श्लेष्मा की अधिकता को दूर कर शरीर को शुद्ध, स्वच्छ एवं समदोष युक्त बनाना होता है।

षट्कर्म की छह क्रियाएं निम्न उद्देश्यों के लिए की जाती है–

5.3.1 धौति कर्म का उद्देश्य– धौति कर्म को घेरण्ड संहिता में निम्न चार भागों में विभक्त किया गया है–

क. अन्तर्धौति
ख. दन्त धौति
ग. हृद धौति
घ. मूल शोधन

क. अन्तर्धौति का उद्देश्य– अन्तर्धौति का उद्देश्य वायु एवं जल के द्वारा उदर प्रदेश का शोधन करना होता है। धौति के इस वर्ग का अभ्यास करने से कफ दोष एवं पित्त दोष का शमन होता है अर्थात् ये दोष अपनी साम्यावस्था को प्राप्त होते हैं। उदर प्रदेश की सफाई कर जठराग्नि को प्रदिप्त करना अन्तर्धौति का मुख्य उद्देश्य होता है। साथ–साथ इस धौति कर्म का उद्देश्य सम्पूर्ण पाचन तंत्र का शोधन करना होता है।

ख.दन्तधौति का उद्‍देश्य– दन्तधौति का उद्‍देश्य सम्पूर्ण शीर्ष प्रदेश का शोधन करना होता है। दाँतों की सफाई करना, जिह्‍वा की सफाई करना, कानों को मल रहित बनाना एवं कपालरन्ध्र का शोधन करना दन्त धौति का उद्‍देश्य होता है।

प्रिय पाठकों, हमारे शरीर एवं मन का नियंत्रण शीर्ष प्रदेश से ही होता है, दन्तधौति का उद्‍देश्य इस शीर्ष प्रदेश को मल रहित, स्वच्छ एवं निर्मल बनाना होता है। यह अभ्यास दातों, जिह्‍वा, कानों एवं कपाल रन्ध्र को शुद्ध बनाते हैं। दन्तधौति का अभ्यास करने से साधक के सम्पूर्ण शीर्ष प्रदेश का शोधन होता है।

ग.हृद धौति का उद्‍देश्य– हृदधौति का उद्‍देश्य दण्ड, जल एवं वस्त्र के द्वारा उदर प्रदेश को स्वच्छ बनाना होता है। दण्ड धौति के अभ्यास में एक दण्ड (आधुनिक समय में रबर के पाइप) की सहायता से अशुद्ध कफ, पित्त एवं अन्य गन्दगियों को बाहर निकाला जाता है इसका उद्‍देश्य उदर प्रदेश की गन्दगियों को बाहर निकालना है। वमन क्रिया का उद्‍देश्य आमाशय में स्थित विकृत पित्त एवं अपचित अन्न को बाहर निकालना होता है। इस क्रिया का उद्‍देश्य शरीरस्थ वायु को सुव्यवस्थित एवं नियन्त्रित करना होता है। यह अभ्यास उदर में स्थित अपना वायु को सम बनाने के उद्‍देश्य से किया जाता है।

वस्त्र धौति का उद्‍देश्य वस्त्र के द्वारा कण्ठ से आमाशय तक का शोधन करना होता है। वस्त्र धौति का उद्‍देश्य आहार नलिका एवं आमाश्य को स्वच्छ बनाना होता है। इस क्रिया के अभ्यास से ग्रन्थियों को भी सक्रिय बनाया जाता है। लार ग्रन्थि से लेकर पाचन तंत्र की समस्त पाचक ग्रन्थियों को इस क्रिया के द्वारा उत्तेजित किया जाता है। वस्त्र धौति के द्वारा श्वसन तंत्र को भी स्वच्छ बनाया जाता है एवं श्वसन तंत्र में स्थित विकृत कफ को बाहर निकाला जाता है। इस अभ्यास का उद्‍देश्य कण्ठ में स्थित कफ दोष को सम बनाना होता है।

घ. मूल शोधन का उद्‍देश्य– मूल शोधन क्रिया का उद्‍देश्य शरीर के मूल भाग का शोधन करना होता है। इस क्रिया का उद्‍देश्य अपान वायु को सुव्यवस्थित करना होता है। आंतों में स्थित मल पदार्थो को शरीर से भलीभाँति बाहर निकालना भी इस कर्म का उद्‍देश्य होता है।

5.3.2 वस्ति कर्म का उद्‍देश्य– षट्कर्म की दूसरी क्रिया वस्ति कर्म को निम्नलिखित दो भागों में विभक्त किया गया है–

क. जलवस्ति

ख. शुष्क वस्ति/पवन वस्ति/स्थल वस्ति

क. जल वस्ति का उद्‍देश्य– जल वस्ति का उद्‍देश्य जल के द्वारा बड़ी आँत का शोधन करना होता है। बड़ी आँत अपान वायु का स्थान है। यदि बड़ी आँत में मल पदार्थ अधिक मात्रा में जमा हो जाते हैं तब अपान वायु क्रूर हो जाती है तथा अनेकों प्रकार के वायु सम्बन्धित रोग उत्पन्न होने लगते है। इस बड़ी आँत को जल के द्वारा शुद्ध एवं स्वच्छ बनाना एवं शरीरस्थ अपान वायु को सुव्यवस्थित करना जल वस्ति कर्म का उद्‍देश्य है। बड़ी आँत के स्वच्छ होने से वात विकार एवं रक्त विकार उत्पन्न नहीं होते एवं शरीर में हल्कापन बना रहता है।

जल वस्ति के महत्व को देखकर आधुनिक समय में चिकित्सकों द्वारा इसके समतुल्य एनिमा क्रिया का आविष्कार किया गया किन्तु ऋषि प्रोक्त वस्ति क्रिया एनिमा की तुलना में अधिक प्रभावी एवं लाभकारी क्रिया है क्योंकि एनिमा क्रिया में जल बाह्‍य बल द्वारा बड़ी आँत में

चढ़ाया जाता है जबकि जल वस्ति क्रिया में जल संकुचन क्रिया के द्वारा अन्दर ग्रहण किया जाता है इसका सकारात्मक प्रभाव नाड़ी मण्डल पर पड़ता है।

ख. शुष्क वस्ति का उद्देश्य– शुष्क वस्ति का उद्देश्य वायु के द्वारा बड़ी आँत का शोधन करना होता है। इसके साथ–साथ शुष्क वस्ति कर्म का उद्देश्य अपान वायु को सुव्यवस्थित करना भी होता है।

5.3.3 नेति कर्म का उद्देश्य– नेति कर्म शीर्ष प्रदेश को स्वच्छ बनाने वाली षट्कर्म की तीसरी क्रिया है जिसे निम्नलिखित दो भागों में विभक्त किया गया है–

क. जल नेति
ख. सूत्र नेति

क. जल नेति का उद्देश्य– जल नेति का उद्देश्य जल के द्वारा नासिका को स्वच्छ बनाना होता है चूँकि नासिका शीर्ष प्रदेश का प्रवेश द्वार माना गया है, इस प्रदेश द्वार के स्वच्छ ना होने पर शीर्ष प्रदेश से सम्बन्धित रोग होने लगते है तथा इन्द्रियां (ज्ञानेन्द्रियां) दोष युक्त होने लगती है।

जल नेति का उद्देश्य शीर्ष प्रदेश का शोधन करना एवं इन्द्रियों को दोष रहित बनाना होता है। जल नेति का उद्देश्य शीर्ष प्रदेश में नाड़ी मण्डल (तंत्रिका तंत्र) को मलरहित एवं सक्रिय करना होता है। जलनेति कर्म में गरम एवं नमकीन जल का प्रयोग इस उद्देश्य से किया जाता है कि शीर्ष प्रदेश में जमा विकृत कफ नासिका के द्वारा शरीर से बाहर निकल जाये।

ख. सूत्र नेति का उद्देश्य– सूत्र नेति का उद्देश्य सूत्र की रस्सी के माध्यम से नासिका एवं शीर्ष प्रदेश का शोधन करना होता है। सूत्र नेति का उद्देश्य दृष्टि दोषों का दूर करना एवं खेचरी मुद्रा को सिद्ध करना होता हैं सूत्र नेति कर्म का उद्देश्य शारीरिक दोषों को दूर करने के साथ–साथ मानसिक शुद्धि प्राप्त करना होता है।

5.3.4 लौलिकी कर्म का उद्देश्य– लौलिकी कर्म का सम्बन्ध उदर प्रदेश से हैं यह क्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण क्रिया है जिसके चार भेद किये गये हैं–

क. मध्यमा लौलिकी
ख. वाम लौलिकी
ग. दक्षिण लौलिकी
घ. भ्रमर लौलिकी

क. मध्यमा लौलिकी का उद्देश्य– मध्यमा लौलिकी का उद्देश्य उदर प्रदेश के मध्य में स्थित मांसपेशियों को उत्तेजित करना होता है। मध्यमा लौलिकी का अभ्यास मणिपुर चक्र को जाग्रत करने के उद्देश्य से किया जाता है। मणिपुर चक्र का स्थान नाभि होता है। इस नाभि पर मध्यमा लौलिकी सीधा प्रभाव रखती है तथा इस चक्र को जाग्रत करती है।

ख.वाम लौलिकी का उद्देश्य– वाम लौलिकी का उद्देश्य उदर की वाम क्षेत्र में स्थित मांसपेशियों को उत्तेजित करना होता है। वाम लौलिकी करने से आंतों की क्रियाशीलता बढ़ती है तथा इन आंतों में ऊर्जा का संचार करने के उद्देश्य से वाम लौलिकी का अभ्यास किया जाता है।

ग. दक्षिण लौलिकी का उद्देश्य– दक्षिण लौलिकी का अभ्यास उदर के दक्षिणी क्षेत्र की मांसपेशियों को उत्तेजित करना होता है। दक्षिणी लौलिकी के अभ्यास का उद्देश्य इन मांसपेशियों में ऊर्जा का संचार करना तथा इन्हें उत्तेजित एवं सक्रिय बनाना होता है।

घ. भ्रमर लौलिकी का उद्देश्य– जब मध्यमा लौलिकी, वाम लौलिकी तथा दक्षिण लौलिकी का अभ्यास क्रमानुसार किया जाता है। तब यह क्रिया भ्रमर लौलिकी कहलाती है। इस क्रिया का उद्देश्य सम्पूर्ण उदर प्रदेश में ऊर्जा एवं चेतना का विस्तार करना होता है। उदर की मांसपेशियों, धमनियों, शिराओं एवं नाड़ियों में रक्त संचार तीव्र करने के उद्देश्य से भ्रमर लौलिकी का अभ्यास किया जाता है। यह अभ्यास तन्त्रिका तन्त्र एवं नाड़ियों पर भली–भांति नियंत्रण स्थापित करने के उद्देश्य से किया जाता है।

5.3.5 त्राटक कर्म का उद्देश्य–

प्रिय पाठकों त्राटक कर्म का सम्बन्ध मानसिक एकाग्रता एवं मन को निर्मल बनाने से है, यह षट्कर्मो में शुद्धिकरण की पांचवी क्रिया है जिसके तीन प्रकार है–

क. बहि त्राटक
ख. अन्तः त्राटक
ग. अधो त्राटक

क. बहि त्राटक का उद्देश्य– बहि त्राटक का उद्देश्य चंचल चित्त को किसी बाह्य वस्तु में स्थापित करना होता है। बहि त्राटक का अभ्यास मानसिक अशान्ति एवं अस्थिरता को दूर करने के उद्देश्य से किया जाता है। इस क्रिया का अभ्यास शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक उत्तेजनाओं को दूर कर स्थिरता एवं शान्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाता है।

ख. अन्तः त्राटक का उद्देश्य– अन्तः त्राटक का उद्देश्य मन की समस्त शक्तियों को केन्द्रित करना होता है। अन्तः त्राटक का अभ्यास अन्तः दृष्टि को प्राप्त करने के उद्देश्य से किया जाता है। अन्तःकरण को शुद्ध करने के उद्देश्य हेतु अन्तःत्राटक का अभ्यास उत्तम माना गया है।

ग. अधोः त्राटक का उद्देश्य– अधोत्राटक का अभ्यास मन को स्थिरता प्रदान करने के उद्देश्य से किया जाता है अधो त्राटक का उद्देश्य मन की अर्न्तचेतना को जाग्रत करने के उद्देश्य से किया जाता है।

त्राटक कर्म का उद्देश्य मन को निर्विकार बनाकर अन्तःकरण को शुद्ध करना होता है चूँकि विकार युक्त मन अशान्ति उत्पन्न करता है। मन के इन विकारों को दूर करने का त्राटक एक उत्तम साधन है। त्राटक कर्म का अभ्यास नाड़ियों में ऊर्जा का संचरण करता है परिणाम स्वरूप साधक मुद्राओं को सिद्ध करने में सक्षम होता है तथा त्राटक कर्म का अभ्यास करने से शरीरस्थ चक्रों का जागरण होता है।

5.3.6 कपालभाति कर्म का उद्देश्य– कपाल भाति कर्म का उद्देश्य शरीर शुद्धि के साथ–साथ प्राणमय कोश का शोधन करना होता है। वायु एवं जल के भेद से कपालभाति कर्म के तीन प्रकार किये गये है–

क. वातक्रम कपालभाति
ख. व्युत्क्रम कपालभाति
ग. शीतक्रम कपालभाति

क. वातक्रम कपालभाति का उद्देश्य– वातक्रम कपालभाति का उद्देश्य प्रश्वास के द्वारा शरीर की गन्दगियों को बाहर निकालना होता है वातक्रम कपालभाति का अभ्यास शरीर में शुद्ध प्राण वायु (ऑक्सीजन) की वृद्धि करता है तथा शरीर में स्थित कार्बन डाइआक्साइड

एवं अन्य हानिकारक अशुद्धियों को बाहर निकालता है अर्थात शरीर की प्राण ऊर्जा एवं जीवनी शक्ति को बढ़ाने के उद्देश्य से वातक्रम कपालभाति का अभ्यास किया जाता है।

ख. व्युत्क्रम कपालभाति का उद्देश्य– व्युत्क्रम कपालभाति का उद्देश्य जल के द्वारा शीर्ष प्रदेश की गन्दगियों को बाहर निकालना होता है। व्युत्क्रम कपालभाति का अभ्यास शीर्ष प्रदेश की शुद्धि की प्रक्रिया हैं।

5.4 षट्कर्मो का फल–

षट्कर्मो के फलों पर प्रकाश डालते हुए महर्षि घेरण्ड लिखते हैं

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद्द्ढमू।।

–(घे0 सं 1/10)

अर्थात् षट्कर्मो से शरीर का शोधन एवं आसनों दृढता प्राप्त होती है। इसी संदर्भ में स्वात्माराम योगी लिखते हैं–

कर्मषट्कमिदं गोप्यं घटशोधनकारकम्।

– (ह0प्र0 2/23)

अर्थात् शरीर को शुद्ध करने वाली तथा आश्चर्यजनक फल देने वाली छह क्रियाएं (षट्कर्म) गोपनीय रखनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि षट्कर्म की छह क्रियाएं अभ्यासी साधक को उत्तम फल प्रदान करती है। इन षट्कर्मो के फलों का विवरण इस प्रकार है–

5.4.1 धौति कर्म का फल– धौति कर्म का अभ्यास करने से सम्पूर्ण उदर प्रदेश की सफाई होती है। पाचन तंत्र स्वस्थ, सक्रिय, निर्मल एवं रोगरहित बनता है। पाचन तंत्र के रोगों से ग्रस्त व्यक्ति को धौति कर्म का अभ्यास करने से बहुत अच्छे फल मिलते है। अर्थात् उसके रोग बहुत शीघ्रता से दूर होते है। अम्लपित्त, मन्दाग्नि, कब्ज, अपच, गैस, खाँसी, दमा, तिल्ली का बढ़ना, तथा कुष्ठ आदि रोगों में धौति कर्म का अभ्यास करने से लाभ मिलता है। स्वात्माराम योगी धौति कर्म के फलों पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं–

कासश्वासप्लीह कुष्ठं कफरोगाश्च विंशतिः।
धौतिकर्मप्रभावेन प्रयानत्येव न संशयः।

– (ह0 प्र0 2/25)

अर्थात् धौति क्रिया के फलस्वरूप खाँसी, दमा, तिल्ली, कुष्ठ तथा अपच बीसों प्रकार के कफ सम्बन्धी रोग निसन्देह नष्ट होते हैं। धौति क्रिया का अभ्यास अपान वायु की क्रूरता को दूर करता है। वात रोगों में धौति क्रिया का अभ्यास लाभ देता है। धौति क्रिया के अभ्यास से नाड़ियां जाग्रत होती है जिससे कुण्डलीनी शक्ति के जागरण में सहायता मिलती है।

5.4.2 वस्ति कर्म का फल– वस्ति कर्म का अभ्यास करने से बड़ी आँत की शुद्धि होती है तथा बड़ी आँत से सम्बन्धित रोग दूर होते है। वस्ति कर्म के फलों पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी कहते है–

गुल्म प्लीहोदरं चापि वातपित्तकफोद्भवाः।
बस्तिकर्म प्रभावेण क्षीयन्ते सकलामयाः।।

– (ह0 प्र0 2/37)

अर्थात् बस्ति क्रिया के अभ्यास के फलस्वरूप वायु गोला, तिल्ली, जलोदर, तथा वात, पित्त, कफ जन्य सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। वस्ति क्रिया का अभ्यास वात दोष की विकृति को मुख्य रूप से दूर करता है चूँकि वात दोष पित्त एवं कफ दोष पर भी प्रभाव

डालता है अतः वात दोष के सम होने से पित्त एवं कफ दोष भी साम्यावस्था को प्राप्त होते है। अर्थ यह है कि वस्ति कर्म का फल वात, पित्त एवं कफ दोषों की समता के रूप में प्राप्त होता है।

बड़ी आँत से सम्बन्धित कब्ज, पेट गैस, पेट दर्द, अपच आदि रोगों में वस्ति कर्म का अभ्यास करने से लाभ प्राप्त होता है। वस्ति कर्म के अभ्यास से आँतों की क्रियाशीलता बढ़ती है, आँतों को बल मिलता है तथा उदर प्रदेश की गर्मी दूर होती है। उदर प्रदेश की गर्मी दूर होने से पाचन अंग सुव्यवस्थित रूप से अपना कार्य करते है। वात दोष की विकृति से उत्पन्न रोगों में वस्ति क्रिया का अभ्यास अत्यन्त लाभकारी फल देता है।

5.4.3 नेति कर्म का फल– नेति कर्म गले से ऊपर के सभी अंग अवयवों को स्वस्थ बनाने वाली क्रिया है। नेति कर्म के फलों के संदर्भ में स्वात्माराम योगी लिखते है–

कपालशोधनी चैव दिव्यदृष्टि प्रदायिनी।
जूत्रर्ध्वजातरोगौघं नेतिराशु निहन्ति च।।

– (ह0 प्र0 2/30)

अर्थात् नेति क्रिया कपाल प्रदेश को शुद्ध करती है, दिव्य दृष्टि प्रदान करती है और स्कन्ध प्रदेश से ऊपर होने वाले रोग समूहों को शीघ्र नष्ट करती है। जलनेति का अभ्यास करने से साइनस ग्रन्थियाँ उत्तेजित होती है तथा साइनस रोग दूर होता है। जलनेति करने से नासिका की सफाई होती है तथा धूल आदि के कण व विकृत कफ जल के साथ बाहर आ जाता है, इससे श्वसन क्रिया सुव्यवस्थित होती है। जल नेति का अभ्यास जुकाम रोग में विशेष लाभ प्रदान करता है। जल नेति का अभ्यास एलर्जी रोग में भी लाभकारी है। जलनेति क्रिया का अभ्यास मानसिक तनाव को दूर कर शान्ति प्रदान करता है।

सूत्र नेति का अभ्यास करने से नासिका की अच्छी प्रकार सफाई होती है। इसके अभ्यास यहाँ स्थित संवेदनशील नाड़ियां उत्तेजित होती है, जिनके प्रभाव से सुनने की क्षमता, देखने की क्षमता, तथा सूंघने की क्षमता का विस्तार होता है।

प्रिय पाठकों आधुनिक समय में जब आँख, नाक एवं गले से सम्बन्धित रोग बहुत बढ़ रहे है, जल नेति एवं सूत्र नेति का अभ्यास बहुत लाभकारी सिद्ध हो रहा है। नेत्र दृष्टि कम होना, बालों का झड़ना, बालों का असमय सफेद होना, लम्बे समय तक जुकाम रहने की अवस्था में नेति कर्म का अभ्यास शीघ्र लाभ देता है।

5.4.4 लौलिकी कर्म का फल– लौलिकी कर्म का उदर की मांसपेशियों पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। लौलिकी कर्म के फलों पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी लिखते हैं–

मन्दाग्निसंदीपन पाचनादिसंन्धायिकानन्द करी सदैव।
अशेषदोषामयशोषणी च हठक्रिया मौलिरियं च नौलिः।।

– (ह0 प्र0 2/34)

अर्थात् सदा–सर्वदा आनन्द को लाने वाली यह नौलि–क्रिया मन्द जठराग्नि को प्रदिप्त कर पाचन क्रिया आदि को तेज करती है, विविध दोषों तथा रोगों को नष्ट करती है, इसीलिए यह हठ क्रियाओं में श्रेष्ठ है।

लौलिकी क्रिया का अभ्यास उदर की मांसपेशियों को सक्रिय करता है उदर में स्थित क्लोम ग्रन्थि (पेन्क्रियाज) के स्राव को बढ़ाता है, जठराग्नि बढ़ाता है परिणामस्वरूप भोजन का

पाचन भलीभाँति होता है। इस क्रिया के अभ्यास से उदर में स्थित आँतों की क्रियाशीलता बढ़ती है। परिणामस्वरूप कब्ज जैसे गम्भीर रोग दूर होते हैं। लौलिकी क्रिया का प्रभाव मस्तिष्क पर भी पड़ता है तथा इससे शरीर के आन्तरिक अंग–अवयवों पर मस्तिष्कीय नियंत्रण बढ़ता हैं इसके अत्यधिक लाभकारी फलों के कारण हठयोगी स्वात्माराम योगी लौलिकी कर्म को हठ क्रियाओं में श्रेष्ठ क्रिया की संज्ञा देते है।

लौलिकी कर्म का अभ्यास करने से कब्ज, अपच, मन्दाग्नि, मधुमेह, पेट का भारीपन, पेट का मोटापा आदि रोग दूर होते है।

5.4.5 त्राटक कर्म का फल– त्राटक कर्म शरीर के साथ–साथ मन पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। त्राटक के अभ्यास से मानसिक एकाग्रता में वृद्धि होती है तथा मानसिक तनाव के स्थान पर शान्ति की प्राप्ति होती है। त्राटक कर्म के फलों को स्वात्माराम योगी इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाट्कम्।
यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेट्कम्।।
– (ह0 प्र0 2/32)

अर्थात् त्राटक कर्म नेत्र रोगों को दूर करता है, तन्द्रा आदि को नहीं आने देता। इस त्राटक कर्म को सोने की पेटी के समान महत्व देकर इसकी रक्षा करनी चाहिए। त्राटक कर्म का नेत्र की मांसपेशियों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है तथा इसके अभ्यास से ये मांसपेशियाँ शक्तिशाली बनती है।

प्रिय पाठकों त्राटक कर्म का अभ्यास मानसिक एकाग्रता को बढ़ाने वाला होता है। प्रायः उम्र बढ़ने के साथ–साथ स्मरण शक्ति कम होने लगती है ऐसी अवस्था में त्राटक क्रिया का अभ्यास करने से स्मरण शक्ति बढ़ती है मन में तनाव एवं निराशा के स्थान पर नई विचार शक्ति का उदय होता हैं त्राटक का अभ्यास मानसिक ऊर्जा एवं उमंग को पैदा करता है इसका अभ्यासी साधक सदैव प्रसन्नता एवं आनन्द का अनुभव करता है।

त्राटक कर्म के अभ्यास से आज्ञा चक्र जाग्रत होता है जिससे साधक को दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। इसी को ही अन्तदृष्टि की संज्ञा दी जाती है।

5.4.6 कपालभाति कर्म का फल– कपालभाति कर्म शरीर की गन्दगियों को वायु एवं जल के द्वारा बाहर निकालता हुआ शरीर शोधन करता है। कपालभाति कर्म के सम्बन्ध में स्वात्माराम योगी लिखते हैं–

कपालभाति र्विख्याता कफदोषविशोषणी।।
– (ह0 प्र0 2/35)

अर्थात् कपालभाति का अभ्यास कफ दोष से सम्बन्धी रोगों को नष्ट करती है। कपालभाति के अभ्यास का फल शरीर की गन्दगियों के निष्कासन के रूप में प्राप्त होता है। शरीर से गन्दगियाँ निकलने पर शरीर की कान्ति एवं आभा बढ़ती है, व्याधि, जरा एवं बुढ़ापा आदि अवस्थाओं के लक्षण अभ्यासी साधक के शरीर में नहीं आते है। कपालभाति के अभ्यास से साधक का शरीर स्वच्छ, निर्मल एवं रोग रहित हो जाता है।

शरीर से गन्दगियाँ निकल जाने पर शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवनी शक्ति का विकास होता है। सर्दी, जुकाम, खाँसी, त्वचा रोग, मोटापा, स्थूलता आदि रोगों में कपालभाति का अभ्यास करने से शीघ्र लाभ प्राप्त होता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न–

1. **सत्य/असत्य**
   (क) षट्कर्म शरीर को प्रदूषण के कुप्रभाव से बचने में असक्षम बनाता है।
   (ख) हमारे शरीर एवं मन का नियंन्त्रण उदर प्रदेश से होता है।
   (ग) बड़ी आँत अपान वायु का स्थान है।
   (घ) सूत्र नेति का उद्देश्य दृष्टि दोषों को दूर करना एवं खेचरी मुद्रा को सिद्ध करना होता है।
   (ड) लौलिकी कर्म हठ क्रियाओं में श्रेष्ठ क्रिया है।
2. **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–**
   (क) शरीर में .... एवं .... की अधिकता होने पर पहले षट्कर्म के द्वारा शरीर का शोधन करना चाहिए।
   (ख) मूलशोधन क्रिया का उद्देश्य .... को सुव्यवस्थित करना होता है।
   (ग) मध्यमा लौलिकी का अभ्यास .... चक्र को जाग्रत करने के उद्देश्य से किया जाता है।
   (घ) वस्ति कर्म का अभ्यास करने से .... की शुद्धि होती है।
   (ड) .... सकन्ध प्रदेश से ऊपर होने वाले रोग समूहों को शीघ्र नष्ट करती है।

3 **बहुविकल्पीय प्रश्न**

क. दन्तधौति का उद्देश्य है –
(a) उदर प्रदेश का शोधन (b) शीर्ष प्रदेश का शोधन
(c) वक्ष प्रदेश का शोधन (d) कटि प्रदेश का

ख. जल वस्ति के समतुल्य आधुनिक समय में कराई जाने वाली क्रिया है –
(a) जलनेति (b) जल कपालभाति
(c) एनिमा (d) वमन

ग. सूत्रनेति कर्म का उद्देश्य है –
(a) नासिका का शोधन (b) दृष्टि दोषों का निवारण
(c) खेचरी मुद्रा की सिद्धि (d) सभी

घ. किस क्रिया का फल स्मरण शक्ति एवं मानसिक एकाग्रता बढने के रुप में प्राप्त होता है –
(a) त्राटक कर्म (b) नेति कर्म
(c) नौलि कर्म (d) धौति कर्म

ड. कौन सी क्रिया का अभ्यास करने से शरीर में व्याधि, जरा व बुढापे के लक्षण नही आते –
(a) कपालभाति (b) जलनेति
(c) नौलिकर्म (d) धौति कर्म

5.5 सारांशे

प्रिय पाठकों प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ चुके है कि षट्कर्म छह शोधन क्रियाओं का समूह है जिनका अभ्यास करने से शरीर एवं मन में स्वच्छता एवं निर्मलता का विस्तार होता है। इन षट्कर्मो में प्रथम कर्म धौति क्रिया सम्पूर्ण पाचन तंत्र का शोधन करती

है। वस्ति कर्म बड़ी आँत को शुद्ध बनाती है। नेति कर्म का सम्बन्ध शीर्ष प्रदेश से है, यह अभ्यास नासिका एवं इन्द्रियों में स्वच्छता उत्पन्न करता है। लौलिकी कर्म उदर की मांसपेशियों को उत्तेजित एवं सक्रिय करता हुआ मणिपूर चक्र को जाग्रत करने में सहायता करता है। त्राटक कर्म का सम्बन्ध नेत्र की मांसपेशियों से है यह अभ्यास मानसिक एकाग्रता को उत्पन्न करता है। कपालभाति कर्म शरीर से गन्दगियों एवं विजातीय पदार्थो को वायु एवं जल के द्वारा बाहर निकालता है। इस क्रिया के अभ्यास से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता एवं जीवनी शक्ति का विकास होता है।

उपरोक्त विवेचन सिद्ध करता है कि षट्कर्म की क्रियाएं शरीर शोधन के उद्देश्य से की जाती है तथा अत्यन्त लाभकारी फल प्रदान करती है। ऋषिप्रोक्त इन षट्कर्मो का उद्देश्य शरीर शोधन के साथ–साथ मन की दृढ़ इच्छाशक्ति एवं शरीरस्थ चक्र जागरण करना होता है। इन षट्कर्मो का उपदेश ऋषियों द्वारा जन–कल्याण के लिए किया गया है।

5.6 शब्दावली

- मेध – वसा अथवा चर्बी
- श्लेष्मा – कफ
- क्रूर – विकृत अवस्था
- कान्तियुक्त – चमक
- प्रदिप्त – बढ़ाना
- तन्द्रा – कार्य ना करने की इच्छा
- जरा – कमजोरी
- व्याधि – बिमारी

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. असत्स	क. मेद,श्लेष्मा	क. b
ख. असत्य	ख. अपान वायु	ख. c
ग. सत्य	ग. मणिपूर	ग. d
घ. सत्य	घ. ब	घ. a
ड. सत्य	ड. नेति क्रिया	ड. a

5.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सरस्वती स्वामी निरंजनानन्द (2004) घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेशनट्रस्ट मुंगेर, बिहार, भारत।
2. दिगम्बर स्वामी, झा डा0 पीताम्बर, (2008) स्वात्माराम कृत हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योग मन्दिर समिति, लोनावाला, पुणे।
3. रामदेव स्वामी (2011) योग साधना एवं योग चिकित्सा रहस्य, साई सिक्यूरिटी प्रिंटर्स प्रा. लिमिटेड फरीदाबाद।

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. षट्कर्मो के उद्देश्यों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. षट्कर्मो के फलों पर प्रकाश डालते हुए इनकी उपादेयता लिखिए।

इकाई – 6 हठप्रदीपिका के अनुसार षट्कर्म

6.1 प्रस्तावना

प्रिय पाठकों, आप षट्कर्म शब्द से भली–भांति परिचित होंगे। हठयौगिक अभ्यासों में षट्कर्मों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। षट्कर्म शोधन की छः क्रियायें हैं जिनका प्रमुख उद्देश्य शरीर के विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालकर राजयोग की साधना के योग्य बनाना होता है। इन क्रियाओं का अभ्यास करने से शरीर एवं मन का शोधन के साथ शरीर में स्थित वात, पित्त एवं कफ दोषों में समानता आती है। शरीर में मेध एवं श्लेष्मा की अधिकता दूर होती है, शरीर की स्थूलता अर्थात् भारीपन नष्ट होता है, जिससे शरीर में हल्कापन आता है तथा शरीर के रोग दूर होते हैं। यें षट्कर्म इतने महत्वपूर्ण होते हैं कि इनका अभ्यास करने से शरीर का कायकल्प हो जाता है अर्थात् शरीर की अशुद्धियां दूर होकर शरीर में नवीन ऊर्जा का संचार होता है और शारीरिक एवं मानसिक व्याधियां दूर होती हैं।

अब आपके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि ये षट्कर्म कौन–कौन से हैं? इनकी विधि क्या है? क्या इनका हमारे व्यावहारिक जीवन में भी कोई महत्व है, इत्यादि।

आपकी इन सभी जिज्ञासाओं का समाधान प्रस्तुत इकाई में करने का प्रयास किया जायेगा, जिसमें हम हठप्रदीपिका में वर्णित षट्कर्मों का विवेचन करेंगे। हठप्रदीपिका हठयोग का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें स्वात्माराम योगी द्वितीय अध्याय में षट्कर्मो का वर्णन करते हैं। इस अध्याय में स्वात्माराम योगी इन षट्कर्मो की विधि के साथ–साथ इनके लाभों एवं महत्व पर भी प्रकाश डालते है। प्रस्तुत इकाई में आप हठप्रदीपिका में वर्णित षट्कर्मो के विषय में ज्ञान अर्जित करेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

- हठप्रदीपिका के अनुसार षट्कर्मो का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- षट्कर्म क्या है, इसे स्पष्ट कर सकेंगे।
- षट्कर्मों के उद्देश्य एवं महत्व का वर्णन कर सकेंगे।
- हठप्रदीपिका में वर्णित षट्कर्मों की विधि, लाभ इत्यादि का अध्ययन कर सकेंगे।
- विभिन्न रोगों के परिपेक्ष्य में षट्कर्मो की उपादेयता का ज्ञान अर्जित कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अन्त में दिए गये प्रश्नों का उत्तर देने में सक्षम हो सकेंगे।
- व्यावहारिक जीवन में षट्कर्मों की उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।

6.3 षट्कर्म का अर्थ

प्रिय पाठकों, सर्वप्रथम हम षट्कर्म के शाब्दिक अर्थ पर विचार करते हैं, षट्कर्म शब्द दो शब्दों षट् + कर्म से मिलकर बना है। षट् का अर्थ छह से एवं कर्म का अर्थ क्रियाओं से होता हैं, अर्थात् षट्कर्म छह क्रियाओं का समूह है। यहॉ पर शरीर शोधनार्थ छह क्रियाओं के सम्मिलित रुप को षट्कर्म की संज्ञा दी गयी है। षट्कर्म का आशय ऐसी छः क्रियायों से है जिनका उद्देश्य शरीर को शुद्ध करना एवं शरीर से विकृत वात, पित्त एवं कफ दोषों को बाहर निकालना है। हठयोग स्थूल शरीर पर आधारित साधना पद्धति है, जिसमें सर्वप्रथम स्थूल शरीर की शुद्धि एवं नियंत्रण पर बल दिया जाता है, तथा इसके बाद मानसिक शुद्धि एवं नियंत्रण की दिशा में आगे बढ़ा जाता है। इस हठयोग के प्रथम अंग के रुप में शरीर शोधन हेतु षट्कर्मो का उपदेश किया गया है।

हठयोग साधना का प्रारम्भ स्थूल शरीर के शोधन से होता है। स्थूल शरीर को शुद्ध करने की प्रथम सीढी के रुप में षट्कर्मो का उपदेश किया गया है। जब तक शरीर में मेध एवं श्लेष्मा की अधिकता रहती है, तब तक शरीर में आलस्य, भारीपन, निन्द्रा एवं तन्द्रा आदि की अधिकता बनी रहती है। इसके साथ–साथ शरीर में वात, पित्त, कफ दोषों की विषमता रहने पर शरीर में रोग उत्पन होने की प्रबल सम्भावना रहती है, अतः सर्वप्रथम इन षट्कर्मो के अभ्यास से अशुद्वियों एवं विजातीय तत्वों को बाहर निकाला जाता है। इन तत्वों के बाहर निकलने से शरीर के वात–पित्त–कफ दोषों में समता उत्पन होती है एवं शरीर में लघुता व शुद्वता आती है। इस प्रकार षट्कर्मो का अभ्यास कर स्वच्छ, निर्मल एवं निरोगी शरीर के साथ साधक अपनी योग साधना के पथ पर अग्रसर होता है।

प्रिय पाठकों, इस प्रकार हम कह सकते हैं कि षट्कर्म शरीर शोधन की क्रिया है जिनका वर्णन हठयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ हठप्रदीपिका में प्राप्त होता है। अब आपके मन में हठप्रदीपिका में वर्णित इन षट्कर्मो को जानने की जिज्ञासा ओर बढ़ गई होगी।

6.4 हठप्रदीपिका के अनुसार षट्कर्म

प्रिय पाठकों, हठयोग के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इनमें दो ग्रन्थों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रथम हठप्रदीपिका एवं द्वितीय घेरण्ड संहिता। इन दोनों ही ग्रन्थों में षट्कर्मों का विवेचन मिलता है। हठप्रदीपिका के द्वितीय अध्याय में षट्कर्म का वर्णन किया गया है जबकि घेरण्ड संहिता में तो हठयोग के प्रथम अंग के रूप में प्रारंभ में ही इन शुद्धि क्रियाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है।

प्रिय पाठकों, यहां पर हमारे अध्ययन का विषय प्रधान रूप से हठप्रदीपिका में वर्णित षटकर्मों का वर्णन करना है।

हठप्रदीपिका जो कि योगेन्द्र स्वात्मारामसूरी कृत रचना है, उसमें हठयोग के प्रधान रूप से चार अंग बताये गये हैं–

1. आसन 2. मुद्रा
3. प्राणायाम 4. नादानुसंधान

हठप्रदीपिका में षट्कर्मों का वर्णन "प्राणायाम विधि कथन" नामक द्वितीय अध्याय में किया गया है। इस अध्याय में स्वात्माराम योगी षट्कर्मो पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं–

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते।।
– (हठप्रदीपिका 2 /22)

अर्थात् धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि एवं कपालभाति ये छः शोधन क्रियाएं कहे गये हैं। इस उपदेश में योगीराज स्वात्माराम शरीर की स्थूलता एवं कफ दोष की अधिकता को दूर करने के उपाय के रुप में षट्कर्मो का उपदेश करते हैं। चूंकि स्थूल शरीर एवं विषम दोषों के साथ योगमार्ग की साधना के मार्ग पर आगे बढना सम्भव नही है अतः सर्वप्रथम स्थूलता एवं दोषों की विषमता दूर करने के उद्देश्य से छह शोधन क्रियाओं (षट्कर्मो) के अभ्यास का उपदेश स्वात्माराम योगी करते हैं। यहां पर इन षट्कर्मो की अनिवार्यता प्रत्येक मनुष्य के लिए नही बताई गयी है। इस संदर्भ में योगीराज स्वात्माराम हठप्रदीपिका में स्पष्ट उल्लेख करते हुए कहते हैं–

मेद श्लेष्माधिकः पूर्वं षट्कर्माणि समाचरेत्।
अन्यस्तु नाचरेत्तानि दोषाणां समभावतः।।''
– (हठप्रदीपिका 2 /21)

अर्थात् स्थूलता एवं कफ जिसे अधिक हो उसे पहले छः शोधन क्रियायें करनी चाहिये किन्तु जिनमें ये दोषों (वात, पित्त, कफ) की समानता हो, उन्हें इन क्रियाओं के अभ्यास करने की विशेष आवश्यकता नहीं है।

अतः हम कह सकते हैं कि विकृत कफ की निवृत्ति एवं त्रिदोषों के साम्य के लिये स्वात्माराम योगी ने षट्कर्मों को करने की आवश्यकता का निर्देश दिया है। षट्कर्मों के संदर्भ महर्षि घेरण्ड ने भी कहा है–

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिः लौलिकी त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत्।।
–(घेरण्ड संहिता 1/2)

अर्थात् धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक एवं कपालभाति इन छह कर्मो का आचरण योगी के लिए आवश्यक है। अब हम हठप्रदीपिका के अनुसार इन षट्क्रियाओं का सविस्तार से अध्ययन करते हैं–

6.4.1 धौति कर्म– प्रिय पाठकों धौति क्रिया का अर्थ धोने होता है, यहां पर उदर प्रदेश अथवा आमाश्य को वस्त्र एवं जल से धोकर शुद्ध करने के अर्थ में धौति कर्म का उपदेश किया गया है। हठप्रदीपिका में स्वात्माराम योगी धौति कर्म के दो भेदों का विवेचन करते हैं–

(क) वस्त्रधौति
(ख) गजकरणी

(क) वस्त्रधौति– प्रिय पाठकों वस्त्रधौति के नाम से ही स्पष्ट होता है कि इसमें वस्त्र (कपड़े) के द्वारा शुद्धि क्रिया की जाती है। इस क्रिया में वस्त्र के माध्यम से शरीर के आन्तरिक अंगों की सफाई जिसमें मुंह, आहारनाल एवं आमाशय प्रधान रूप से आते हैं, का शोधन किया जाता है। वस्त्रधौति का वर्णन करते हुए स्वात्माराम योगी कहते हैं–

चतुरघगुलविस्तारं हस्तपत्र्चदशायतम्।
गुरुपदिष्टमार्गेण सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत्।
पुनः प्रत्याहरे च्चैतदुदितं धौति कर्म तत्।।
– (हठप्रदीपिका 2/24)

अर्थात् चार अंगुल चौड़ा पन्द्रह हाथ लम्बा कपड़ा, जल में भिगोकर गुरू के निर्देश के अनुसार धीरे–धीरे बाहर निकालना चाहिये। इसे धौति क्रिया कहते हैं। इस क्रिया की विधि इस प्रकार है–

विधिः– वस्त्रधौति के अभ्यास के लिये 15 हाथ लम्बा (22फुट लम्बा) एवं चार अंगुल चौडा मुलायम एवं जीवाणुरहित सूती अथवा मलमल का वस्त्र लेते हैं। इस वस्त्र को पानी में उबालकर जीवाणु रहित कर लेते हैं। अब इसे गोलाई में लपेटकर जल में लपेट कर जल में भिगोकर रखते हैं। कागासन में उकडू बैठकर इस वस्त्र धौति के एक सिरे को जिह्ला मूल पर रखते हुए अन्दर निगलना प्रारम्भ करते हैं। 8 से 10 मिनट के समयन्तराल के अन्दर इस पूरे वस्त्र को निगल जाते है तत्पश्चात् इस वस्त्र को वमन के रुप में बाहर निकाल देते हैं। यह अभ्यास वस्त्रधौति कहलाती है।



लाभ– स्वात्माराम योगी वस्त्रधौति कर्म के लाभों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं–

कासश्वासप्लीहकुष्टं कफरोगाश्चविंशतिः।
धौतिकर्मप्रभावेन प्रयानत्येव न संशयः।
– (हठप्रदीपिका 2/25)

अर्थात् धौति क्रिया के फलस्वरूप खाँसी, दमा, तिल्ली, कुष्ठ तथा अपच बीसों प्रकार के कफ सम्बन्धी रोग निसन्देह नष्ट होते हैं।

(ख) गजकरणी– पाठकों गजकरणी की क्रिया भी पाचन संस्थान की शुद्धि से सम्बद्ध है। इसकी विधि इस प्रकार है–

उदरगतपदार्थमुद्वमन्ति पवनमपानमुदीर्य कण्ठनाले।

क्रमपरिचयपश्यनाडिचक्रा गजकरणीति निगद्यते हठज्ञैः।।

– (हठप्रदीपिका 2/26)

अर्थात् क्रमशः नाड़ी समूहों पर नियंत्रण पाकर साधकगण अपानवायु को ऊपर उठाकर, कण्ठ नली में लाकर, उदर स्थित पदार्थों (अन्न–जल आदि) का वमन करते हैं। यह क्रिया गजकरणी कहलाती है।

विधि :– प्रिय पाठकों गज का अर्थ हाथी से है, जिस प्रकार हाथी सूंड में पानी भरकर बाहर फेंकता है उसी प्रकार इस अभ्यास हेतु हल्के गर्म अथवा गुनगुने पानी में हल्का सा नमक मिलाकर उसे पीना प्रारम्भ करते है। इस अभ्यास हेतु यत्नपूर्वक अधिक से अधिक पानी पीते है, तत्पश्चात अंगुलियों को बिना मुख में डाले फव्वारे की तरह इस जल को धारा प्रवाह के रुप में बाहर निकाल देते हैं। यह अभ्यास गजकरणी कहलाता है।

लाभः– इस अभ्यास से आमाश्य में स्थित प्रकुपित पित्त निकल जाता है परिणामस्वरुप अम्लपित्त, पेट में जलन, सिर दर्द, रक्त विकार एवं त्वचा रोगों में इस अभ्यास को करने से लाभ मिलता है। ऐसे व्यक्ति जिनके आमाश्य में अम्ल की अधिकता रहती है तथा मुह में खट्टा पानी व सीने में जलन रहती है, प्रातः काल गजकरणी क्रिया का अभ्यास करने से लाभ मिलता है।

6.4.2 बस्ति कर्म– प्रिय विद्यार्थियों हठप्रदीपिका में षट्कर्म की दूसरी क्रिया के अन्तर्गत बस्ति कर्म का वर्णन किया गया है। यह अभ्यास जल के द्वारा आंतों एवं गुदा मार्ग की शुद्धि करता है। इस अभ्यास पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी कहते हैं–

नाभिदघ्नजले पायुन्यस्तनालोत्कटासनः।
आधाराकुत्र्चनं कुर्यात् क्षालनं बस्तिकर्म तत्।।

– (हठप्रदीपिका 2/26)

अर्थात्– नाभिपर्यन्त जल में स्थित हो, गुदा में एक नली डालकर उत्कटासन करते हुए साधक गुदा का संकोचन करें और (अन्दर के भाग को) धोये। इसे "बस्ति क्रिया" कहते हैं।

विधि :– बस्ति कर्म हेतु नाभि तक गहरे जल में उत्कटासन में स्थित होकर एक नली को गुदा में प्रविष्ट कराते हैं। इस नली का दूसरा सिरा जल में डूबा रहता है अब श्वसन क्रिया के साथ गुदा के आकुंचन एवं परासरण की क्रिया करते है। इस क्रिया के परिणामस्वरुप स्वच्छ जल आतों में जाकर आतों को स्वच्छ बनाता है।

लाभ– पाठकों बस्ति कर्म के लाभों पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी कहते है–

गुल्मप्लीहोदरं चापि वातपित्तकफोद्भवाः।
बस्तिकर्मप्रभावेन क्षीयन्ते सकलामयाः।।

– (हठदीपिका 2/27)

अर्थात् बस्ति क्रिया के अभ्यास के फलस्वरुप वायुगोला, तिल्ली, जलोदर तथा वात, पित्त, कफ जन्य सभी दोष नष्ट हो जाते हैं।

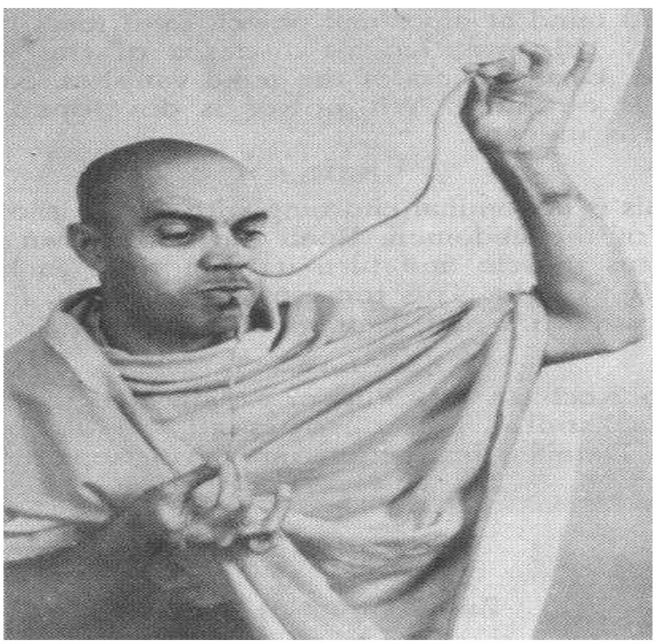
यह बडी आंत को स्वच्छ बनाने की क्रिया है, जिसका अभ्यास करने से कब्ज, अपच, गैस, पेट दर्द आदि रोग दूर होते हैं। इसके साथ ही धातुओं की पुष्टि, इन्द्रिय एवं अन्तः करण की प्रसन्नता प्राप्त होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। यह अभ्यास शरीर में कान्ति लाता है।

6.4.3 नेति कर्म– प्रिय पाठकों, हठप्रदीपिका में षट्कर्म की तीसरी शोधन क्रिया के रुप में नेति कर्म का वर्णन किया गया है। इसे आधुनिक समय में ENT Care क्रिया के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इससे हमारी E= Eyes (आंख), N= Nose (नाक), T=Throat (गला) की सफाई होती है। हठप्रदीपिका में नेति क्रिया का वर्णन करते हुए स्वात्माराम योगी कहते हैं –

सूत्र वितस्ति सुस्निग्धं नासानाले प्रवेशयेत्।
मुखान्निर्गमयेच्चैषा नेतिः सिद्धैर्निगद्यते।।
– (हठप्रदीपिका 2/30)

अर्थात् चिकनी और लगभग 9 इंच लम्बी (विशेष रूप से तैयार किये गये) सूत्र को नासिका में डालकर उसे मुख्य से बाहर निकालें। इसे ही योगीजन नेति कहते हैं।

विधि– सूत्र नेति के अभ्यास के लिये सूत से बनी रस्सी को गर्म जल में भिगोकर जीवाणु रहित करते है। अब इसके एक सिरे को नासिका द्वार से अन्दर डालते है। नासिका से होती हुई सूत्र मुख में आ जाती है। मुख को खोलकर अंगुलियो की सहायता से इस सूत्र के एक सिरे को मुख से बाहर निकाल लेते हैं। अब इस सूत्र के दोनों सिरों को हाथों से पकड़ कर नासिका के अन्दर इसका परिचालन करते हैं तत्पश्चात् मुख से इसे निकाल लेते हैं।



लाभ– प्रिय पाठकों नेति कर्म सम्पूर्ण शीर्ष प्रदेश को स्वच्छ एवं रोग रहित बनाने की क्रिया है, इस क्रिया के लाभों पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी कहते हैं–

कपालशोधनी चैव दिव्यदृष्टिप्रदायिनी।
जत्रूर्ध्वजातरोगौघं नेतिराशु निहन्ति च।।– (हठप्रदीपिका 2/31)

अर्थात् यह नेति कपाल प्रदेश (मस्तिष्क) को शुद्ध करती है, दिव्य (सुक्ष्म) दृष्टि प्रदान करती है, और स्कन्ध प्रदेश से ऊपर होने वाले रोग समूहों को शीघ्र नष्ट करती है।

सूत्र नेति क्रिया का अभ्यास नेत्र रोग, सर्दी जुकाम, कफ रोग, साइनस, नाक की हड्डी बढना, बालो का सफेद होना, झडना तथा एलर्जी आदि रोगों में अत्यन्त लाभ प्रदान करता है ।

6.4.4 त्राटक कर्म– हठप्रदीपिका के अनुसार शोधन क्रियाओं में चौथा स्थान त्राटक का है, यह नेत्रों से संबंधित अभ्यास है, जिसका अभ्यास करने से मानसिक एकाग्रता में आश्चर्यजनक अभिवृद्धि होती है।

प्रिय पाठकों आपके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी की त्राटक करने की विधि क्या है? स्वात्माराम योगी त्राटक कर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं –

निरीक्षेन्निश्चलदृशा सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।
अश्रुसम्पातपर्यन्तमाचार्यैस्त्राटकं स्मृतम्।।''– (हठप्रदीपिका 2/32)

अर्थात् स्थिरदृष्टि से किसी सूक्ष्म लक्ष्य को एकाग्र होकर तब तक देखना चाहिए जबतक कि आंख से आंसू बाहर न आ जाये, आचार्यों ने इसे त्राटक कहा है।

विधिः– त्राटक कर्म के लिये सर्वप्रथम एक सुक्ष्म लक्ष्य का चयन किया जाता है। इसके लिए दीपक की जलती लौ, सूर्य–चन्द्रमा, ग्रह–नक्षत्र, पेड–पौधे अथवा प्रेरणाप्रद चित्र का चयन किया जा सकता है। लक्ष्य चयन में ध्यान रखते हैं कि लक्ष्य शान्ति पूर्ण रुप से ऊर्जा प्रदान करने वाला होना चाहिए। अब ध्यानात्मक आसन में स्थित होकर इस लक्ष्य को टकटकी लगाकर तब तक देखते रहते हैं जब तक आँखो से आश्रुपात ना होने लगे। तत्पश्चात आंखों को बन्द करके उस लक्ष्य का ध्यान करते हैं।

लाभ– प्रिय पाठकों मन की चंचलता को दूर करने का यह अत्यन्त सरल अभ्यास है, इस क्रिया के लाभों पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी कहते हैं–

मोचनं नेत्ररोगाणां तन्द्रादीनां कपाटकम् ।
यत्नतस्त्राटकं गोप्यं यथा हाटकपेटकम्।। – (हठपदीपिका 2/33)

अर्थात् त्राटक नेत्र रोगों को दूर करता है तथा तन्द्रा आदि को नही आने देता अतः इस त्राटक को सोने की पेटी के समान महत्व देकर इसकी रक्षा करनी चाहिये।

6.4.5 नौलि कर्म– प्रिय पाठकों, नौलि कर्म उदर की मांसपेशियों से संबंधित अभ्यास है। नौलि को लौलिकी भी कहा जाता है, जिसकी उत्पत्ति "लोल" शब्द से हुयी है। लोल का अर्थ उत्तेजनापूर्वक इधर–उधर घुमाने से होता है। इस नौलि कर्म में उदर की मांसपेशियों को दांये से बांये ओर बांये से दांये उत्तेजना पूर्वक एक लय में घुमाया जाता है। हठ प्रदीपिका कार नौलि कर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं –

अमन्दावर्तवेगेन तुन्दं सव्यापसव्यतः।
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः सिद्धैःप्रचक्ष्यते।। – (हठप्रदीपिका 2/34)

अर्थात् कन्धे को थोड़ा आगे की ओर झुकाकर तीव्र गति वाले भंवर के समान उदर को दाहिने से बांये ओर बांये से दांये घुमाना चाहिये। सिद्धों के द्वारा इसे ही नौलि कहा जाता है।

विधिः– नौलि कर्म के अभ्यास के लिए पैरों में एक से डेढ फीट की दूरी रखते हुए खडे होते हैं। अब दोनों हाथ पैर के घुटनों पर रखते हुए श्वास को बाहर निकालकर घुटनों को दबाते हैं तथा उदर की मांसपेशियों को संकुचित कर बाहर की ओर निकालते हैं। इस अभ्यास में पहले उदर के मध्य भाग को फिर वाम भाग को तथा फिर दक्षिण भाग को एक क्रम से संकुचित कर बाहर की ओर निकालने से नौलि घूमती हुई प्रदर्शित होती है। हठप्रदीपिका में इस अभ्यास को नौलि कर्म कहा गया है।

लाभः— नौलि कर्म उदर की मांसपेशियों को सक्रिय कर जठराग्नि को प्रदिप्त करता है। इसके लाभों पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी कहते हैं—

मन्दाग्निसंदीपनपाचनादिसंधायिकानन्दकरी सदैव।
अशेषदोषामयशोषणी च हठक्रियामौलिरियं च नौलिः।। — (हठप्रदीपिका 2/35)

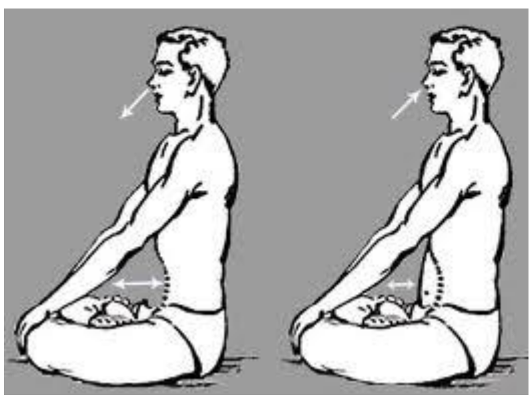
अर्थात् सदा—सर्वदा आनंद को लाने वाली यह नौलि—क्रिया मन्द जठराग्नि को प्रदीप्त कर पाचन क्रिया आदि को तेज करती है। विविध दोषों तथा रोगों को नष्ट करती हैं इसलिये यह हठक्रियाओं में श्रेष्ठ है।

इसके अभ्यास से पाचक रसो का स्त्रावण बढता है, भूख भली—भांति लगती है, भोजन का पाचन एवं अवशोषण अच्छी प्रकार से होता है, एवं अजीर्ण, अपच, गैस, कब्ज, एवं अतिसार एवं उदर का मोटापा आदि रोग दूर होते हैं। नौलि क्रिया के महत्व को देखते हुए इस अभ्यास को स्वात्माराम योगी सर्वश्रेष्ठ क्रिया की संज्ञा देते हैं।

6.4.6 कपालभाति कर्म— प्रिय पाठकों, हठप्रदीपिका में वर्णित षट्कर्मो में छठा कर्म कपालभाति है। कपालभाति को एक प्राणायाम के रूप में भी स्वीकार किया गया है क्योंकि एक तो इसको करने की विधि प्राणायाम से समानता रखती हैं दूसरा कपालभाति का नियमित अभ्यास प्राणमय कोश को जाग्रत करता है। इस आधार पर कुछ विद्वान इस अभ्यास को प्राणायाम वर्ग में स्थान देते हैं। यहां पर स्वात्माराम योगी कपालभाति कर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं—

भस्त्रावल्लोहकारस्य रेचपूरौ ससंभ्रमौ।
कपालभातिर्विख्याता कफदोषविशोषणी।। — (हठप्रदीपिका 2/36)

अर्थात् लौहार की धौंकनी के समान शीघ्रता से रेचक पूरक करने से कपालभाति होती है। यह कफ रोगों को नष्ट करने वाली है।



विधिः— कपालभाति कर्म के अभ्यास के लिए ध्यानात्मक आसन में स्थित होकर बैठते हैं। अब तेजी से श्वास का रेचक (श्वास को बाहर छोडना) एवं पूरक (श्वास को अन्दर भरना) की क्रिया करते हैं। रेचक—पूरक की क्रिया शरीर को स्थिर रखते हुये मन में स्थिर भाव के साथ करते हैं। इन क्रियाओं में एक निश्चित लयबद्वता रखते है।

लाभ— यह अभ्यास श्वसन क्रिया के माध्यम से शरीरस्थ विजातीय तत्वों को बाहर निकालता है। इसका अभ्यास करने से शरीर की गन्दगियां बाहर निकालती हैं एवं रक्त शुद्व होता है। जीवनी शक्ति एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता बढती है। यह अभ्यास शरीर में

गाठों, त्वचा रोगों तथा मोटापा आदि रोगों को दूर करता हुआ शरीर को स्वच्छ, निरोगी, ऊर्जावान एवं कान्तिवान बनाता है।

प्रिय विद्यार्थियों, इस प्रकार हठप्रदीपिका में स्वात्माराम योगी षट्कर्मों का अत्यन्त सुन्दर विवेचन करते हैं।

6.5 षट्कर्मों का फल– प्रिय पाठकों इस प्रकार स्पष्ट होता है कि हठयोग के अभ्यासों में षट्कर्मों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इन अभ्यासों से शरीर शुद्धिकरण के साथ साथ मानसिक शोधन एवं एकाग्रता प्राप्त होती है। हठयोग की साधना में इन षट्कर्मों का विषेश महत्व है। इन षट्कर्मों के फलों पर प्रकाश डालते हुए स्वात्माराम योगी कहते हैं–

कर्मषट्कमिदं गोप्यं घटशोधनकारकम्।
विचित्रगुणसंधायि पूज्यते योगिपुडगवैः।।– (हठप्रदीपिका 2/23)

अर्थात् शरीर को शुद्ध करने वाली तथा आश्चर्यजनक फल देने वाली ये छः क्रियायें गोपनीय रखनी चाहिये। इसलिये योगियों द्वारा इन्हें बहुत महत्व दिया गया है।

षट्कर्मों का अभ्यास करने से शरीर की अशुद्धियां बाहर निकलती है जिससे वात, पित्त, कफ दोष सम अवस्था को प्राप्त होते हैं। इन क्रियाओं का अभ्यास करने से शरीर का कायाकल्प होकर शरीर मे नवीन ऊर्जा का संचार होता है, इन क्रियाओं के महत्व के आधार पर योगी स्वात्माराम इन षट्कर्मों को आश्चर्यजनक फल देने वाली महत्वपूर्ण एवं गोपनीय क्रियाएं कहते हैं।

हठप्रदीपिका के द्वितीय उपदेश में ही पुनः इन षट्कर्मों के फलों एवं महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया–

षट्कर्मनिर्गतस्थौल्यकफदोषमलादिकः।
प्राणायामं ततः कुर्यादनायासेन सिद्धयति।।– (हठप्रदीपिका 2/37)

अर्थात् मोटापा, कफ संबंधी रोग तथा मल आदि का षट्क्रियाओं द्वारा निवारण कर तब प्राणायाम करना चाहिये। इससे प्राणायाम अनायास ही सिद्ध होता है।

शरीर में मलों की अधिकता एवं दोषों की विषमता होने पर योगांगों का साधन करने पर उनमें सिद्धी प्राप्त नही हो पाती, जबकि योगमार्ग की साधना के पथ पर आगे बढने से पूर्व षट्कर्मो द्वारा शरीर का शोधन करने पर योगांगों में आसानी से सिद्धी प्राप्त होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हठप्रदीपिका में वर्णित षट्कर्म अत्यन्त लाभकारी क्रियाए हैं जिनके अभ्यास से शरीर की अशुद्धिया एवं विकार दूर होते हैं तथा शरीर योगसाधना हेतु उपयुक्त बनता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न–

(1) सत्य/असत्य

क. षट्कर्म का उद्देश्य शरीर को शुद्ध करना एवं शरीर से विकृत वात, पित्त एवं कफ दोषों को बाहर निकालना है।

ख. हठप्रदीपिका के प्रथम उपदेश में षट्कर्मों का वर्णन किया गया है।

ग. हठप्रदीपिका में प्राणायाम से पूर्व षट्कर्मों के अभ्यास का उपदेश किया गया है।

घ. सूत्र को नासिका में डालकर मुख से निकालना धौति कर्म है।

ड़. आधुनिक समय में नेति क्रिया को ENT Care क्रिया के नाम से जाना जाता है।

च. हठप्रदीपिका के अनुसार कपालभाति का अभ्यास कफ रोगों को दूर करता है।

(ख)रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

क. षट्कर्म शोधन की .... क्रियाएं हैं।

ख. हठयोग साधना का प्रारम्भ .... के शोधन से होता है।

ग. हठप्रदीपिका के अनुसार शरीर को शुद्ध करने वाली तथा आश्चर्यजनक फल देने वाली षट्क्रियाएं .... रखनी चाहिये।

घ. नौलि कर्म .... की मांसपेशियों से सम्बन्धित अभ्यास है।

ड़. हठप्रदीपिका में वर्णित षट्कर्मो में छठा कर्म .... है।

च. .... को सोने की पेटी के समान महत्व देकर इसकी रक्षा करनी चाहिये।

(3) **बहु विकल्पीय प्रश्न**

क. हठप्रदीपिका में षट्कर्मो का वर्णन किस उपदेश में किया गया है –

(a) प्रथम उपदेश (b) द्वितीय उपदेश

(c) तृतीय उपदेश (d) चर्तुथ उपदेश

ख. हठप्रदीपिका कार के अनुसार षट्कर्मों में श्रेष्ठ क्रिया है –

(a) धौति क्रिया (b) बस्ति क्रिया

(c) नेति क्रिया (d) नौलि क्रिया

ग.हठप्रदीपिका के अनुसार वस्त्रधौति में कितनी लम्बाई का कपडा प्रयोग किया जाता है –

(a) 15 हाथ, 4 अगुंल (b) 12 हाथ, 2 अगुंल

(c) 22 हाथ, 5 अगुंल (d) इच्छानुसार

घ. हठप्रदीपिका में स्वात्माराम योगी धौति कर्म कितने भेदों का विवेचन करते हैं –

(a) आठ भेद (b) पांच भेद

(c) चार भेद (d) दो भेद

ड. भंवर के समान उदर को दाहिने से बांये ओर बांये से दांये घुमाने की क्रिया है –

(a) धौति क्रिया (b) नौलि क्रिया

(c) नेति क्रिया (d) बस्ति क्रिया

च.लोहार की धौंकनी के समान शीघ्रता से रेचक एवं पूरक करने की क्रिया है –

(a) कपालभाति क्रिया (b) नौलि क्रिया

(c) नेति क्रिया (d) बस्ति क्रिया

6.6 सारांश–

प्रिय विद्यार्थियों, उपर्युक्त विवेचन स्पष्ट करता है कि हठयोग में षट्कर्मों अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। योग साधक इन षट्क्रियाओं से अपनी साधना प्रारम्भ करता है। इन क्रियाओं का प्रधान उद्देश्य उच्चतर अभ्यासों के लिये शरीर को स्वच्छ, निर्मल एवं विकार रहित बनाना है। ध्यान देने योग्य तथ्य यह भी है कि घेरण्ड संहिता में तो सभी साधकों के लिये षट्कर्म करने का निर्देश दिया गया है किन्तु हठप्रदीपिका में केवल उन साधकों को ही षट्कर्म करने का निर्देश दिया गया है, जिनमें मेध, श्लेष्मा अथवा कफ दोष की अधिकता है। ऐसे साधकों को साधना के पथ पर आगे बढने से पूर्व षट्कर्मों के अभ्यास से शरीर शोधन का उपदेश किया गया है।

हठप्रदीपिका में षट्कर्म की प्रथम क्रिया के रुप में धौति क्रिया का वर्णन किया गया है। इसके वस्त्रधौति एवं गजकरणी क्रिया के रुप में दो भेद किये गये हैं। दूसरी क्रिया के रुप में बस्ति क्रिया का वर्णन आता है। षट्कर्म की तीसरी क्रिया के रुप में नेति क्रिया का उल्लेख किया गया है। नेति क्रिया के उपरान्त त्राटक कर्म का उपदेश किया गया है। षट्कर्म की पांचवी क्रिया के रुप में नौलि क्रिया का वर्णन करते हुए इसे आनन्द प्रदान करने वाली श्रेष्ठ क्रिया की संज्ञा दी गयी है। षट्कर्म की छटी क्रिया के रुप में कपालभाति कर्म का वर्णन किया गया है। इस प्रकार हठप्रदीपिका एवं घेरण्ड संहिता दोनों ग्रन्थों में धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, और कपालभाति इन छः क्रियाओं का समान रुप में वर्णन किया गया है किन्तु घेरण्ड संहिता में इन छः क्रियाओं के भी अनेक भेद बताये गये है जबकि हठप्रदीपिका में इन कियाओं के भेद एवं उपभेद के स्थान पर मूल क्रिया का ही वर्णन किया गया है।

ये षट्कर्म त्रिदोष वात, पित्त एवं कफ में संतुलन स्थापित करते हैं। अतः न केवल अध्यात्मिक दृष्टि से वरन् व्यावहारिक जीवन भी दृष्टि से भी इनका अत्यन्त महत्व है। ये हमारे शरीर एवं मन दोनों को स्पष्ट बनाते हैं।

6.9 शब्दावली–

- षट्कर्म– शुद्धि की छः क्रियायें
- त्रिदोष– आयुर्वेद के अनुसार तीन दोष (i) वात (ii) पित्त (iii) कफ
- धौति– धोना या शुद्ध करना।
- कपालभाति– कपाल प्रदेश या ललाट का शुद्ध होना, प्रकाशित होना।
- भंवर– नदी की गोल लहरें
- प्रदिप्त– बढाना, वृद्धि करना

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. सत्य	क. छह	क. b
ख. असत्य	ख. शरीर	ख. d
ग. सत्य	ग. गोपनीय	ग. a
घ. असत्य	घ. उदर	घ. d
ड. सत्य	ड. कपालभाति	ड. b
च. असत्य	च. त्राटक	च. a

6.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. हठप्रदीपिका– स्वात्माराम कृत, कैवल्यधाम श्रीमन्माधव योगमंदिर समिति, लोनावाला, पुणे।
2. योग एवं यौगिक चिकित्सा–प्रो. रामहर्ष सिंह–स्वास्यवृत्त विज्ञान, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

6.12 निबंधात्मक प्रश्न–

1 हठप्रदीपिका के अनुसार षट्कर्मों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2 हठप्रदीपिका के अनुसार षट्कर्मों की विधि एवं लाभ लिखिए।

इकाई–7 आसन– अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य, आसनों का वर्गीकरण आसनों के सिद्धान्त, आसनों की उपयोगिता

7.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों अपने अध्ययन के क्रम को क्रमशः आगे बढ़ाते हुए प्रस्तुत इकाई में हमारे अध्ययन का विषय है – आसन के स्वरूप, इसके विभिन्न प्रकार, सिद्धान्त, उपयोगिता इत्यादि के बारे में जानना।

जैसा कि आप जानते है कि चाहे बात अष्टांग योग की हो या हठयोग, दोनों में ही आसन को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। वस्तुतः आसनों से हमारे अन्दर दृढ़ता एवं स्थिरता का विकास होता हैं। अतः शारीरिक एवं मानसिक रूप से शुद्ध होने के बाद एक योग साधक के लिए यह भी आवश्यक है, कि वह साधना के लिए लम्बे समय तक स्थिरता के साथ एक आसन में बैठ सके। जिससे कि उसकी साधना में प्रगति हो सके, अन्यथा उसे अपने लक्ष्य तक पहुँचने में बाधा उपस्थित होती है, इसलिए महर्षि पंतजलि ने कहा है –

"स्थिरसुखमांसनम्" – पा0 यो0 सू0 2/46

अर्थात् स्थिरता पूर्वक एवं सुख पूर्वक एक विशेष शारीरिक स्थिति में बैठने का नाम ही "आसन" हैं।

पाठकों अब आप अनेक प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए उत्सुक हो रहे होंगे जैसे कि –

- आसन कितने प्रकार के होते हैं ?
- किसी भी आसन को करने की विधि क्या है ?
- आसन को करने से शरीर और मन पर क्या –क्या प्रभाव पड़ते हैं ?
- जिज्ञासु विद्यार्थियों अब हम आसनों के उद्देश्यों की चर्चा करेंगे –

7.2 उददेश्य

- आसन के अर्थ एवं परिभाषाओं का अध्ययन कर सकेंगे।
- आसन के उद्देश्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- आसनों के वर्गीकरण का वर्णन करने में सक्षम हो सकेंगे।
- आसनों के सिद्धान्त् को स्पष्ट कर सकेंगे।
- आसनों की उपयोगिता का विश्लेषण कर सकेंगे।

7.3 आसन

7.3.1 आसन का अर्थ – आसन शब्द पर यदि हम दृष्टिपात करें तो आसन शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत व्याकरण के अस् धातु से हुयी थी, जिसका अर्थ है बैठना, परन्तु यहां अस् के दो अर्थ बताए हैं। पहला जिस पर हम बैठते हैं और दूसरा हमारी शारीरिक स्थिति। पहले अर्थ के रूप में बैठने से आशय चटाई, मृग (हिरन) की छाल, चौकी, गद्दी इत्यादि पर बैठना बताया है।

दूसरे अर्थ में आसन् से आशय हमारी शारीरिक स्थिति से है, कि किस प्रकार हमारे हाथ–पैर अवस्था लिए हुए है। जैसे यदि हमारे शरीर की स्थिति धनुष के समान प्रतीत हो रही है तो इसे धनुरासन कहा जाएगा।

आसन का ये अर्थ शास्त्रीय ढंग से आपको बताया गया है, व्यवहारिक रूप से यदि आसन शब्द को समझे तो प्रत्येक मनुष्य को अपने कार्य को सम्पादित करने के लिए आसन की आवश्यकता होती है, वह आसन चाहे किसी विशेष स्थान पर बैठ कर कार्य करने से हो, अथवा मनुष्य के शारीरिक अवस्था हो। आसन की आवश्यकता होती है।

उदाहरण – व्यवहारिक जीवन में यात्रा के दौरान हम अनुभव करते है कि जिस वाहन में हम यात्रा करते है उसमें हमारा एक निश्चित आसन (बैठना) होता है तथा उस वाहन को चलाने वाले चालक का भी एक निश्चित आसन होता है (चालक की गद्दी)। तभी वह हमारी यात्रा को पूरा करने में समर्थ होता है।

''आसन'' शब्द। केवल मनुष्य मात्र के लिए ही प्रस्तुत नहीं होता है। प्रत्येक पशु–पक्षी, जीव–जन्तु तथा कीट पंतगे सभी के लिए भी प्रयुक्त् होता है, क्योंकि संसार में पाए जाने वाले प्रत्येक प्राणी का अपना एक आसन होता है।

प्रिय विद्यार्थियों अब तो आप आसन के अर्थ को समझ चुके होंगे, कि आसन क्या है। अब हम चर्चा करेंगे कि आसन को किन–किन ग्रंथों में परिभाषित किया गया है।

7.3.2 परिभाषाएं – हठ प्रदीपिका में आसन को परिभाषित करते हुए कहा है,

1. ''हठस्थ प्रथमाड्.गत्वाहासनं पूर्वमुच्यते।
कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाइ.गलाघवम्''।।

– (हठ प्रदीपिका 1/17)

अर्थात् ''आसन, चूंकि हठ योग का पहला अंग है, अतः सर्वप्रथम इसका निरूपण करते है,

आसन (मानसिक और शारीरिक) स्थिरता, आरोग्य तथा शरीर में हल्कापन (का अनुभव) लाता है।''

हठ प्रदीपिका जो कि हठ योग का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है उसमें आसन को पहले अध्याय में रखा गया है एवं महत्वपूर्ण बताया है, इसमें बताया है आसन करने से मानसिक तथा शारीरिक स्थिरता प्राप्त होती है।

शारीरिक तथा मानसिक स्थिरता की बात इसलिए बतायी है कि आसन को श्वां स एवं प्रश्वाास के साथ किया जाता है, आसन को करने से शरीर से पसीने के रूप में गंदगी बाहर निकलती है जिसे शरीर में हल्काहपन आने लगता है तथा शरीर रोग मुक्त हो जाता है।

2.घेरण्ड संहिता के अनुसार –

''आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः।
चतुरशीत लक्षाणि शिवेन कथितानि च''।।1।।
''तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शतं कृतम्।
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम्''।।2।।

– (घेरण्ड संहिता1/1,2)

अर्थात् संसार में जितने भी जीव–जन्तु है, उतनी ही संख्या आसनों की है, भगवान शिव ने पहले चौरासी लाख आसन कहे, उनमें से चौरासी आसन श्रेष्ठ है। उन चौरासी आसनों में भी बत्तीस आसनों को अति विशिष्ट और अधिक शुभ समझना चाहिए।

इस परिभाषा में महर्षि घेरण्ड यही वर्णन कर रहे है कि जितनी योनियां इस पृथ्वी पर पायी जाती है उतनी ही संख्या आसनों की है जो भगवान शिव ने बतायी है परंतु इतने आसनों को कर पाना संभव नहीं है इसलिए महर्षि ने इनकी संख्या 84 बतायी है, परंतु इस आधुनिक जीवनशैली (व्यस्त जीवन शैली) के अनुसार भी अधिक है, इसलिए इनकी संख्या को बत्तीस बताया है और ये बत्ती्स आसन हमारे लिए शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अत्यधिक लाभकारी हैं।

3. तेजबिन्दु उपनिषद के अनुसार –

''सुखनेव भवेत् यस्मिन् जसश्रम ब्रहम चिन्तन।।''

अर्थात् जिसमें सुखपूर्वक बैठकर ब्रहम का चिन्तन किया जाए, मन के ब्रहम में एकीकरण किया जाए। इस परिभाषा में आसन के विषय में यह स्पष्ट, किया जा रहा है कि आप जिस पर बैठे है और जो भी आपकी शरीर की स्थिति है उसमें कोई तनाव न हो एक सहज और सरल स्थिति हो। जिसमें बैठकर साधक परमपिता परमेश्वर को याद कर सके तथा स्वयं को उसके साथ जोड़ पाने में समर्थ हो सके।

4. श्रीमद्भगवत् गीता जो स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने अपने श्रीमुख द्वारा गायी है उसमें, उन्होंने आसन को परिभाषित करते हुए कहा है।

''तत्रैकागंमनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपबिश्यासेन युन्जयाद्योगमात्म विशुद्धये।।''

– (श्रीमद् भगवद् गीता 6/12)

अर्थात् उस आसन पर बैठकर चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एकाग्र करके अन्तःकरण शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करें।

यहां भगवान आसन से तात्पर्य, साधक की शारीरिक स्थिति तथा जिस पर बैठा है दोनों की चर्चा कर रहे है वे कह रहे है कि साधक मन को शान्त कर अपनी इन्द्रियों (आँख, मुँह, नाक, जीह्वा और त्वचा) पर अपना नियंत्रण रखें, तथा अपने विचारों को शुद्ध बनाते हुए

अपने को अन्दर से भी शुद्ध बनाइए और इनके लिए उन्होंने सीधे शब्दों में कहा कि योग का अभ्यास करें।

प्रिय पाठकों योग को पढ़ने के बाद आप इस बात से भलि–भॉति अवगत होंगे कि योग (वृक्ष) के अंतर्गत हठ योग भी आता है और आसन उसी का अंग है, तो इस परिभाषा को आप समझ रहे होंगे कि भगवान क्या कह रहे हैं।

5. भगवान श्री कृष्ण पुनः आसन को परिभाषित करते हुए कहते है –

''समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशाश्रानवलोयन्।।''

अर्थात् काया, सिर और गले को समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर, अपनी नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओं को न देखता हुआ।

इसमें बताया जा रहा है कि काया अर्थात् शरीर, सिर और गले को एक सीध में बिना हिलाए–डुलाए रखें, तत्पाश्चात् अपनी नाक के आगे वाले भाग पर लगाकर देखें और यही स्थिति आसन है।

6. योग के प्रणेता या जनक कहे जाने वाले महर्षि पंतजलि योग के सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ में आसन को बहुत सरल रूप से परिभाषित करते हुए कहते है –

''स्थिर सुखमासनम्।'' (साधनपाद 46 सूत्र)

अर्थात् सुख पूर्वक स्थिर रहना ही आसन है। यहां महर्षि ये ही बताना चाहते है कि साधक जिस भी स्थान पर जो भी शारीरिक स्थिति लिए हुए है वह एकाग्र हो, स्थिर हो, उसमें कम्पन्न् न हो और उसे उस स्थिति में प्रसन्नता हो वह खुश होकर उस अभ्यास को करें, तो यही आसन है।

7. चरण दास जी के अनुसार –

''चौरासी लाख आसन जानो, योनि की बैठक पहचानो।।''

अर्थात् चौरासी लाख जीव–जन्तु जिस अवस्था में बैठते है उसी स्वरूप को आसन कहा जाता है। इसमें ये बताया जा रहा है कि पृथ्वी पर जितने भी जानवर या कीट पंतगे है उनकी जो शरीर की अवस्थायें होती है उतने ही आसन कहे जाते है। उनके बैठने की स्थिति आसन है।

प्रिय विद्यार्थियों आप विभिन्न परिभाषाओं को पढ़ने के बाद ये समझ चुके होंगे कि आसन कितना महत्वपूर्ण शब्द है जिसको विभिन्न ग्रन्थों में हमारे ऋषियों ने परिभाषित किया है, आसनों का वर्णन हमारे ग्रंथों के अलावा वेद एवं पुराणों में भी हमें प्राप्त होता है।

जिज्ञासु पाठकों आसन के अर्थ एवं परिभाषाओं को पढ़ने के बाद अब आप जानने की सोच रहे होंगे कि इसके उद्देश्य क्या है, तो अब हम आगे इसके उद्देश्यों को विस्तारित ढंग से बताएंगे।

7.4 आसनों के उद्देश्य

आसनों के उद्देश्य को हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से बता सकते है जो इस प्रकार है –

उद्देश्य –

1– आसन को करने का सबसे पहला उद्देश्य जो माना जाता है वो शरीर में सुधार करना होता है। आजकल जो आसन को करने का प्रचलन है उसका मुख्य उद्देश्य यही रहता है कि किस प्रकार अपने शरीर का सुधार कर पाए अर्थात् यदि शरीर में किसी भी जगह

अतिरिक्त चर्बी है तो उसे कैसे हटाया जाए तथा जो कमजोर व्यक्तित्व वाले है वे किस प्रकार स्वयं को संतुलित कर पाए अर्थात् सुडौल बना पाए, और छरहरा और सुडौल शारीरिक स्थिति सभी को पसंद है।

2– आसन को करने वाला मनुष्य जल्दी तनाव युक्त नहीं होने पाता। आसन को हमेशा श्वास प्रश्वास के साथ संतुलित और सकारात्मक मनोस्थिति के साथ महसूस करते हुए करवाया जाता है, जिससे हमारे सभी हार्मोन्स पूर्ण रूप से हमारे शरीर में स्त्रावित होते है, और हार्मोन्स यदि सही ढंग से स्त्रावित नहीं होते तभी मन स्थिति खराब या तनाव मुक्त होती है। ये भी आसन को करने का मुख्य उद्देश्य माना जाता है।

3– आसन को करने से एक आनंद की अनुभूति तो होती है। शुरूआती तौर पर आसन करने में भले ही साधक को दर्द का अनुभव हो किन्तु जब वह आसन को अपना दिनचर्या का अंग बना लेता है तो उसके कार्यों में भी उत्साह की झलक देखने को मिलती है जिससे वह आनन्द का अनुभव प्राप्त करता है।

4– अपने शरीर व मन में समन्वय स्थापित करना, जिससे की साधक की रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि हो सके। हमारा शरीर और मन दोनों ही एक दूसरे के पूरक है यदि मन स्वस्थ एवं प्रसन्न् होता है तो शरीर में कोई भी कीटाणु हमला नहीं कर पाते, जिससे हमारा स्वास्थ्य स्वस्थ रहता है और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है।

5– आसन को करने का उद्देश्य यह भी रहता है जिससे हमारा नाड़ी संस्थान स्वस्थ रहे। नाड़ी संस्थान को ही शरीर का मुख्य तंत्र माना जाता है क्योंकि शरीर में होने वाली गतिविधियों के लिए यही जिम्मेदार होता है। दूसरा उद्देश्य इसका आध्यात्मिक दृष्टि से भी माना जाता है अर्थात् आसन को करने से साधक स्वयं को आगे बढ़ाने में समर्थ हो पाता है धारणा और ध्याान के लिए स्वयं को तैयार कर पाता है।

6– शरीर व मन में होने वाली अस्थिरता को दूर करने के लिए व स्वयं को शान्त एवं एकाग्र बनाने के लिए भी आसन का अभ्याास किया जाता है।

7– चित्त में उठने वाले विचारों को कम करने के लिए, अपने असंतुलित व्यवहार को संतुलित एवं अच्छा बनाने के लिए, भावनाओं को नियंत्रित करने के लिए आसन का अभ्यास बहुत ही महत्वपूर्ण है।

8– स्वयं को पूर्णरूप से स्थिर और स्वस्थ रखने के लिए आसन का अभ्यास बहुत आवश्यक है, आसन को करने का ये उद्देश्य भी महत्वपूर्ण माना जा रहा है कि जो व्यक्ति शारीरिक मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक स्तर भी स्वस्थ होता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को समाज में एक अच्छी छवि से देखना चाहता है।

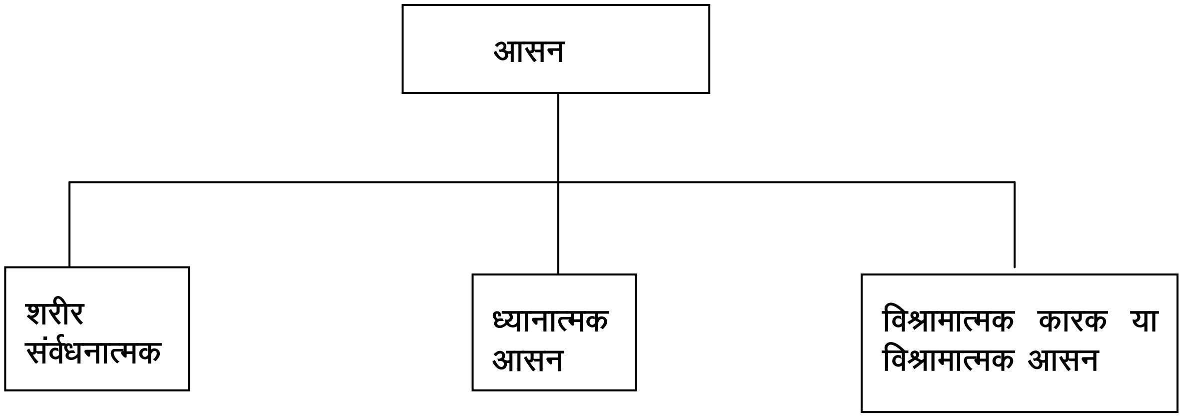
9– आसन का जो सबसे मुख्य उद्देश्य यदि देखा जाए तो कुण्डिलनी के जागरण एवं विकास के लिए आसन बहुत आवश्यक है।

10– अतः यदि देखे तो आसन का उद्देश्य स्वयं को स्वस्थ बनाना एवं स्वयं की एक अच्छी छवि बनाना चाहे व सांसारिक स्तर पर हो या पारलौकिक स्तर पर माना जाता है।

पाठकों आसन के उद्देश्यों को विस्तृत रूप से पढ़ने के बाद आप सभी जान गए होंगे कि आसन प्रत्येक जन सामान्य के लिए कितना आवश्यक हो गया है। अब आगे हम आसनों के वर्गीकरण का अध्ययन कर सकेंगे कि आसनों को किस प्रकार से बांटा गया है।

7.5 आसनों का वर्गीकरण

महर्षि घेरण्डं के अनुसार आसनों को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है, जो इस प्रकार हैं–



जिज्ञासु विद्यार्थियों, आसनों के वर्गीकरण के बाद आपके मन में ये जानने के भी तीव्र इच्छा हो रही होगी कि शरीर सवर्धनात्मक, ध्यानात्मक और विश्रामात्मक आसन क्या है एवं किन आसनों को इनमें रखा जाता है ? तो अब आप प्रत्येक आसन से भलि प्रकार परिचित हो सकेंगे आसनों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार से बताया जा रहा है –

1– शरीर संर्वधनात्मक आसन – शरीर संर्वधनात्मक (शरीर का विकास करने वाले) मांसपेशियों में खिंचाव हो, जिन्हें करने के बाद रक्त संचार बढ़े तथा शरीर में सुडौलता आने लगे, शरीर मजबूत और क्रियाशील प्रतीत होने लगे, आदि। कुल मिलाकर हम ये कह सकते है, कि जिन आसनों को करने से हमारे शरीर का विकास हो, शरीर सुंदर एवं कांतिमान प्रतीत हो, शरीर में मजबूत एवं खुला हुआ महसूस हो वही शरीर सवर्धनात्मक आसन है। इसके अर्न्तगत महर्षि घेरण्ड ने जिन आसनों का वर्णन किया है वह निम्न प्रकार के है–

1) गोमुखासन
2) धनुरासन
3) मत्स्यासन
4) मत्स्येन्द्रासन
5) पश्चिमोतानासन
6) उत्कट आसन
7) मयूरासन
8) सिंहासन
9) कुक्कुटासन
10) कूर्मासन
11) मण्डुकासन
12) उत्तान मण्डुकासन
13) वृक्षासन
14) गरूड़ासन
15) शलभासन

16) उष्टासन
17) भुजंगासन
18) उत्तानकूर्मासन
19) संकट आसन

ये आसन शरीर संवर्धानात्मक आसन कहे जाते है।

1— ध्यानात्मक आसन — जिन आसनों को करने पर मन की अवस्था स्थिर एवं एकाग्र हो जाए, किसी प्रकार की गतिशीलता उनमें न दिखाई दे, अर्थात साधक जिन आसनों में बैठकर सहजता का अनुभव करें, उन आसनों में बैठकर वह स्वयं को ध्यान को करने के लिए तैयार कर ले वही ध्यानात्मक आसन है इन आसनों के अर्न्तगत आने वाले आसन निम्नवत् है —

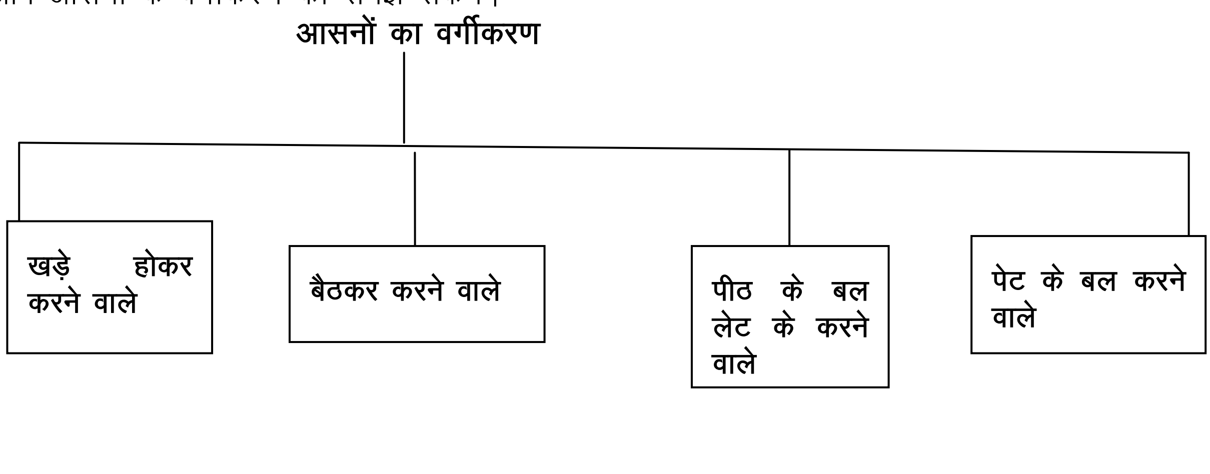
1) सिद्धासन/सिद्धयोनी आसन
2) पद्मासन
3) भद्रासन
4) मुक्तासन
5) स्वस्तिकासन

इन आसनों को घेरण्डं संहिता में ध्यानात्मक आसनों के नाम से जाना जाता है।

2— विश्रान्तिकारक या विश्रामात्मक आसन — विश्राम से तात्पर्य आराम से है अर्थात जिन आसनों को करने पर शरीर आराम का अनुभव करें, वही आसन विश्रान्तिकारक या विश्रामात्मक आसन कहे जाते है इन आसनों को करने में शरीर को किसी प्रकार का कष्ट नहीं करना पड़ता, अपितु ये आसन सभी व्यक्ति आसानी से कर सकते है जब शरीर संवर्धनात्मक आसन को करने पर आपर्थक जाते है तो विश्रामात्मक आसन में आकर ही स्वयं को सामान्य् बनाते है। इसके अर्न्तगत जिन आसनों का वर्णन है वह है यथा —

1) शवासन
2) मकरासन

ये वर्गीकरण घेरण्ड संहिता के अनुसार बताया गया है। प्रिय विद्यार्थियों आसनों के विस्तृत वर्णन को पढ़ने के बाद आप ये जान गये होंगे कि आसनों को किस प्रकार वर्गीकृत किया गया है। परन्तु इसके अलावा इसके दूसरे उपप्रकार का वर्गीकरण स्वाामी श्री सत्यानन्द सरस्वती के द्वारा भी किया गया है जो इस प्रकार है आप स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के अनुसार आप आसनों के वर्गीकरण को समझ सकेंगे।



1) खड़े होकर करने वाले आसन – खड़े होकर करने वाले आसनों से आशय उन आसनों से है जिनमें खड़े होकर आगे को झुकने वाले, पीछे को झुकने वाले, दाहिनी दिशामें मुड़ने वाले तथा बायीं दिशा में मुड़ने वाले, खड़े होकर ही ऊपर को जाने वाले इत्याादि आसन आते है ये आसन है –

i. गरूड़ासन
ii. नटराज आसन
iii. ताड़ासन
iv. तिर्यकताड़ासन
v. कटि चक्रासन
vi. पाद हस्त्ासन
vii. त्रिकोण आसन
viii. चन्द्रासन आदि

2) बैठ कर करने वाले आसन – बैठ कर करने वाले आसनों में बैठकर कमर को आगे एवं पीछे खींचने वाले अभ्यास आते है इसके अलावा भी बैठकर करने वाले अभ्यासों में ध्यानात्मक आसन भी आते है, बैठ कर करने वाले आसनों का विवरण किया जा रहा है –

i. पश्चिमोतान
ii. उष्ट्रासन
iii. सिद्धासन
iv. पद्मासन
v. बद्ध पद्मासन
vi. अर्द्धबद्ध पश्चिमोतानासन
vii. मत्स्येन्द्रासन
viii. गोमुखासन आदि

3) पीठ के बल लेटकर करने वाले आसन – पीठ के बल लेटकर करने वाले आसनों के अंतर्गत निम्न आसनों को रखा जाता है।

i. हलासन
ii. कर्णपीड़ासन
iii. सर्वागासन
iv. कन्धरासन
v. उत्तानपादासन
vi. शवासन
vii. पादांगुष्ठनासास्पर्श
viii. मरकट आसन आदि

4) पेट के बल लेटकर करने वाले आसन – पेट के बल लेटकर करने वाले आसनों में साधक को पेट के बल लेटना पड़ता है उसके बाद ही वह आसन करता है। पेट के बल लेटकर करने वाले आसनों के अंतर्गत निम्न आसन आते है –

i. भुजंगासन
ii. धनुरासन
iii. शलभासन
iv. बालासन इत्यादि

जिज्ञासु विद्यार्थियों आसनों के विस्तृत वर्गीकरण से आप समझ गए होंगे कि आसनों को किस प्रकार वर्गीकृत किया गया है, परन्तु अब आपके मन में ये प्रश्न उठ रहा होगा कि आसन करने के क्या सिद्धान्त है, तो अब आसनों के सिद्धान्तो की चर्चा करते है।

7.6 आसनों के सिद्धान्त

1. जब भी आप आसन को शुरू करें तो सर्वप्रथम एक साफ सुथरे, शीलनमुक्त, हवादार एवं प्रकाश युक्त कमरे का ही चयन करें। कमरा एकान्त स्थान पर हो तो ज्यादा अच्छा होगा। जिससे आसन को करने में एकाग्रता बनी रहेगी।
2. आसन हमेशा धीरे–धीरे एवं सहजता से शुरू करें, आसनों को करने में जल्दबाजी बिल्कुल भी न करें, आसनों को करने के क्रम में सरल अभ्यासों से कठिन अभ्यासों का ही होना चाहिए।
3. आसनों को कभी प्रतियोगिता की दृष्टि से नहीं करना चाहिए अपनी शारीरिक क्षमता के अनुसार ही अभ्यास करना चाहिए।
4. आसनों के अभ्यास के दौरान कमरे में रहे है तो वह धूप दीप इत्यादि का प्रयोग कर सकते हैं, जिससे शारीरिक स्थिति के साथ साधक की मनोस्थिति में भी परिवर्तन होता है। परंतु ध्यान रखें धूप हल्की सुगन्ध वाली ही हो।
5. आसनों को करने से यदि आपका पसीना निकल रहा है तो उसे तौलिए या रूमाल से पोछने के बजाय शरीर पर ही रगड़ ले। जिससे आपकी कोशिकाएं और अधिक क्रियाशील होंगी। यदि पसीना बहुत ज्यादा मात्रा में निकल रहा हो तो स्वच्छ एवं धुले तौलिए का प्रयोग कर सकते हैं।
6. आसनों का अभ्यास करने से पूर्व यदि षट्कर्मो (धौति, वस्ती, नेति, नौलि, त्राटक और कपाल भॉति) का अभ्यास कर लिया जाए, तो शरीर से गन्दगी बाहर निकल जाती है। जिससे आसन करने में सहजता होती है।
7. आसनों को करने के बाद प्राणायाम परम आवश्यक है। क्योंकि आसनों को करने से शरीर की बहुत अधिक ऊर्जा खर्च होती है, तो ऊर्जा को पुनः लाने के लिए हमें प्राण तत्व (आक्सीजन) की आवश्यकता होती है, जो हमें प्राणायाम को करने से प्राप्त होती है।
8. शास्त्रों में आसनों को करने का समय प्रातः काल का ही बताया गया है, इसलिए आसनों को प्रातः काल ही करें, यदि प्रातः काल के समय आसन करने में असमर्थ है तो सांय काल के समय में भी आसनों को किया जा सकता है, परन्तु ध्यान देने योग्य बात ये है कि भोजन और आसनों के क्रम में 4 से 5 घंटे का अन्तराल हो तथा सांय काल शौच के बाद ही अभ्यास करें तो स्वास्थ की दृष्टि से अच्छा रहेगा।
9. जिस समय भी आसन करते है तो इस बात को अवश्य ध्यान रखें, कि प्रत्येक आसन के बाद कुछ देर विश्राम अवश्य करें। ये आपके आसन पर निर्भर करता है कि किस श्रेणी का अभ्यास आप कर रहे है तत्पश्चात् उसी के अनुसार विश्राम करें।
10. आसनों के अभ्यास में यदि आगे झुकने वाले अभ्यास कर रहे है तो उसके बाद पीछे झुकने वाले अभ्यास भी अवश्य करें, इसके विपरीत यदि पीछे झुकने वाले अभ्यास करते है तो आगे झुकने वाला अभ्यास भी अवश्य करें।

11. अभ्यास के समय ढीले–ढाले वस्त्रों का ही प्रयोग करें और यदि सूती वस्त्रों का प्रयोग कर रहे है तो यह बहुत अच्छा रहेगा। लेकिन एक ध्यान देने योग्य बात ये भी है कि वस्त्रों को मौसम के अनुकूल ही इस्तेमाल करें।
12. आसनों को कभी भी जमीन में ऐसे ही न करें, जब भी आप आसन करें तो जमीन पर कोई कम्बल, चटाई अथवा चादर का प्रयोग अवश्य करें।
13. आसनों को करते समय कोई भी दबाव देने वाली वस्तु आपके शरीर पर न हो जैसे – अंगूठी, घड़ी, बैल्ट और बैण्ड। अन्यथा रक्त का संचार पूर्ण रूप से पूरे शरीर में नहीं हो पाएगा।
14. यदि आसनों का अभ्यास आप बहुत लोगों के साथ करते है तो इस बात का भी ध्यान रखें कि अभ्यास के दौरान आपका शरीर दूसरे व्यक्ति से न टकराए। इससे आपकी और उसकी ऊर्जा में रूपान्तरण होने लगता है, एवं आसन करने में असहजता होती है।
15. आसन करने के तुरंत बाद स्नान नहीं करना चाहिए। जब पसीना सूख जाए तत्पश्चात् आप स्नान कर सकते है।
16. आसनों के अभ्यास को खाली पेट ही करना चाहिए।
17. टी0बी0 (टेलीवीजन) या पुस्तकों में देखकर कभी भी योगाभ्यास नहीं करना चाहिए। जब भी आप अभ्यास करने जा रहे है तो किसी जानकार व्यक्ति की सलाह अवश्य ले। इसे आप आसनों को अच्छी तरह से कर पाएंगे।

जिज्ञासु पाठकों आसनों के सिद्धान्तों के विस्तृत वर्णन को अब आप समझ गए होंगे यदि आप इन सिद्धान्तों को ध्यान रखते हुए आसनों का अभ्यास शुरू करते है तो निश्चित ही आपको इनका लाभ प्राप्त होता है।

अब यह प्रश्न स्वाभाविक है कि आसनों से किस प्रकार लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रश्न के निराकरण के रूप में इनके लाभ या उपयोगिता का वर्णन बताया जा रहा है।

7.7 आसनों की उपयोगिता

आसनों का प्रभाव हमारे संपूर्ण शरीर पर सकारात्मक रूप से पड़ता है आसनों से शरीर में पड़ने वाले प्रभाव इस प्रकार बताए जा रहे है –

1. प्रातः काल यदि गुनगुने पानी के सेवन के बाद हम एक दो आसनों को तेज गति से करके मल त्याग करने के लिए जाए तो ऑते भलि–भॉति साफ हो जाती है। इससे हमारा उत्सर्जन तंत्र स्वस्थ रहता है।
2. आसनों के अभ्यास से शरीर के सभी पाचक रस पूर्ण रूप से निकलने लगते है जिससे लिए गए भोजन का पाचन भलि प्रकार होता है इससे हमारा पाचन तंत्र स्वस्थ्य रहता है।
3. आसनों के नियमित अभ्यास से मांस पेशियां लचीली बनी रहती है, अनैच्छिक पेशियों पर तो हमारा बस नहीं होता किन्तु ऐच्छिक पेशिया अपने कार्य को भलि प्रकार से करती है। जिससे हमारा मांसपेशिय संस्थान स्वस्थ्य एवं क्रियाशील रहता है।
4. कंकाल तंत्र पर भी आसनों का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आसनों को प्रतिदिन करने से अस्थियां मजबूत होती है तथा शरीर की निश्चित आकृति बनी रहती है।
5. आसनों को करने से शरीर की गति बढ़ती है जिससे हमारा हृदय तीव्र गति से कार्य करता है, इसी कारण संपूर्ण शरीर में ऊर्जा आने लगती है परन्तु जैसे ही

विश्रामात्मक आसन कराया जाता है तब शरीर स्थिर होने लगता है, जिससे हमारा हृदय की बढ़ी हुई गति सामान्य हो जाती है, और हमारा रक्त परिसंचरण तंत्र स्वस्थ होने लगता है।

6. नियमित रूप से अभ्यास करने पर सभी हार्मोन्स सही मात्रा में शरीर से निकलने लगते है जिससे आपके शरीर का विकास अच्छे से होने लगता है।
7. आसनों को करने से शरीर की गंदगियां पूर्णरूप से बाहर निकलने लगती है जैसे – पसीने एवं मूत्र का भलिभॉति बाहर आना।
8. आसनों को करने से न केवल बाहय अंग अपितु आन्तरिक अंग भी स्वस्थ्य एवं मजबूत रहते है तथा अपने कार्यों को स्वभाविक ढंग से कर पाते है।
9. शरीर में बड़ी अतिरिक्त चर्बी को भी अभ्यासों (आसन के द्वारा) के द्वारा कम किया जाता है, जिससे आपका शरीर एक स्वाभावित आकृति को प्राप्त कर सकें।
10. नियमित योगाभ्यास अर्थात आसनों के करने शरीर और मन दोनों ही स्वस्थ रहते है। जिससे आप अपने कार्यों को व्यवस्थित ढंग से करने में सक्षम होते है।
11. योगाभ्यास करने वाले व्यक्ति में सकारात्मक ऊर्जा अधिक मात्रा में दिखाई देती है। वह अपने प्रत्येक क्रिया को करके आनन्द का अनुभव करता प्रतीत होता है।
12. आसनों को नियमित करने वाले व्यक्ति सुडौल, मजबूत एवं क्रियाशील प्रतीत होते है।
13. आसनों को करने से शारीरिक क्षमता एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता दोनों ही बढ़ती है। जिससे शरीर जल्दी रोगग्रस्त नहीं होने पाता एवं स्वस्थ रहता है।
14. आसनों के प्रतिदिन अभ्यास से मनुष्य को संपूर्ण स्वास्थ्य तो प्राप्त होता है अपितु दीर्घ आयु भी प्राप्त होती है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. आसन का अर्थ होता है –
   क. खड़े होना
   ख. सोना
   ग. शरीर का निश्चित अवस्था में बैठना
   घ. कोई नहीं
2. आसनों के नियमित अभ्यास से होता है –
   क. शरीर मोटा एवं भद्दा
   ख. कमजोर
   ग. मजबूत एवं आकर्षक
   घ. सभी
3. आसनों की निश्चित संख्या का वर्णन किया गया है –
   क. हठ प्रदीपिका
   ख. रामायण
   ग. पंतजलि योग सूत्र
   घ. महाभारत
4. सामान्यतः आसनों को वर्गीकृत किया गया है –
   क. महर्षि घेरण्ड
   ख. स्वात्मा राम सूरी

ग. भगवान शिव
घ. भगवान श्री कृष्ण

7.8 सारांश

प्रिय पाठकों इस इकाई में आपने आसनों को भलिभॉति समझा एवं पढ़ा। अब आप आसनो के महत्व को समझ गए होंगे। आसनों का वर्णन पूर्व से ही विभिन्न महत्वपूर्ण ग्रंथों से चला आ रहा है और आज चिकित्सकीय पक्ष के रूप में सामान्य व्यक्ति भी अपने दैनिक जीवन में अपना रहा है। स्वात्माराम सूरी एवं महर्षि घेरण्ड से लेकर आधुनिक समय में सत्यानन्द सरस्वती एवं बाबा रामदेव भी इस पर विशेष महत्व डाल रहे है। आसनों के नियमित अभ्यास से शरीर चुस्त दुरूस्त एवं फुर्तीला बनने लगता है तथा व्यक्ति की रोग प्रति रोधक क्षमता बढ़ने लगती है।

7.9 शब्दावली

- दृढ़ता – मजबूत
- साधना – आत्म विश्लेषण या आत्म मूल्यांकन करना
- अष्टांग – आठ अंग
- प्रश्वांस – वायु को नासिका से बाहर निकालना
- समन्वय – ताल–मेल
- संवर्धन – विकास

7.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग
2. ग
3. क
4. ग
5. ग

7.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति
2. महर्षि घेरण्ड (स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती) घेरण्ड संहिता, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर बिहार
3. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)

7.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. आसन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए विविध परिभाषाओं के माध्यम से समझाइए ?
2. आसनों के सिद्धान्त व लाभ बताए ?
3. आसनों का वर्गीकरण करते हुए इसके उद्देश्यों का वर्णन कीजिए ?

इकाई– 8 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित पॉच आसनों की विधि सावधानियॉ व लाभ स्वस्तिकासन, गोमुखासन, वीरासन, कूर्मासन, कुक्कुटासन

8.1 – प्रस्तावना –

योग विद्या भारतीय संस्कृति की बहुत ही प्राचीन विधा है। जो हमें हमारे ऋषि मुनियो द्वारा प्रदान की गयी है। योग की धारा पवित्र गंगा की लहरो के समान है, जैसे गंगा मॉ अपने वेग से समस्त विषाक्त द्रव्यो एवं पदार्थो को सदा के लिए समुद्र में विलीन कर देती है, उसी तरह योग की अमृतमय धारा सम्पूर्ण शरीर के रोगों को दूर कर समग्र स्वास्थ प्रदान करती है। योग तो उस कल्प वृक्ष के समान है, जिससे साधक अपने मनोरूप इच्छा प्राप्त कर सकता है। आज योग के द्वारा अगर रोगों को समाप्त करने की बात कही जाए तो योग की सबसे महत्तपूर्ण शाखा हठयोग ही रही है। जिसमें शरीर को स्वस्थ रखने की अनेक पक्षो को बताया गया है। जिसमें सबसे महत्वपूर्ण पक्ष आसन का है। आसनो की चर्चा यदि की जाए तो अनेकानेक आसनों का वर्णन ग्रन्थों में किया गया है, किन्तु स्वात्माराम सूरी जी ने केवल 15 आसनों का वर्णन किया है। आसन देखने में जितने सहज और सरल प्रतीत होते है। उन्हें करने में उतनी ही सावधानियॉ रखनी पड़ती है। प्रिय विद्यार्थियों स्मरण रहे कि आसन की प्रत्येक विधि को भली – भांति सीखकर ही अभ्यास को प्रारम्भ करें।

8.2 उद्धेश्य

- हठयोग प्रदीपिका में वर्णित आसनों से परिचित हो सकेंगे।
- आसनों की विधि, लाभ व सावधानियों को समझ सकेंगे।
- प्रत्येक तन्त्र पर आसन किस तरह प्रभावकारी है, इससे भी भली – भांति परिचित हो सकेंगे।

- वर्तमान परिपेक्ष्य में आसन की उपयोगिता को जान सकेंगे।

8.3 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित 5 आसनों की विधि सावधानियॉ व लाभ

प्रिय विद्यार्थियों आसन शब्द तथा आसनों के बारे में आप पूर्व से भर परीचित होगें। पिछली इकाई में आपने आसन के अर्थ, परिभाषा, वर्गीकरण इत्यादि का अध्ययन किया। सम्भवतः आप आसन को अच्छी तरह समझ चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में आप हठप्रदीपिका में वर्णित आसनों की विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कर सकेंगे। हठप्रदीपिका में स्वात्माराम सूरी जी ने सिर्फ 15 आसनों का वर्णन किया है, और इन्होने इन 15 आसनों को ही महत्तवपूर्ण माना है। आसनों की संख्या प्रत्येक ग्रन्थों में अलग – अलग बतायी गयी है। इसलिए आप आसन के विषय में मतभेद न करें। प्रत्येक ग्रन्थों ने अपने अनुसार आसनों का वर्णन किया है। अब आप हठप्रदीपिका में वर्णित 5 आसनों की विधि, लाभ एवं सावधानियों का अध्ययन करेंगे।

8.3.1 – स्वस्तिकासन :–

''जानूर्वोरन्तरे सम्यक्कृतवा पादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत् प्रचक्षते।।'' – 1/19।।

अर्थात् दोनों पॉव के तलुवे को (एक दूसरे के विपरीत) घुटना और जंघा के बीच में अच्छी तरह स्थापित कर शरीर को सीधा रखकर संतुलित रूप में बैठना, इसे स्वस्तिकासन कहा जाता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम दोनों पैरो को सामने की ओर रखते हुए बैठते है।
- दोनों हाथ जंघाओ के दांए – बांए तथा कमर को सीधा रखते है।
- तत्पश्चात् दांए पैर को घुटने से मोड़ते हुए बायी पिण्डली और जंघा के मध्य इस तरह से फसाते है, कि अंगुलियां पिण्डिलियो में छिपी रहे और अंगूठा बाहर दिखता रहे।
- अब बाए पैर को भी दाए पैर के नीचे से निकालते हुए दायी जंघा और पिण्डली में ऐसे फंसाते है, कि अंगूठा बाहर से दिखाय दे।
- अब दोनों हाथ ध्यान मुद्रा में रखते हुए आंखो को सहजता से बन्द करते है और श्वास पर एकाग्रता बनाते है।
- हठ प्रदीपिका की यही विधि वर्तमान में भी प्रचलित है।

सावधानियॉ –

- साइटिका रोग से ग्रसित व्यक्तियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।
- जिन भी व्यक्तियों स्पाइनल कोर्ड (रीढ़ की हड्डी) के निचले भाग में यदि दर्द हो तब भी यह अभ्यास वर्जित है।
- जो लोग इस आसन में बैठने में सहजता महसूस नहीं करते वे लोग पहले सुखासन में ही बैठे, तत्पश्चात् इस आसन को प्रारम्भ करे।
- आसन को कभी भी जबरदस्ती करने का प्रयास न करे।
- आसन का अभ्यास कभी भी पुस्तक में पढ़कर न करे उचित मार्ग दर्शन प्राप्त होने पर ही अभ्यास को शुरू करे।

- इस आसन को करते समय एक बात का हमेशा याद रखे, कभी भी दूसरों को देखकर जबरदस्ती अभ्यास न करे, धीरे – धीरे अभ्यास की पूर्णता तक जाए।

लाभ –

- मन की एकाग्रता को बढ़ाने के लिए लाभकारी अभ्यास है।
- इस आसन के नियमित अभ्यास से रक्त का प्रवाह मेरूदण्ड की तरफ होने लगता है।
- मेरूदण्ड की स्थिरता को बनाए रखने में सहायता करता है।
- ध्यान, साधना एवं आध्यात्मिक मार्ग की प्रगति में सहायक है।
- इस आसन की नियमित रूप से करने पर सुषुम्ना द्वार अल्प काल में खुलने लगता है।

8.3.2 – गोमुखासन :–

"सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपाश्र्वे नियोजयेत्।
दक्षिणऽपि तथासव्यं गोमुखं गोमुखाकृति।।" – 1/20।।

अर्थात् दाहिनी एड़ी को कटि के वाम भाग में तथा उसी प्रकार बायें (एड़ी) को कटि के दायें भाग में रखकर गाय के मुख के समान आकृति बनाने से गोमुखासन होता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम दोनो पैरो को सामने फैलाकर कमर को सीधा करते हुए बैठते है, तथा दोनो हाथो को जंघाओं के दोनो ओर रखते है।
- अब दाए पैर को घुटने से मोड़ते हुए बांए नितम्ब के पास रखते है।
- तत्पश्चात् बांए पैर को भी घुटने से मोड़ते हुए दांए नितम्ब के पास रखते है।
- अब ये ध्यान रखेंगे कि जो पैर ऊपर है, उसी हाथ को कंधे के पीछे लेकर जाएगे, तथा जो पैर नीचे है, वह हाथ नीचे से पीछे की तरफ ले जायेगे।
- अब दोनों हाथों को परस्पर आपस में लॉक करेंगे।
- सहजता से आंखे बन्द करेंगे एवं लम्बे गहरे श्वसन करेंगे।
- अभ्यास को दोहराने के लिए यही प्रक्रिया दूसरे पैर से भी करेंगे।

नोट – वर्तमान विधि एवं पारम्परिक विधि परस्पर पूर्णतः मेल नहीं खाती है। वर्तमान विधि में हाथों को आपस में लॉक करने की बात भी कही गयी है, जो पारम्परिक विधि में नहीं है।

सावधानियॉ –

- जिन लोगों को घुटने में दर्द हो वे लोग इसका अभ्यास न करें।
- कन्धों के दर्द पीड़ित व्यक्ति बजरदस्ती हाथों को आपस में लॉक न करे, अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि की सम्भावना ज्यादा होगी।
- किताबों से पढ़कर कभी भी किसी आसन का अभ्यास न करें।
- आसनों को प्रतियोगात्मक भावना से नहीं करना चाहिए।

लाभ –

- इस आसन के अभ्यास से फेफड़ों की मांशपेशियॉ मजबूत होती है।
- जिन लोगो को लिखते समय परेशानी होती है, उन लोगों को इस आसन से बहुत लाभ मिलता है।
- ब्रोंकाइटिस और अस्थमा के रोगी को इस आसन में बैठकर लम्बे गहरे श्वसन का अभ्यास करने से फेफड़ों की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है।
- इस आसन को करने से पैरो में आया कड़ापन धीरे – धीरे खत्म होने लगता है।
- सर्वाइकल स्पोण्डोलाइटिस की प्रारम्भिक अवस्था में इस आसन को करने से रोग में आराम मिलता है।

8.3.3 – वीरासन :–

"एकं पादमथैकस्मिन् विन्यसेदूरूणि स्थिरम्।
इतरस्मिस्तथा चोरूं वीरासनमितीरितम्।।" – 1/21

अर्थात् एक पॉव को दूसरी जंघा पर तथा दूसरे पॉव को अन्य जंघा के नीचे रखने से वीरासन होता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम व्रजासन की स्थिति में बैठते है। व्रजासन में दोनो को घुटनो से मोड़कर तलवों पर नितम्बो (hips) को स्पर्श करते है।
- तत्पश्चात् दांए पैर को ऊपर उठाकर (घुटने से) दाहिने पंजे को बांए घुटने के भीतरी भाग से स्पर्श करते है।
- अब दाहिने हाथ की कोहनी को मोड़ते हुए घुटने के ऊपर रखते है, तथा दाहिनी हथेली को ठोड़ी (Chin) पर रखते है।
- बांए पैर को ब्रजासन की स्थिति में ही बाहर की ओर बांए नितम्ब से स्पर्श करते है।
- अब आंखों को सहजता से बन्द कर मन को विश्राम देते है, तथा अपनी कमर एवं गर्दन को भी एक सीध में बनाए रखते है।
- अभ्यास की पुनरावृत्ति के लिए यही प्रकिया को दूसरी ओर से भी दोहराते है।

सावधानियॉ –

- जब तक शरीर सामान्यतः जमीन पर बैठने में समर्थ नहीं है, तब तक इसका प्रयास जबरदस्ती न करें।
- जोड़ों में दर्द होने पर भी इसका अभ्यास न करें।
- कुशल मार्ग दर्शन में आसन को करे अन्यथा न करें।
- पुस्तको से पढ़कर तो बिल्कुल भी अभ्यास न करें।
- अपनी शारीरिक क्षमता के अनुसार ही आसन करें।

लाभ –

- इस को नियमित रूप से करने पर मन शान्त, सन्तुलित एवं एकाग्र होता है।
- यह अभ्यास मानसिक स्तर के साथ – साथ शारीरिक स्तर पर भी लाभ पहुॅचाता है। इसका अभ्यास यकृत, वृक्क एवं आमाशय पर भी सकारात्मक लाभ पहुॅचाता है।

- जो लोग बज्रासन करने में स्वयं को असमर्थ महसूस करते है, वे आसन को करके बज्रासन के लाभ प्राप्त कर सकते है।
- मन की उत्तेजना को शान्त करता है, तथा तन्त्रिका तन्त्र को भी क्रियान्वित करता है।
- आध्यात्मिक पथ में प्रगति के लिए एक अच्छा अभ्यास माना गया है।

8.3.4 – कूर्मासन :–

"गुदं निरूध्य गुल्फाभ्यां व्युत्क्रमेण समाहितः।
कूर्मासन भवेदेतदिति योगविदो विदुः।।" – 1/22।।

अर्थात् दोनों पावो की एड़ी पर गुदा को रखकर (एड़ी में गुदा को दबाते हुए) तथा (पावो के) अग्रभाग को बाहर की ओर फैलाकर रखना, इसे योग के जानकार कूर्मासन कहते है।

नामकरण – कूर्म से आशय कछुए से होता है, जो कि एक संस्कृत शब्द है। इस आसन में व्यक्ति विशेष की शारीरिक स्थिति कछुए के समान प्रतीत होती है। इसलिए इसे कूर्मासन कहा जाता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम दोनों पैरों को सामने फैलाकर बैठते है।
- तत्पश्चात् दोनों घुटनों को थोड़ा मोड़ते हुए हाथों को घुटनों के नीचे से बाहर निकालते है।
- अब धीरे – धीरे कमर को आगे की ओर झुकाते है, और सिर या ठोड़ी को जमीन से स्पर्श करते है।
- उसके पश्चात् दोनों हाथों को परस्पर नितम्बों से पीछे लेकर आपस में पकड़ते है। यही आसन की पूर्णता है।
- आसन से वापस आने के लिए धीरे – धीरे हाथों को खोलते है, तथा पूरक करते हुए सिर या ठोड़ी को ऊपर उठाते है।

सावधानियॉ –

- कमर में किसी भी प्रकार का दर्द हो तो आसन का अभ्यास बिल्कुल न करें।
- जब तक कमर में पूर्णतः लचीलापन न हो अभ्यास न करें।
- हार्निया रोग से पीड़ित व्यक्ति को इसका अभ्यास न करें।
- अर्थराठटिस या गठिया के रोगी को यह अभ्यास पूर्णतः वर्जित है।

लाभ –

- कूर्मासन के नियमित अभ्यास से पाचन तन्त्र पर सकारात्मक प्रभाव आता है।
- कब्ज एवं मधुमेह के रोग में भी लाभ पहॅुचता है।
- बर्हिमुखी व्यक्तित्व धीरे – धीरे स्वतः ही अर्न्तमुखी होने लगता है।
- जिन व्यक्तियों को बहुत ज्यादा गुस्सा आता है, उन लोगो को खास कर इसका अभ्यास करना चाहिए क्योंकि ये गुस्से को शान्त करता है।
- मन को नियन्त्रित करता है, तथा आत्म संयमित बनाता है।

8.3.5 – कुक्कुटासन :–

"यद्यासनं तु संस्थाप्य जानूर्वोरन्तरे करौ।
निवेश्य भूमौ संस्था वयोमस्थं कुक्कुटासनम्।।" – 1/23।।

अर्थात् पद्मासन लगाकर घुटनों और जंघाओं के बीच (अनुकूल स्थान पर) दोनों हाथों को डालकर हथेलियों को भूमि पर सुस्थिर कर (उसी के बल) शरीर को आकाश में स्थिर (पृथ्वी से ऊपर) रखने से कुक्कुटासन होता है।

नामकरण – कुक्कुटासन एक संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ होता है, मुर्गा। इस आसन में शरीरिक स्थिति मुर्गे के समान प्रतीत होती है, इसलिए इसे कुक्कुटासन कहते है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम किसी मैट के ऊपर पद्मासन लगाकर बैठते है। तत्पश्चात् दोनों हाथों को जाघों और पिण्डलियों के बीच से निकाल लेते है।
- दोनों हाथों को कोहनियों तक बाहर निकालते हुए दोनों हथेलियों को जमीन पर दृढ़ता से स्पर्श करते है।
- अब पूरक करते हुए शरीर को जमीन से कोहनियों तक ऊपर उठाते है, तथा आखों को किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित करते है।
- फिर धीरे – धीरे श्वास को छोड़ते हुए शरीर को नीचे लेकर आए।
- अभ्यास को दोहराने के लिए यही प्रक्रिया दोबारा करे।

सावधानियॉ –

- इस आसन को प्रारम्भ करने से पूर्व हथेलियों एवं कलाइयों को मजबूत करे, उसके बाद ही अभ्यास का प्रारम्भ करें। अन्यथा हानि हो सकती है।
- कुक्कुटासन करने से पूर्व शरीर के भार को कम करना भी आवश्यक है।
- जिन लोगो के पैरों में अधिक चर्बी होती है, वे लोग भी इस आसन को सरलता से नही कर सकते है। इसलिए पैरो की चर्बी को कम करें।
- जिसके हाथ या पैरों में अधिक बाल हो तो पहले उन बालों को साफ करे, उसके बाद ही अभ्यास करें, अन्यथा आसन करने पर बाल खिंच सकते है, जिससे वहॉ बहुत पीड़ा का अनुभव होता है।

लाभ –

- चंचल प्रवृति के लोगों के लिए यह आसन बहुत लाभकारी है। इससे उनके अन्दर स्थिरता का विकास होता है।
- इस आसन को करने से वक्ष प्रदेश का विकास होता है।
- फोजन सोल्डर, (कन्धों की जकड़न) तथा हृदय सम्बन्धित रोगों में लाभकारी है।
- इसको नियमित रूप से करने कलाइयॉ, तथा कन्धो में शक्ति आने लगती है।

बहुविकल्पीय प्रश्न –

(1). निम्न में से हठप्रदीपिका में वर्णित आसन है।

(क) नटराज आसन (ख) वृश्चिकासन

(ग) शलभासन (घ) उत्तानकूर्मासन

(2). निम्न आसनो में से हठप्रदीपिका में वर्णित आसन नहीं है।

(क). सिद्धासन (ख). पद्मासन

(ग). वीरासन (घ). उष्ट्रासन

(3). कूर्मासन में शारीरिक स्थिति प्रतीत होती है।

(क). बन्दर के समान (ख). कुत्ते के समान

(ग). कछुए के समान (घ). कौए के समान

(4). स्वस्तिकासन को श्रेणी में रखा जाता है।

(क). शरीर सर्वधनात्मक (ख). ध्यानात्मक

(ग). विश्रान्तिकारक (घ). उक्त में से कोई नही

रिक्त स्थानो की पूर्ति करो –

(1). शवासन को .... आसन की श्रेणी में रखा जाता है।

(2). हठप्रदीपिका में कुल .... आसन है।

(3). आसनों को .... श्रेणियो में बॉटा गया है।

(4). कुक्कुटासन में शरीरिक स्थिति .... के समान प्रतीत होती है।

सत्य एवं असत्य को चिन्हित करें –

(1). हठप्रदीपिका के महत्वपूर्ण आसन पॉच है। (.........)

(2). हठ प्रदीपिका को कुल पॉच उपदेशों में विभाजित किया गया है। (.........)

(3). महर्षि घेरण्ड के द्वारा हठ प्रदीपिका की रचना की गयी है। (.........)

(4). आसनो के नियमित अभ्यास से शरीर एवं मन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। (.........)

8.4 – सारांश –

प्रस्तुत इकाई में आपने हठप्रदीपिका में वर्णित प्रारम्भ के पॉच आसनों का अध्ययन किया। जिसके अन्तर्गत आपने आसनो की विधियों के साथ – साथ लाभ एवं सावधानियों का भी अध्ययन किया। इन आसनो में दो ध्यानात्मक तथा तीन शरीर सर्वधनात्मक आसन है।

प्रिय विद्यार्थियों आसनो की विविध क्रियाविधि का अध्ययन करने के बाद आप इस बात से भली – भॉति अवगत हो चुके होंगे कि वर्तमान युग में प्रत्येक व्यक्ति के लिए आसन कितने उपयोगी है। आसनो के नियमित अभ्यास से वे किसी प्रकार स्वयं को स्वस्थ्य रख दीर्घायु प्राप्त कर सकते है, तथा हठयोग के प्रमुख लक्ष्य यानि राजयोग की प्राप्ति कर सकते है। किन्तु किसी भी आसन को पुस्तक में पढ़कर न किया जाए तो बेहतर होगा। आसनो के प्रारम्भ में कुशल मार्ग दर्शन नितान्त आवश्यक है, तभी आसन लाभ प्रदान करते है।

पाठको इन आसनो का वर्णन आपको हठयोग के अन्य ग्रन्थों में भी मिलेगा, किन्तु संदेह की आवश्यकता नही हैं। बहुत से ऐसे आसन है, जिनका वर्णन हठयोग के अन्य ग्रन्थो में भी है। इसलिए प्रत्येक आसन की विधि को भली – भांति सीखकर ही अभ्यास को प्रारम्भ करें।

8.5 शब्दावली

- वेग – चाल
- स्वस्तिकासन – स्वस्तिक के समान शारीरिक स्थिति
- मनोरूप – मन के अनुसार
- प्राचीन – पुरानी
- स्पाइनल कोर्ड – रीढ़ की हड्डी

- कटि – कमर
- वाम – बाया
- अस्थमा – दमा
- स्पोण्डोलाइटिस – गर्दन तथा कन्धे में होने वाला रोग जिसमें हड्डियों का चिपचिपा पदार्थ समाप्त हो जाता है।
- उत्तेजना – गुस्सा या आवेश
- अग्रभाग – आगे का हिस्सा

8.6 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर –

(1). (घ) (2). (घ) (3). (ग) (4). (ख)

रिक्त प्रश्नों के उत्तर –

(1). विश्रान्तिकारक (2). 15 (3). तीन (4). मुर्गे (cock)

सत्य एवं असत्य प्रश्नों के उत्तर –

(1). असत्य (2). सत्य (3). असत्य (4). सत्य

8.7– सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

4 स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति।
5 स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।

8.8– निबन्धात्मक प्रश्न –

(1). कूर्मासन की विधि बताते हुए उसकी विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए ?
(2). हठ प्रदीपिका में वर्णित किन्ही दो आसनों की विधि, लाभ एवं सावधानियों की विवेचना कीजिए।

इकाई– 9 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित पॉच आसनों की विधि, सावधानियॉ व लाभ उत्तान कूर्मासन धनुरासन, मत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन ,मयूरासन

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने हठयोग प्रदीपिका में वर्णित स्वस्तिकासन ,गोमुखासन, वीरासन, कूर्मासन, कुक्कुटासन की विधि, लाभ एवं सावधानियों का अध्ययन किया । प्रस्तुत इकाई में आप हठप्रदीपिका में वर्णित अगले पॉच आसनो का सम्यक अध्ययन करेगें

9.2 उद्धेश्य

- उत्तान कूर्मासन की क्रियाविधि सावधानियो व लाभ का अध्ययन करेगें।
- धनुरासन की क्रियाविधि सावधानियो व लाभ का अध्ययन करेगें।
- मत्स्येन्द्रासन की क्रियाविधि सावधानियो व लाभ का अध्ययन करेगें।
- पश्चिमोत्तानासन की क्रियाविधि सावधानियो व लाभ का अध्ययन करेगें।
- मयूरासन की क्रियाविधि सावधानियो व लाभ का अध्ययन करेगें।

9.3 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित पॉच आसनों की विधि, सावधानियॉ व लाभ

जिज्ञासु विद्यार्थियों पूर्वोक्त इकाईयों में आपने आसन के अर्थ, परिभाषा, उद्धेश्य तथा प्रथम पॉच आसनों को पढ़ा, उनके प्रत्येक तथ्य जैसे नामकरण, विधि (पारम्परिक) तथा वर्तमान विधि, लाभ, सावधानी इत्यादि का विस्तृत अध्ययन किया। इस अध्ययन के पश्चात् आप इतना भली – भांति जान चुके होगे कि यदि आसन को सावधानी पूर्वक न किया जाये तो उसकी बहुत हानियॉ भी होती है।

प्रस्तुत इकाई में आप मध्य के पॉच आसनों से परिचित हो सकेंगे। इन आसनों में भी आपको प्रत्येक बिन्दुओं को पढ़ने का अवसर मिल रहा है। इसलिए आप एकाग्रचित्त हो प्रत्येक आसन को पढ़ने एवं समझने का प्रयास करें।

9.3.1– उत्तानकूर्मासन –

कुक्कुटासनबन्धस्थों दोर्भ्या सम्बध्य कन्धराम्।
शेते कूर्मवदुत्तान एतदुत्तानकूर्मकम्।। 1/24।।

अर्थात् कुक्कुटासन लगाकर दोनों हाथों से गले को पकड़कर कछुए के समान चित्त लेट जाना, इसे उत्तानकुर्मासन कहते है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम अच्छा सा पद्मासन लगा कर कमर, गर्दन को सीधे करते हुए बैठते है।
- तत्पश्चात् दोनों हाथों को पिण्डलियों तथा जाघों के मध्य से बाहर करते है कि कोहनियॉ भी पिण्डलियों से बाहर आ जाए।
- अब दोनों हाथों को कन्धों को अच्छी तरह स्पर्श करते है।
- अन्ततः कन्धों को स्पर्श करते हुए पीठ के बल लेट जाते है।
- यही वर्तमान में उत्तानकूर्मासन की विधि बतायी जाती है।

सावधनियॉ –

- उत्तानकूर्मासन थोड़े कठिन आसनों की श्रेणी में आता है, इसलिए शरीर जब पूरी तरह लचीला हो तभी अभ्यास करना चाहिए।
- पैर बहुत अधिक मोटे नहीं होने चाहिए।
- हाथ व पैरों में यदि बाल हो तो साफ कर लेने चाहिए।
- हाथों में यदि दर्द हो तब भी अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- सरल आसनों में पूर्णता आने पर ही इस आसन को प्रारम्भ करना चाहिए।
- पुस्तकों इत्यादि में पढ़कर आसनों का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ –

- इस आसन को करने से मन में एकाग्रता का विकास होता है।
- हाथों में शक्ति विकसित होती है।
- आध्यात्मिक दृष्टि से देखे तो मूलाधार चकं का जागरण होता है। जिससे कुण्डलिनी शक्ति में भी जाग्रत होने की सम्भावना रहती है।
- वक्ष प्रदेश का विकास होता हैं फेफड़ों के रोगों में भी लाभकारी है।
- बर्हिमुखी व्यक्तित्व या चंचल व्यक्तियों का इसका अभ्यास अवश्य करना चाहिए क्योंकि यह मन को शान्त करता है।

9.3.2– धनुरासन –

पादाड्.गुष्ठौ तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणावधि।
धनुराकर्षणं कुर्यात् धनुरासनमुच्येत।।1/25।।

अर्थात् पेट के बल लेट कर दोनों पावों के अंगूठों को दोनों हाथों से पकड़कर (पीठ की ओर) उन्हें कानों तक खींचकर धनुष के समान आकार दे, यह धनुरासन कहलाता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम पेट के बल जमीन पर सीधे लेट जाते है, तथा दोनों हाथों को सीधे करके जघांओ के पास रखते है।

- तत्पश्चात् ठोड़ी को जमीन से स्पर्श करते हुए दोनों हाथों को छाती के दाएं एवं बाए तरफ रखते है।
- अब दोनों पैरों को घुटनों से मोड़ते हुए नितम्बों की ओर लाते है, तथा दोनों हाथों से अंगूठों को पकड़ लेते है।
- फिर धीरे – धीरे पैर को पीठ की तरफ मोड़ते हुए कानों तक लाते है, तथा कोहनियों से हाथों को आगे कर तरफ से सीधा करते है।
- वापस आने के लिए धीरे – धीरे हाथों को घुमाते हुए पैरों को नीचे रखते है, तथा गर्दन की नीचे रखते है।
- फिर कुछ देर आंखे बन्द कर विश्राम करते है।
- दोबारा करने के लिए पुनः यही प्रक्रिया की पुनरावृत्ति करते है।

नामकरण –: धनुर अर्थात् धनुष। इस आसन को करते समय शारीरिक स्थिति धनुष के समान हो जाती है। इसलिए इस आसन को धनुरासन कहते है।

सावधनियॉ –:

- यह आसन कठिन आसनों की श्रेणी में आता है। इसलिए पहले सरल आसनों में दक्षता प्राप्त करने के बाद ही कठिन आसनों की तरफ बढ़ना चाहिए।
- गर्भवती माताओं को भी यह आसन नहीं करना चाहिए।
- जिन लोगों को आपरेशन कराये दो या तीन महीने हुए हो उन्हें भी यह अभ्यास वर्जित है।
- ऐसे कठिन अभ्यासों को पुस्तकों में पढ़कर तो बिल्कुल भी नहीं करना चाहिए।
- मासिक धर्म के दौरान भी अभ्यास को निषेध माना जाता है।
- अल्सरेटिव कोलाइटिस में भी यह आसन नहीं करना चाहिए।
- हार्निया के रोग में भी यह अभ्यास वर्जित है।

लाभ –:

- इसके नियमित अभ्यास से मेरूदण्ड में लचीलापन बड़ता है तथा मेरूदण्ड में बढ़ा हुआ कड़ापन दूर होता है।
- वक्ष प्रदेश का विकास होता है, तथा वक्ष के रोग दूर होते है।
- जो भी अभ्यासी आसन में शरीर को आगे तथा पीछे की ओर लुढ़काता है तो पाचन प्रक्रिया पूर्ण रूप व्यवस्थित होने लगती है।
- इस आसन के नियमित अभ्यास से पेट में वायु सम्बन्धित रोगों में लाभ होता है।
- मधुमेह तथा मासिक धर्म की अनिमितताओं में भी लाभकारी अभ्यास है।
- गुरू के निर्देशन में सोल्डर तथा सर्वाइकल स्पोण्डोलाइटिस में भी कराया जा सकता है।
- मेरूदण्ड में रक्त का संचार कर उन्हें स्वस्थ बनाता है।
- पेट तथा उसके ओर जमी चर्बी को हटाता है तथा साइटिका रोग में भी लाभ पहॅुचाता है।

9.3.3 – मत्स्येन्द्रासन –:

वमोरूमूलार्पित दक्षपादं जानोर्बहिर्वेष्टितवामपादम्।
प्रगृह्य तिष्ठेत् परिवर्तिताड्.गः श्रीमत्स्यनाथोदितमासनस्थात्।। 1/26।।

अर्थात् दाहिने पॉव को बायी जंघा के मूल में रखकर और बाऍ पॉव को (दाहिने) घुटने के बाहर से घेरते हुए शरीर को ऐंइन देकर मोड़े। तब विपरीत हाथों से दोनों पावों को पकड़कर स्थिर रहना चाहिए। यह श्री मत्स्येद्रनाथ का कहा हुआ आसन है।

वर्तमान प्रचलित विधि —:

- दोनों पैरो को सीधा करते हुए दोनों हाथों से जमीन को स्पर्श करते हुए दण्डासन की अवस्था में बैठते है।
- अब बाए पैर को दाहिने घुटने के नीचे से निकालते हुए दाए नितम्ब के बाहर स्थिर करते है, तथा दायं पैर को घुटने से मोड़ते हुए बाए घुटने के पास पंजे को स्थापित करते है।
- तत्पश्चात् बाए हाथ को दाये घुटने के बाहर से घूमाकर पंजे को पकड़ते है।
- उसके बाद दाये हाथ को मोड़ते हुए सिर को भी दायी तरफ मोड़ते है, तथा आखें बन्द करते है।
- इसी अभ्यास को दूसरी तरफ से करने के लिए यही प्रक्रिया को दोबारा दोहराते है।

नामकरण —: हठयोग की परम्परा के महान योगी मत्स्येन्द्रनाथ जी हमेशा इसी आसन में साधना किया करते थें उन्हीं के नाम के आधार पर ही इस आसन का नाम मत्स्येन्द्रासन कहा जाता है।

सावधनियॉ —:

- पेप्टिक अल्सर तथा हर्निया के रोगी को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- जिन भी व्यक्तियो को थायराइड की समस्या है उन्हें भी यह आसन नहीं करना चाहिए।
- ह्रदय रोग से पीड़ित व्यक्ति को भी यह आसन नही करना चाहिए।
- मासिकधर्म के दौरान भी अभ्यास को निषेध माना गया हैं
- गर्भवती स्त्रियों को भी यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- जिन व्यक्तियों की शल्य चिकित्सा हुयी हो उन्हें भी यह आसन नहीं करना चाहिए।

लाभ —:

- जिन व्यक्तियों को मधुमेह रोग हो जाता है, अर्थात् इन्सुलिन का स्त्राण बन्द हो जाए तो इस आसन का नियमित अभ्यास करने से रोग में आराम मिलता हैं।
- पाचन संस्थान को स्वस्थ बनाता है, तथा पाचन से सभी स्त्रावों का नियमन करता हैं।
- कमर दर्द को भी दूर करने में सहायक है।
- पीलिया के रोग में यह अभ्यास उपयुक्त माना गया है।
- मेरूदण्ड को लचीलापन प्रदान कर समस्त जकड़न को दूर करता है।
- इस आसन को करने से वृक्कों की क्रियाशीलता बड़ती है, तथा मूत्राशय सम्बन्धी रोग भी दूर होते है।

- स्लिपडिस्क इत्यादि हो जाने पर उचित निर्देशन में किया जा सकता है।

9.3.4 – पश्चिमोतानासन –:

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ दौभ्या पदाग्रद्वितयं गृहीत्वा।
जानूपरिन्यस्तललाटदेशो वसेदिदं पश्चिमतानमाहुः।। 1/28।।

अर्थात् दोनों पावों को भूमि पर दण्ड के समान फैला कर हाथों से दोनों अंगूठों को पकड़कर घुटनों पर मस्तक लगाकर रखने से पश्चिमोतान आसन कहलाता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम दोनों पैरों को सामने के ओर सीधे फैलाते है, तथा हाथों को जंघाओं के दायी तथा बांयी ओर रखते हुए सीधे बैठते है।
- उसके बाद श्वास को अन्दर भरते हुए दोनों हाथों को कानो से स्पर्श करते हुए सीधा करते है।
- तत्पश्चात् श्वास को बाहर निकालते हुए धीरे कमर को आगे की ओर इतना झुकाते है कि माथा घुटनो से स्पर्श करने लगे उसी समय दोनों हाथों से पैरों के अंगूठे को पकड़ लेते है।
- हाथ व सिर का स्पर्श होना चाहिए कि कोहनियॉ भी जमीन से स्पर्श कर जाए।
- इसी आसन को वर्तमान में पश्चिमोतान आसन कहा जाता है।
- वापस आते समय धीरे – धीरे हाथों को ढीला छोड़े श्वास को लेते हुए दोनो हाथों को ऊपर करे तथा श्वास छोड़ते हुए दोनो हाथों को नितम्ब के पीछे रखकर शरीर को ढीला छोड़ दें। आखों को बन्द कर विश्राम करे।
- दोबारा करने क लिए यही प्रक्रिया को दोहराए।

नामकरण –: पश्चिमोत्तान अर्थात् पीछे के भाग को खींचना। इस आसन को करते समय पश्च भाग को आगे की ओर तानते है इसलिए इस आसन को पश्चिमोतान आसन कहते है।

सावधानियॉ –:

- आसन को प्रारम्भ करते समय अभ्यास को सहजता पूर्वक करना चाहिए।
- कमर दर्द, स्लीप डिस्क, सर्वाइकल तथा माइग्रेन के रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिए।
- उच्च रक्तचाप से ग्रसित तथा हृदय रागियों को भी इसका अभ्यास नही करना चाहिए।
- हार्निया तथा आपरेशन (छः माह के अन्दर) वाले व्यक्तियों को भी अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- शुरूवाती दिनों में आसन जितना लगता है उसी पर रूकना चाहिए तथा धीरे – धीरे अभ्यास की पूर्णता तक जाना चाहिए।
- यह थोड़े कठिन आसनों की श्रेणी में आता है तो उचित मार्गदर्शन में ही अभ्यास करना चाहिए।
- सोल्डर स्पोण्डोलाइटिस होने पर भी अभ्यास को रोक देना चाहिए।

लाभ –:

- पेट तथा पेट के आस – पास की चब्री को कम कर, पेट को निश्चित आकार प्रदान करता है।
- नियमित रूप से इस आसन को करने से मेरूदण्ड में लचीलापन बना रहता है, तथा मेरूदण्ड सम्बन्धित रोग नहीं होते।
- बच्चो के पेट में जो कृमि होते है, उन्हें नष्ट करने में लाभकारी है।
- पाचन प्रक्रिया सुचारू रूप से चलती रहती है।
- ऐसा भी कहा जाता है जो लोग इसका नियमित अभ्यास करते है, उनका शरीर फूल की पंखुड़ियों की भांति कोमल रहता है, तथा चेहरे पर तेज बना रहता है।
- पैरों की मांशपेशियों को भी लचीला बनाता है।

9.3.5 – मयूरासन –:

धरामवष्टभ्य करद्वयेन तत्कूर्परस्थापितनाभिपाश्र्वः।
उच्चासनो दण्डवदुत्थितः खे मायूरमेतत् प्रवदन्ति पीठम्।। 1/30।।

अर्थात् दोनों हाथों को भूमि पर अच्छी तरह स्थापित कर और दोनों कोहनियों को नाभि के दोनों ओर लगाकर दण्ड के समान अधर में उठने को मयूर आसन कहते है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम कम्बल या दरी को बिछाकर वज्रासन में बैठेगे।
- तत्पश्चात् आखों को सहजता से बन्द कर धीरे – धीरे श्वास पूरक एवं रेचक करते हुए शरीर को स्वस्थ बनाते है।
- अब दोनों पैरों को पीछे से सीधा करते हुए दण्डासन की अवस्था में आते है।
- अब दोनों कोहनियों को नाभि के दायी एवं बायी ओर स्थिर करते हुए धीरे – धीरे शरीर को ऊपर उठाते हुए दोनों पैरों को बिल्कुल सीधा करते है।
- पैरों को सीधा करने के बाद नजरो के किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित करते है, तथा थोड़ी देर आसन को स्थिर करते है।
- अभ्यास को दोहराने के लिए यही प्रक्रिया को दोबारा करते है।
- वापस आने के लिए धीरे – धीरे दोनों पैरों को नीचे लाते है और आंखे बन्द कर वज्रासन या दण्डासन में विश्राम करते है।

सावधनियॉं –:

- हार्निया के रोग मे यह आसन नहीं करना चाहिए।
- बहुत ज्यादा कमजोर व्यक्तियो को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- जिस भी व्यक्ति को इसका अभ्यास करना हो, तो अभ्यास के प्रारम्भ से आगे तकिए का प्रयोग कर आसन करे, अन्यथा चोट लग सकती है।
- ये थोड़ा कठिन सन्तुलन का अभ्यास है, इसलिए पहले सन्तुलन के सरल अभ्यास में पूर्णता प्राप्त कर ले, फिर इसे शुरू करे।
- माताओं (लड़कियों) बहनों को इस आसन को करने का निषेध बताया है।
- अल्सर के रोगियो को भी यह अभ्यास नहीं करन चाहिए।

लाभ –:

- ऐसा कहा जाता है कि जो भी व्यक्ति इस आसन को सिद्ध कर लेता है उसे विष का भी कोई असर नहीं होता।
- इस आसन के नियमित अभ्यास से जठराग्नि प्रदीप्त होती हैं
- प्रतिदिन आसन को करने से मुखमण्डल दिव्य आभा से युक्त होने लगता हैं
- मन की एकाग्रता बढ़ने लगती है।
- हाथों की मांसपेशियॉ मजबूत एवं सुडौल होने लगती है।
- शरीर सन्तुलन की अवस्था को प्राप्त करता है।

अभ्यास प्रश्न–

1. किस आसन को करने से शारीरिक स्थिति कछुए के समान हो जाती है।
2. किसी एक ध्यानात्मक आसन का नाम लिखिए।
3. मधुमेय के रोगियों के लिए सर्वाधिक उपयोगी कौन सा आसन है।
4. हार्नियॉ रोग का सम्बन्ध आहार नाल के किस भाग से है।

9.4 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों वर्तमान में हठयोग के ग्रन्थों को पढ़ा जा रहा है, परन्तु प्रस्तुत इकाई में आप हठयोग के महत्तवपूर्ण ग्रन्थ हठप्रदीपिका के आसनों का अध्ययन कर रहे है। जिन्होने मात्र 15 आसनो का ही वर्णन किया है। परन्तु आप सभी को प्रत्येक इकाइयों में 5–5 करके प्रत्येक आसनों से आसनों का विवरण दिया जा रहा है।

9.5 शब्दावली

- वेग – चाल
- मनोरूप – मन के अनुसार
- प्राचीन – पुरानी
- कटि – कमर
- उत्तेजना – गुस्सा या आवेश
- अग्रभाग – आगे का हिस्सा
- पूरक – श्वास लेना
- रेचक – श्वास छोडना
- कुम्भक–श्वास रोकना
- माइग्रेन–सर दर्द

9.6 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.कूर्मासन 2. पदमासन 3.मत्स्येन्द्रासन 4.ऑत (छोटी ऑत)

9.7 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6 स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति।
7 स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।

9.8 – निबंधात्मक प्रश्न

(1) पदमासन की विधि बताते हुए उसकी विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए ?
(2) पश्चिमोतान आसन की विधि बताते हुए उसकी विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए ?

इकाई – 10 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित पॉच आसनों की विधि, सावधानियॉ व लाभ शवासन, सिद्धासन , पद्मासन , सिंहासन, भद्रासन

10.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने हठयोग प्रदीपिका में वर्णित उत्तान कूर्मासन धनुरासन, मत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन की विधि, लाभ एवं सावधानियों का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप हठप्रदीपिका में वर्णित शवासन, सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन, भद्रासन का सम्यक अध्ययन करेगें।

10.2 उद्धेश्य

- प्रस्तुत इकाई में आप हठयोग की अवधारणा को समझ सकेंगे।
- हठयोग के अन्य ग्रन्थों में भी आप इन आसनों का अध्ययन कर सकेंगे।
- घेरण्ड संहिता में आप इन आसनो का विस्तृत रूप से विवरण प्राप्त कर सकेंगे।
- आसनों से प्राप्त होने वाले अनेकानेक लाभों से लाभान्वित हो सकेंगे।
- घेरण्ड संहिता तथा हठ प्रदीपिका में आसनों की विधि में अन्तर जान सकेंगे।

10.3 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित पॉच आसनों की विधि, सावधानियॉ व लाभ

जिज्ञासु विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई में आप हठप्रदीपिका के अन्तिम पॉच आसनों का अध्ययन करेंगें सामान्यतः हठप्रदीपिका में प्रथम, मध्यम तथा अधम कोटि में आसनों को वर्गीकृत नहीं किया गया है, किन्तु ये 15 आसनो का वर्णन तीन इकाइयों में किया गया है। इसीलिए आपको समझाने मात्र के माध्यम से (अन्तिम शब्द) ये शब्द (प्रथम, द्वितीय माध्यम) का प्रयोग किया जा रहा है। ये पॉच आसनों में एक विश्रामात्मक, तीन ध्यानात्मक तथा एक शरीर संवर्धानात्मक आसन है। प्रिय विद्यार्थियों जिनका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है –

10.3.1 – शवासन –: हठप्रदीपिका के अनुसार विधि –:

उत्तानं शववद्भूमौ शयनं तच्छवासनम्।

शवासनं श्रान्तिहरं चित्तविश्रान्तिकारकम्।।1/32।।

अर्थात् भूमि पर शव के समान चित्त लेट जाना शवासन है। शवासन थकान को मिटाता है, और मानसिक शान्ति प्रदान करता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम किसी मैट या चटाई इत्यादि के ऊपर पीठ के बल चित्त होकर सहजता पूर्वक लेट जाते है।
- अब दोनों हाथों तथा दोनों पैरों को शरीर से थोड़ी दूरी पर रखते है, जिसमें हथेलियॉ जमीन से स्पर्श करती हुयी आसमान की तरफ अधखुली अवस्था में रहती है, तथा पैरों में एड़िया अन्दर और पंजे बाहर की ओर खुले रहते है।
- धीरे – धीरे आंखो को सहजता से बन्द करते है, तथा अपनी एकाग्रता श्वासों पर केन्द्रित करते है।
- तत्पश्चात् एकाग्रता श्वासों से हटाकर धीरे – धीरे शरीर पर लाते है, और अनुभव करते है कि शरीर पूरी तरह शान्त हो रहा है।
- अन्ततः वापस आने के लिए धीरे – धीरे पुनः लम्बी गहरी श्वास लेते है, तथा शरीर को हिलाते हैं। दोनों हथेलियों आपस में रगड़कर आखों पर लगाते है, धीरे – धीरे आंखे खोल देते है।

नामकरण –: शव अर्थात् dead या मृत आसन अवस्था या स्थिति । इस आसन में शारीरिक स्थिति मृत शरीर के समान प्रतीत होती है, इसलिए इसे शवासन कहा जाता है।

सावधानियॉ –:

- शवासन को करते समय ये ध्यान रखना आवश्यक है कि इस आसन को भी अकेले नहीं करना चाहिए। क्योंकि कई बार आसन करते – करते साधक बहुत अन्दर चला जाता है।
- इस आसन में सोना नहीं चाहिए, केवल विश्राम करना चाहिए।
- शरीर पर किसी भी प्रकार का तनाव नहीं लेना चाहिए।

लाभ –:

- हृदय रोग तथा उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्ति को इसका अभ्यास दो या तीन बार करना चाहिए।
- तन्त्रिका तन्त्र को स्वस्थ बना कर, तनाव तथा अनिद्रा इत्यादि रोगों को दूर करता है।
- उत्तेजना बढ़ जाने पर भी इस आसन को करने से शरीर एवं मन शान्त होता है।
- मधुमेह एवं तन्त्रिका तन्त्र से सम्बन्धित रोगों में भी इसके सकारात्मक प्रभाव आते है।

10.3.2 – सिद्धासन –:

योनिस्थानकड्.घ्रिमूलघटितं कृत्वां दृढ़ं विन्यसेत्
मेढ्रे पादमथकमैव हृदये कृत्वा हनुं सुस्थिम्।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्येद् भ्रुवोरन्तरम्
ह्येतन्मोक्षकपातभेदजनकं सिद्धासनं प्रोच्यते।।1/35।।

अर्थात् एक पॉव की एड़ी को सीवनी में अच्छी तरह लगाकर और दूसरे पॉव को शिश्न के ऊपर दृढ़ता से रखें, चिबुक को हृदय प्रदेश पर अच्छी तरह स्थापित कर, इन्द्रिय को संयमित कर तथा भ्रूमध्य दृष्टि होकर निश्चल रहना चाहिए। मोक्ष द्वार का भेदन करने वाला अर्थात् मोक्ष प्रदान करने वाला यह सिद्धासन कहलाता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम पैरों को सीधा रखते हुए दोनों हाथों को जंघा के दाएं एवं बायी तरफ रखते है।
- तत्पश्चात् बाये पैर को घुटने से मोड़ते हुए एड़ी को योनि के मध्य स्थापित करते है।
- उसके बाद दाये पैर को घुटने से मोड़ बाएं टखने पर इस प्रकार रखते है कि दोनों एड़ियां एक दूसरे के ऊपर रहे।
- तत्पश्चात् दोनों पैरों की अंगुलियों को दोनों जंघाओं और पिण्डलियों में इस प्रकार फिक्स करते है कि दोनो अंगूठे थोड़े बाहर को दिखायी दे।
- वर्तमान में यही सिद्धासन कहा जाता हैं।

नामकरण –इस आसन को करने से सिद्धी प्राप्त होती है साधक की समाधि शीघ्र लगती है इसलिए इस आसन का नाम सिद्धासन रखा गया।

सावधानियॉ –:

- जिन लोगो के पैर में दर्द हो उन्हें इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- साइटिका रोग से ग्रसित व्यक्तियो को भी सिद्धासन का अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- रीढ़ की हड्डी के निचले हिस्से में दर्द होने पर भी इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए।
- पैर में सूजन हो या खुली चोट में भी अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- सिद्धासन शुरू करने से पूर्व सूक्ष्म अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

लाभ –:

- इस आसन को नियमित रूप से करने पर रीढ़ की हड्डी सीधी रहती हैं।
- सिद्धासन का अभ्यास रक्तचाप को सन्तुलित रखता है।
- इस अभ्यास को नियमित करने पर मन नियन्त्रित होने लगता है।
- महिलाओं के लिए आवश्यक है, श्वेत प्रदर सम्बन्धित परेशानियों को दूर करता है।

10.3.3 – पद्मासन –:

वमोरूपारि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा
छक्षोरूपरि, पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढ़म्।
अड्.गुष्ठौ, हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेत्
एतद्त्याधिविनशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते।।1/44।।

अर्थात् बायी जंघा के ऊपर दाहिना पॉव तथा दाहिनी जंघा के ऊपर बांया पॉव स्थापित कर, दोनों हाथों को पीछे की ओर ले जाकर दाहिने हाथ से दांये अंगूठे को तथा बांये हाथ से बांये अंगूठे को दृढ़ता से पकड़कर, पश्चात् हृदय प्रदेश पर ठुड्डी को लगाकर

नासाग्रदृष्टि रखने से पद्मासन होता है। योगियों के द्वारा कथित यह पद्मासन सभी रोगो को नष्ट करने वाला होता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम दोनो पैरों को सीधा करते हुए दण्डासन में बैठते है
- तत्पश्चात् दांए हाथ से बाए पैर को ऊपर उठाकर दायी जंघा पर रखते है।
- उसके बाद बाए हाथ से दाए पैर के ऊपर उठाकर बायी जंघा पर रखते है।
- अब दोनों हाथ ध्यान मुद्रा में रखते हुए घुटने पर रखते है, तथा आंखे सहजता से बन्द करते है।
- वर्तमान विधि के अनुसार यही पद्मासन हैं।

विशेष –: हठप्रदीपिका में जिस पद्मासन का वर्णन किया है, उसे वर्तमान में बद्ध पद्मासन के नाम से जाना जाता है।

नामकरण –: पदम एक संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ है कमल। इस आसन में शारीरिक स्थिति कमल के फूल के समान प्रतीत होती है, इसलिए इसे पद्मासन के नाम से जाना जाता है।

सावधानियॉ –:

- जब तक पैर पूरे तरह लचीले न हो तब तक पद्मासन का अभ्यास नहीं करना चाहिए। पैरो को लचीला बनाने के लिए पूर्ण तितली आसन का अभ्यास नियमित रूप से करना चाहिए।
- जो लोग साइटिका के रोग से ग्रसित होते है उनके लिए आसन वर्जित है।
- घुटने के दर्द से पीड़ित व्यक्ति को यह अभ्यास बिल्कुल नहीं करना चाहिए।
- रीढ़ की हड्डी के निचले हिस्से में दर्द हो तब भी यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ –:

- इस आसन के नियमित अभ्यास से मन में एकाग्रता का विकास होता है।
- पद्मासन का नियमित रूप से अभ्यास करने पर जठराग्नि प्रदीप्त होती है।
- इस आसन के नियमित अभ्यास से उच्च रक्तचाप भी घटने लगता है।
- ध्यान के लिए अच्छा अभ्यास माना गया है इसके नियमित अभ्यास से धारणा की प्रक्रिया बढ़ जाती है। धारणा की पूर्णता ही ध्यान की आरम्भावस्था होती है।

10.3.4 – सिंहासन –:

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत्।
दक्षिणे सव्यगुल्फं तु दक्षगुल्फं तु सव्यके।।1/50।।

अर्थात् दोनों एड़ी अण्डकोष के नीचे सीवनी के दोनों और बांयी एड़ी को दक्षिण पार्श्व में, तथा दांयी एड़ी को वाम पार्श्व में लगायें।

हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य स्वाङ्.गुली सम्प्रसार्य च।
व्यात्तवक्त्रो निरीक्षेत् नासाग्रं तु समाहितः।।1/51।।

(और तब) दोनों हाथों को घुटनों पर रखकर सभी अंगुलियों को फैलाये, मुख को चौड़ा खेलकर गासाग्रदृष्टि रखते हुए अच्छी प्रकार स्थिर रहें।

सिंहासनं भवेदेतत् पूजितं योगिपुङ्.गवैः।

बन्धत्रितयसंधानं कुरूते चासनोत्तमम्।।1/52।।

अर्थात् श्रेष्ठ योगियों द्वारा पूजित यह सिंहासन कहलाता है। आसनों में उत्तम यह आसन तीन बन्धों को सरल बनाता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम दोनों घुटनों को मोड़ते हुए बज्रासन में बैठते है।
- तत्पश्चात् दोनों घुटनों में 40 से 45 सेमी0 की दूरी बनाते है।
- अब दोनों हथेलियों को जमीन से स्पर्श कराते हुए दोनों पैरों क मध्य रखते है, तथा इससे अंगुलियां शरीर की ओर रहे।
- इसके बाद गर्दन को थोड़ा ऊपर करते है मानो छत को देख रहे हो और दृष्टि को भूमध्य पर केन्द्रित करते है।
- अब लम्बा गहरा पूरक करते है तथा रेचक सिंह (lion) के समान गर्जते हुए करते है तथा जीभ बाहर निकालते है।
- उसके बाद जीह्वा को अन्दर कर पुनः करते है और इस प्रक्रिया को दोहराते है।
- वर्तमान में यही विधि सिंहासन की करायी जा रही है।

नामकरण –: सिंह, शेर को संस्कृत भाषा में कहा जाता है। इस आसन में सिंह के समान गर्जना होती है, इसलिए इसे सिंहासन कहा जाता है।

सावधानियॉ –:

- जो भी लोग वात रोग से ग्रसित हो उन्हे इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। क्योंकि इस आसन को बज्रासन में बैठकर किया जाता है। जो घुटने में दर्द को बड़ा सकता है।
- यदि गले का आपरेशन हुआ हो तो उन्हें भी यह अभ्यास वर्जित है।
- बर्हिमुखी व्यक्तित्व के व्यक्ति को भी ये अभ्यास नहीं करना चाहिए।

लाभ –:

- जिन लोगों में बोलने से परेशानी होती है या जो लोग हकलाते या तुतलाते हो उनको यह आसन नियमित रूप से करने पर लाभ मिलता है।
- सिंहासन का नियमित अभ्यास स्वर को मधुर बनाता है।
- अर्न्तमुखी व्यक्तित्व के लोगों का सिंहासन जरूर करना चाहिए जिससे उनका व्यक्तित्व का विकास हो सके।
- जो लोग बचपन से ही सिंहासन का अभ्यास करते है उन्हें गले सम्बन्धी रोग जैसे टांसिलाटिस, आवाज का मोटा होना या स्वर भारी होना आदि समस्याएॅ नही होती है।

10.3.5 – भद्रासन –:

गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पाश्र्र्वयोः क्षिपेत्।
सव्यगुल्फं तथा सव्ये दक्षगुल्फं तु दक्षिणे।। 1/53।।
पार्श्वपादौ व पाणिभ्यां दृढं बद्ध्वा सुनिश्चलम्।
गोरक्षसनमित्याहुरिंद वै सिद्धयोगिनः।1/54।।

अर्थात् दोनों एड़ियों को अण्डकोष के नीचे सीवनी के पार्श्व में रखें। बायी एड़ी को सीवनी के वाम भाग में तथा दायीं एड़ी को सीवनी के दाहिने भाग में रखकर दोनों पावों के अग्रभाग को अच्छी प्रकार से पकड़कर स्थिर रहें। यही सभी व्याधियों को नाश करने वाला भद्रासन है। सिद्ध योगी इसी को गोरक्षासन कहते है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम कमर गर्दन को सीधा रखते हुए दोनों पैरो को सीधे करके बैठते है।
- अब बाये पैर को घुटने से मोड़ते हुए सीवनी के पास रखते है, तथा दांए पैर को भी मोड़ते हुए सीवनी के पास रखते है।
- अब दोनों तलवों को आपस में मिलाते हुए दोनों हाथो से लॉक करते है।
- कमर गर्दन बिल्कुल सीधी रखते हुए आंखों को बन्द करते है।

नोट –: प्रिय विद्यार्थियों घेरण्ड संहिता में गोरक्षासन की दो विधियां बतायी गयी है जिनमें से एक हठप्रदीपिका से मिलती है और एक अन्य है। हठप्रदीपिका में इसे गोरक्षासन भी कहा गया है।

सावधानियॉ –:

- इस आसन को नियमित रूप से करने पर आध्यात्मिक उन्नति होती है।
- यह एक ध्यानात्मक आसन है जो ध्यान के लिए उत्तम माना गया है।
- मन को शान्त करने के लिए इस आसन को अवश्य करना चाहिए।
- इस आसन को यहि बज्रासन वाली विधि से किया जाए तो जठराग्नि को भी प्रदीप्त करता हैं।

लाभः–

- सामान्यतः इस आसन को सभी लोग कर सकते है परन्तु जिन लोगों को घुटने में सूजन या दर्द हो उन्हें यह अभ्यास नही करना चाहिए।
- पुस्तको से पढ़कर अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- यह थोड़ा कठिन ध्यानात्मक आसन है इसलिए शुरू में सरल ध्यानात्मक आसन से ही करने चाहिए।
- साइटिका रोग से पीड़ित व्यक्ति को इसका अभ्यास नही करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न –:

- **एक शब्द में उत्तर दीजिए –**

(क) शवासन को किस श्रेणी में रखा गया है।
(ख) सिद्धासन आसन की किस श्रेणी में आता हैं।
(ग) सिंहासन का अर्थ है।

- **बहुविकल्पीय प्रश्न–**

(क) सिंहासन का सर्वाधिक लाभ उक्त में ज्यादा आता है।
(अ) थायराइड (ब) मधुमेह
(स) अल्सर (द) उच्च रक्तचाप
(ख) पदम से आशय है –
(अ) कमल से (ब) बेला से

(स) गेंदा से (द) उक्त में कुछ नहीं

(ग) उक्त में से ध्यानात्मक आसन है –

(अ) सिंहासन (ब) पद्मासन

(स) सर्वांगाासन (द) उक्त में कोई नहीं

(घ) उक्त में से शरीर संबर्धानात्मक आसन है –

(अ) पद्मासन (ब) सिंहासन

(स) भद्रासन (द) सिद्धासन

10.4 – सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने शवासन, सिद्धासन, पदमासन, सिंहासन तथा भद्रासन की क्रियाविधि लाभ व सावधानियों का अध्ययन किया। शारीरिक के साथ–साथ आध्यात्मिक स्वास्थ्य की दृष्टि से ,सिद्धासन, पदमासन तथा भद्रासन बेहद महत्वपूर्ण है।शवासन को विश्रान्तिकारक आसनों की श्रेणी में रखा है। विविध आसनों को करने के बाद शवासन में आराम जरूर करना चाहिए।

10.5 – शब्दावली

- शवासन – मृत शरीर के समान शारीरिक स्थिति
- पद्मासन – कमल के समान शारीरिक स्थिति
- सिंहासन – शेर के समान शारीरिक स्थिति
- विश्रान्ति– आराम
- पार्श्व–बगल
- पूरक–श्वास लेना
- रेचक–श्वास छोडना
- प्रदीप्त–जलाना

10.6– अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

एक शब्द में उत्तर दीजिए –

क–विश्रान्तिकारक आसन **ख–**ध्यानात्मक आसन **ग**–सिंह अर्थात् शेर के समान

बहुविकल्पीय प्रश्न–

क–अ ख–अ ग–ब घ–ब

10.7 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8. स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति।
9. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।

10.8– निबन्धात्मक प्रश्न

(1) पद्मासन की विधि बताते हुए उसकी विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए ?

(2) शवासन की विधि बताते हुए उसकी विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए ?

(3) निम्न आसनों के लाभ व सावधानियों पर एक टिप्पणी लिखिए।

क–भद्रासन ख–सिंहासन

इकाई– 11 प्राणायाम – अर्थ, परिभाषा, उद्धेश्य, प्राणायामो का वर्गीकरण

11.1 – प्रस्तावना
11.2 – उद्धेश्य
11.3 – प्राणायाम का अर्थ एवं परिभाषायें
11.4 – प्राणायामों का वर्गीकरण
11.5 – सारॉश
11.6 – शब्दावली
11.7 – अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
11.8 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.9 – निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

भारतीय चिन्तन प्रायः मनुष्य एवं ब्रह्ममाण्ड दोनों ही विषयो पर अपनी खोज करता रहता हैं, कि मनुष्य को ब्रह्ममाण्ड में चलने वाली ऐसी कौन सी शक्ति है। जो प्रत्येक कार्य को करने की सामर्थ्य उसके अन्दर जाग्रत करती है। वह शक्ति यदि उसमें विद्यमान है तो उसके जीवित होने का संकेत देती है और यदि नही होती तो उसको मृत मान लिया जाता।

इन दोनों विषयों पर विशेष चिन्तन के बाद एक शब्द प्रस्फुटित होता है, वह हैं ''प्राण''। प्राण एक ऐसी शक्ति है जो मनुष्य एवं ब्रह्ममाण्ड दोनों का ही संचालन करती है। प्राण तत्व जब सम्पूर्ण शरीर में विस्तृत होने लगता है तब उसे प्राणायाम की संज्ञा दी जाती है।

जिज्ञासु पाठको प्रस्तुत इकाई में आप प्राणायाम के अर्थ, परिभाषा एवं उसके प्रकारो का अध्ययन कर सकेंगे।

11.2 – उद्धेश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

- प्राणायाम के अर्थ को भलीभॉति समझ सकेंगे।
- विभिन्न परिभाषाओ के द्वारा प्राणायाम को जान सकेंगे।
- प्राणायामों के प्रकारो का अध्ययन कर सकेंगे।
- प्राणायामों के उद्धेश्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- विभिन्न प्रकार के प्राणायामों का विश्लेषण कर सकेंगे।

11.3 – प्राणायाम का अर्थ एवं परिभाषायें

प्राणायाम शब्द का शाब्दिक विश्लेषण कर उसकी उत्पत्ति की जाए तो दो शब्द प्रतीत होते है – प्राण + आयाम। प्राण अर्थात् ऊर्जा, शक्ति, सूक्ष्म ध्वनि तथा आयाम अर्थात् विस्तारित होना, लम्बायमान होना। मनुष्य के शरीर में प्रत्येक क्रिया को पूरित करने की शक्ति जिस तत्व से आती है वही प्राणायाम है। प्राणायाम वायु को अन्दर लेने और बाहर निकालने की क्रिया मात्र नही है अपितु ये तो वायु का वह शुद्ध सात्विक एवं पवित्र अंश है, जिससे प्रत्येक प्राणी का जीवन निर्भर है। जिस तरह स्थूल शरीर को स्वस्थ रखने के लिए विभिन्न

प्रकार की साग सब्जियां, फल इत्यादि का सेवन करते है, तभी वह स्वस्थ रहता है, उसी प्रकार आत्म शरीर या सूक्ष्म शरीर को बनाए रखने के लिए जिस तत्व की आवश्यकता होती है, वह प्राण है। जिसको शरीर में विस्तारित करने के बाद प्राण शब्द को प्राणायाम नामक संज्ञा से सुसज्जित किया जाता है।

- प्राणायाम को परिभाषित करते हुए महर्षि पतंजलि कहते है –

''तस्मिन सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।'' – 2/49

अर्थात् उस आसन की सिद्धि होने के बाद श्वास और प्रश्वास की गति का रूक जाना प्राणायाम है। इस परिभाषा में महर्षि पतंजलि कहना चाहते है कि यदि प्राण तत्व को शरीर में विस्तारित करना है, तो सर्वप्रथम आसन की सिद्धि करने का प्रयास करे, और जब साधक का आसन सिद्धि हो जाए तत्पश्चात् श्वास और प्रश्वास पर एकाग्र होकर प्राणायाम का अभ्यास करें। जिस तरह स्थूल शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए आसन का अभ्यास उपयुक्त है, ठीक उसी प्रकार मन को संयमित करने के लिए प्राणायाम का अभ्यास नितान्त आवश्यक है।

- जाबालदर्शनोपनिषद में प्राणायाम की तीनो विधियो को बताया गया है – ''रेचक, कुम्भक, पूरक इन तीनो के द्वारा जो प्राण सन्तुलित होता है, वही प्राणायाम है।

''जबालदर्शनोपनिषद'' में प्राणायाम की तीन विधियां बतायी गयी है। जिसमें पूरक शब्द से आशय वायु के शुद्ध तत्व अर्थात् प्राण को अन्दर लेने से है। रेचक शब्द का अर्थ नकारात्मक या अशुद्ध वायु को बाहर निकालने से है, तथा जब इन दोनो क्रियाये अपनी जगह स्थिर कर दिया जाए तो यही कुम्भक के नाम से जाना जाता है। वैसे तो प्राणायाम के सम्बन्ध में अनेकानेक परिभाषाए है किन्तु यदि तेजबिन्दु उपनिषद पर दृष्टिपात करे तो यह परिभाषा प्रस्तुत होती है।

- ''सभी प्रकार की वृत्तियो का निरोध करना ही प्राणायाम है।''

अर्थात्, जब विचारों के आने जाने के प्रकिया अपनी जगह स्थिर हो जाए तो वही प्राणायाम है। ऐसा तेज बिन्दु उपनिषद कहता है।

- सिद्धि सिद्धान्त पद्धति के अनुसार– ''प्राणायाम इति प्राणस्य स्थिरता।।

– (सिद्धि सिद्धान्त पद्धति)

अर्थात् शरीर की नाडियों में प्रयास पूर्वक प्राण के प्रभाव को रोकना ही प्राणायाम कहलाता है।

- पंच शिखोपनिषद में प्राणायाम को परिभाषित करते हुए कहा गया है–

''तपो न परं प्राणायामात् तत्वों विशुद्धिमल्न आदीप्तिश्च ज्ञानस्य।।''

– (पंचशिखोपनिषद)

अर्थात् प्राणायाम से बढकर कोई तप नहीं प्राणायाम से अन्तः काल के दोष दूर हो जाते है और ज्ञान की दीप्ति में वृद्धि हो जाती है। अतः योगी को बढे यत्न के साथ प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

प्राणायाम के सम्बन्ध में मनुमहाराज ने निम्नलिखित विवेचन किया–

- ''दहान्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
  तथेन्द्रियाणां दहान्ते दोषः प्राशस्य निग्रहात।।

– (6/71 मनु)

अर्थात् जैसे अग्नि आदि में तपाने से सुर्वण आदि धातुओं के मल विकार नष्ट हो जाते है वैसे ही प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष दूर हो जातें है।
स्वात्माराम जी कृत हठ प्रदीपिका में प्राणायाम को परिभाषित करते हुए कहा है–

- ''चले वात चलं चित्तं निश्चलें निश्चलं भवेत्।''

  – (2/2 हठप्रदीपिका)

अर्थात् प्राण एव मन का घनिष्ट सम्बन्ध है। वायु के चलाय मान होने पर चित्त भी चंचल होता और वायु के निश्चल हो जाने पर चित्त भी स्थिर हो जाता है।

- पं0 श्री राम शर्मा आचार्य जी प्राणायाम को परिभाषित करते हुए कहते है – कि प्राण शक्ति चेतना विद्युत है जो मस्तिष्क के प्रत्येक कोश को प्रभावित करती है एवं प्रक्रिया सही होने पर सौद्धेश्य ध्यान के जुड़ जाने पर न केवल विकारों का शमन करती है अपितु, प्रखरता समृद्धि आदि को भी बढ़ाती है, और मनुष्य को क्षमता सम्पन्न बनाती है।
- शिवानन्द जी के अनुसार – ''प्राणायाम वह माध्यम है, जिसके द्वारा योगी अपने छोटे से छोटे शरीर में ब्रह्माण्ड के जीवन के अनुभव करता है।''

  – (प्राणायाम विज्ञान)
- ''प्राणायाम वह महाविद्या है, यह समृद्धि स्वतन्त्रता और वरदान का राजमार्ग है।'' – योग चूड़ामणि

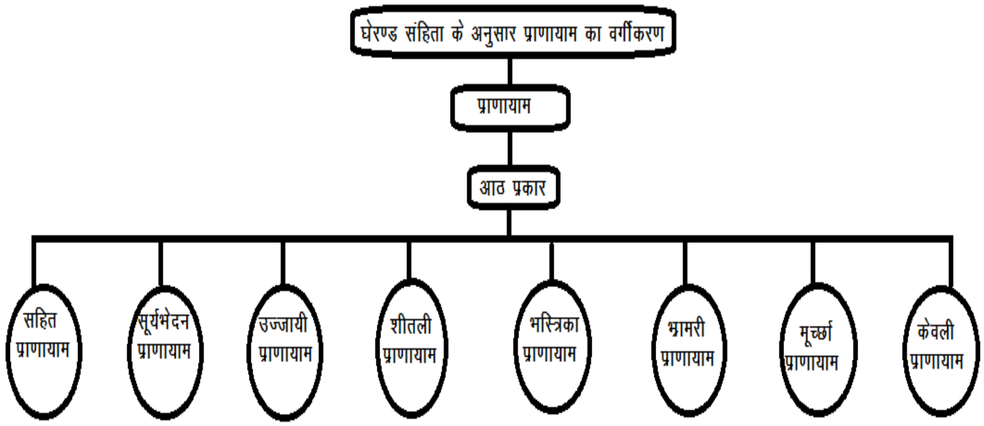
11.4 – प्राणायामों का वर्गीकरण

प्रिय विद्यार्थियों अब तक आप प्राणायाम के अर्थ एवं परिभाषाओं को भलीभॉति समझ चुके होगे कि प्राणायाम प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कितना लाभदायक होता है। अभी तक आप उसके अर्थ एवं परिभाषा को ही जाना है। अब आप के मन में प्रश्न उठ रहें होगे कि प्राणायाम के कितने प्रकार है और प्रत्येक प्राणायाम किस तरह से लाभ पहॅुचते है तथा हठग्रन्थो में किस तरह से प्राणायाम को वर्गीकृत किया है।
हठयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड ने अपने अध्याय – 5 प्राणायाम प्रकरण में ''सप्तांग या सप्त साधन'' का वर्णन किया है। प्राणायाम भी उनमें से एक महत्तपूर्ण साधन या अंग है। जिसको करने से शरीर में लघुता या हल्कापन आता है। जो किसी भी योग साधक के लिए नितान्त आवश्यक है। महर्षि घेरण्ड प्राणायामो का वर्णन करते हुए कहते है –

''सहितः सूर्यभेदश्य उज्जायी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भकाः।।''

– 5/46 घेरण्ड संहिता

अर्थ प्राणायाम के आठ भेद हैं – सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवली।
जिज्ञासु विद्यार्थिया अब तक आपने हठ योग के एक ग्रन्थ के अनुसार प्राणायामो के प्रकारो को जाना जिनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है। जिससे आप प्राणायामो को भलीभॉति समझ सकेंगे।



1. **सहित प्राणायाम** – सहित प्राणायाम को करने की दो विधियॉ वतायी गयी है। प्रथम विधि है, सगर्भ और द्वितीय विधि है, निगर्भ।

(अ). सगर्भ प्राणायाम – सगर्भ में ''अ उ और म'' के माध्यम से ब्रह्मा, कृष्ण और शिव पर ध्यान किया जाता है। जिसे सामान्यतः बीज मन्त्र के कहा जाता है। अर्थात् सगर्भ प्राणायाम को बीज मन्त्रों की सहायता से किया जाता है।

(ब). निगर्भ प्राणायाम – निगर्भ प्राणायाम में बीज मन्त्र का प्रयोग नही किया जाता है। इसमें प्राणायाम को गिनती के साथ किया जाता है। जिनको तीन श्रेणियो में विभाजित किया गया है। उत्तम, मध्यम और अधम। इस विधि के अनुसार प्राणायाम को करने की विधि का उत्तम अनुपात 1:4:2 माना जाता है।

2. **सूर्यभेदन प्राणायाम** – सूर्यभेदन प्राणायाम में दांयी नासिका से पूरक (श्वास को अन्दर लेना) किया जाता है। तत्पश्चात् जालन्धर बन्ध (ठुड्डी को कंठ कूप से लगाना) लगाकर कुम्भक (श्वास को रोक कर रखना) किया जाता है, तथा पुनः दांयी नासिका से ही रेचक (श्वास को बाहर छोड़ना) कर दिया जाता है।
3. **उज्जायी प्राणायाम** – उज्जायी प्राणायाम से दोनों नासिका से पूरक क्रिया होती है। पूरक की क्रिया के साथ ही छोटे बच्चो के खर्राटे के सर्दश ध्वनि उत्पन्न होती है। इसके बाद श्वास को अन्तरंग कुम्भक से जालन्धर बन्ध के साथ रोका जाता है, तथा पुनः धीरे – धीरे श्वास का रेचक (बाहर) किया जाता है।
4. **शीतली प्राणायाम** – शीतली प्राणायाम का वर्णन महर्षि घेरण्ड ने कुछ अन्य विधि से किया, जैसा कि प्रत्येक प्राणायाम में केवल नासिका का प्रयोग हो रहा था। शीतली प्राणायाम में मुख एवं नासिका दोनो का प्रयोग बताया गया है। जीभ को बाहर निकाल कर परनाले के सदृश बनाए। तत्पश्चात् मुख से पूरक करे, (श्वास को अन्दर लेना) (जैसे जल को गटका जाता है ठीक उसी तरह) फिर कुछ क्षण श्वास को अन्दर राक ले तथा धीरे – धीरे श्वास को बाहर निकाल दें।
5. **भस्त्रिका प्राणायाम** – श्वसन की तीव्र गति से पूरक और रेचक की प्रक्रिया घेरण्ड संहिता में भस्त्रिका प्राणायाम कहा गया है। इसमें समान अन्तर से श्वास को अन्दर और बाहर लय के साथ किया जाता है। अन्य ग्रन्थो में पूरक और रेचक के बाद कुम्भक का प्रयोग बताया गया है।

6. **भ्रामरी प्राणायाम** – घरेण्ड संहिता में भ्रामरी प्राणायाम की दो विधियों का वर्णन किया गया है। विधि इस प्रकार है –

प्रथम विधि – ध्यान के किसी भी आसन जैसे पद्मासन, सिद्धासन, सिद्धयोनी आसन इत्यादि में बैठते है, तत्पश्चात् कोहनियों को मोड़ते हुए दोनो हाथ की तर्जनी या मध्यमा अंगुली से दोनो कानो को बन्द करते है फिर जबड़ो को ढीला छोड़ते है, जिससे कम्पन स्पष्ट सुनायी दे। अब श्वास को नासिका को नाक से भीतर भरते है, फिर धीरे – धीरे भ्रमर की गुजंन की ध्वनि के साथ रेचक करते है।

द्वितीय विधि – भ्रामरी प्राणायाम की द्वितीय विधि मे ध्यानात्मक आसन में बैठते है। तत्पश्चात् दोनों हाथो के अंगूठों से कान बन्द करते है, जिससे बाहर की कोई भी कोई भी ध्वनि सुनायी न दे फिर तर्जनी अगुलियां माथे पर, मध्यमा और अनामिका अगुलियां आंखो पर तथा शेष छोटी अगुलियां नाक के दाएं एवं वायी तरफ रहती है। उसके बाद श्वास को अन्दर भरते है, तथा रेचक के दौरान ॐ का उच्चारण या भ्रमर का जैसा गुजांर होता है। जिससे मस्तिष्क स्वतः ही शान्त और स्थिर होने लगता है।

7. **मूर्च्छा प्राणायाम** – ध्यान के किसी आसन में बैठते है। शरीर को स्थिर एवं मन को शान्त करते है। तत्पश्चात् श्वास को अन्दर भरते हुए आंखो को सहजता से बन्द करते है। अब सिर को धीरे – धीरे ऊपर की और लगभग 45 – 50 अंश के कोण तक उठाते है। याद रहे सिर को उठाते समय धीरे – धीरे आंखो को खोलते है, और साम्भवी दृष्टि के साथ कुम्भक लगाते है, तथा घुटनो पर कोहनियो को सीधा रखते है रोके, फिर धीरे वापस आए और आंखे बन्द कर देते है।
8. **केवली प्राणायाम** – केवली प्राणायाम का वर्णन महर्षि घेरण्ड ने सबसे अन्त में किया है। सामान्यतः इस प्राणायाम में अजपाजप किया जाता है। अजपाजप अर्थात् स्वतः होने वाला। इस प्राणायाम में जब पूरक क्रिया की जाती है, उस समय साधक अनुभव करता है कि प्राणवायु मूलाधार से ऊपर होती हुयी हृदयद्वार से गुजकर नासिका तक पहुँचती है, तथा रेचक के दौरान अनुभव किया जाता है, कि प्राणवायु नासिका के अग्रभाग से नीचे की ओर जा रही है। यही केवली प्राणायाम की सामान्य विधि है।

प्राणायाम का वर्गीकृत रूप महर्षि पतंजलि के प्रमुख ग्रन्थ योग सूत्र में भी है जो इस प्रकार से है –

प्राण के आयाम अर्थात् विस्तार को प्राणायाम कहा गया है। महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के निम्न प्रकार बताए गये है –

''बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घ सूक्ष्मः।।''

– पा0 यो0 सू0 2/50

अर्थात् बाह्यवृत्ति, आभ्यान्तरवृत्ति और स्तम्भवृत्ति होता है, तथा वह देश, काल और संख्या द्वारा भली – भॉति देखा जाता हुआ लम्बा और हल्का होता जाता है।

1. **बाह्यवृत्ति प्राणायाम** – प्राणवायु को शरीर से बाहर निकाल कर जितनी देर रोक सके रोक ले, यही बाह्यवृत्ति प्राणायाम है। इसे रेचक क्रिया के नाम से भी जाना जाता है।
2. **आभ्यान्तरवृत्ति प्राणायाम** – प्राणवायु नियन्त्रित गति से धीरे – धीरे अन्दर ले जाना और जितनी देर सम्भव हो सके रोक लेना, आभ्यान्तरवृत्ति प्राणायाम कहलाता है। इसे पूरक क्रिया के नाम से भी जाना जाता है।

3. **स्तम्भवृत्ति प्राणायाम –** सामान्यतः श्वसन की जो गति है, उसे प्रयत्न या जबरदस्ती बाहर निकालने या अन्दर ले जाने के अभ्यास न करते हुए श्वसन प्रक्रिया को उसी जगह रोक देना जहाँ वह है, स्तम्भवृत्ति प्राणायाम कहा जाता है।

महर्षि पतंजलि ने तीन प्राणायामों के अतिरिक्त एक ओर प्राणायाम का वर्णन किया है जो निम्नलिखित है –

''बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः।।''

– पा0 यो0 सू0 2/51

अर्थात् बाहर ओर भीतर के विषयो का त्याग कर देने से अपने आप होने वाला चतुर्थ प्राणायाम है। योग के अनेकानेक ग्रन्थो में प्राणायाम का वर्णन किया गया है।

हठप्रदीपिका के अनुसार –

हठप्रदीपिका हठयोग का प्रमुख ग्रन्थ है, जिसमें प्राणायाम का वर्णन निम्न रूपों में किया गया है –

''सूर्यभेदनमुज्जायी सीतकारी शीतली तथा
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्ट कुम्भकाः।।''

– 2/44 हठ प्रदीपिका

अर्थात् सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लावनी ये आठ प्रकार के कुम्भक होते है। स्वात्माराम सूरी जी ने हठप्रदीपिका में प्राणायाम को कुम्भक की संज्ञा दी है –

अगली इकाइयों में हम इन प्राणायामों की विस्तार पूर्वक चर्चा करेगें।

रिक्त स्थानों की पूर्ति करो –

1. घेरण्ड संहिता में प्राणायामों की संख्या .... है।
2. सहित प्राणायाम की .... विधि है।
3. महर्षि पतंजलि ने .... प्रकार के प्राणायामो का वर्णन योग सूत्र में किया है।
4. जबालदर्शनोपनिषद के अनुसार प्राणायाम की .... विधियो को बताया गया है।
5. तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। ये परिभाषा का वर्णन .... में किया गया है।

सत्य और असत्य का चिहिन्न लगाएं –

1. प्राणायाम के नियमित अभ्यास से शरीर की शक्ति बडने लगती है। (...........)
2. शीतली प्राणायाम को करने से शरीर में ऊर्जा बड़ने से गर्मी का आभास होता है। (.............)
3. शीतली प्राणायाम को करने का निर्देश जाड़ो में दिया जाता है। (.............)
4. ह्रदय रोगी को कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए। (.............)
5. बाहयवृत्ति, आभ्यान्तरवृत्ति, स्तम्भवृत्ति प्राणायाम का वर्णन घेरण्ड संहिता में किया गया है। (...........)

बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) घेरण्ड संहिता के सप्तांग में प्राणायाम का स्थान है।

(अ) प्रथम (ब) पंचम
(स) द्वितीय (द) चतुर्थ

(ख) चलें वाते चलं चित्तं का वर्णन हठ योग के किन ग्रन्थों में है।

(अ) घेरण्ड संहिता (ब) हठप्रदीपिका
(स) शिव संहिता (द) गोरक्षसंहिता

(ग) थायराइड के रोगी के लिए सबसे उपयुक्त प्राणायाम है।
(अ) सूर्यभेदी (ब) नाड़ीशोधन
(स) उज्जायी (द) कपालभांति

(घ) प्राणायाम का अर्थ है।
(अ) प्राण को रोक देना (ब) जल्दी – जल्दी श्वास लेना
(स) जोर से श्वास अन्दर लेना (द) प्राण का विस्तार करना

11.5 – सारॉश

विद्यार्थियो आप प्राणायाम के अर्थ, परिभाषा एवं वर्गीकरण को पढ़ने के बाद समझ चुके होगें कि प्राणायाम का अभ्यास प्रत्येक मनुष्य के लिए नितान्त आवश्यक है। जिस तरह स्थूल शरीर का भोजन सब्जियॉ, फल, अनाज है, ठीक उसी तरह सूक्ष्म शरीर का भोजन प्राण है। जिसकी पूर्ति सिर्फ प्राणायाम को करने से पूरी हो जाती है। प्राणायाम को करने से शरीर, मन एवं इन्द्रियां तीनो पर विजय प्राप्त की जा सकती है। परन्तु ये सब साधक के अभ्यास, निरन्तरता और विश्वास पर निर्भर करता है। प्राणायाम के अभ्यास से एक ओर जहॉ मनुष्य की आयु बड़ने लगती है, तो वही दूसरी ओर शरीर के विभिन्न रोग स्वतः ही दूर होने लगते है। प्राणायाम सम्पूर्ण रोगो को दूर करने की एक सर्वोत्तम औषधी है, इसलिए पंचशिखोपनिषद में कहा गया है –

''तपो न परं प्राणायामात् तत्पों विशुद्धिमल्न आदीप्तिश्च ज्ञानस्या।''
– पंचशिखोपनिषद

अर्थात् प्राणायाम से बड़कर तप नही, प्राणायाम से अन्तः काल के दोष दूर हो जाते है, और ज्ञान की दीप्ति में वृद्धि हो जाती है। अतः योगी को बड़े यत्न के साथ प्राणायाम का अभ्यास करनाा चाहिए।

11.6 – शब्दावली

- संकेत – निर्देश
- प्रस्फुटित – बाहर निकलना
- सात्विक – शुद्ध, पवित्र
- मूर्च्छा – बेहोशी
- कुम्भक– श्वास रोकना,हठप्रदीपिका में प्राणायाम को कुम्भक भी कहा गया है।
- यत्न– प्रयास

11.7 – अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

रिक्त प्रश्नों के उत्तर :–

1. आठ 2. दो 3. चार 4. तीन 5. पतंजलि योग सूत्र

सत्य एवं असत्य प्रश्नों के उत्तर :–

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. असत्य 5. असत्य

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर :–

क. ब ख. ब ग. स घ. द

11.8 – सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति
2. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।
3. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती– प्राण, प्राणायाम प्राण विद्या बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।
4. बाबा रामदेव – प्राणायाम रहस्य।
5. महर्षि घेरण्ड–घेरण्ड संहिता बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।

11.9 – निबन्धात्मक प्रश्न

(1). प्राण शब्द के अर्थ करते हुए प्राणायाम को परिभाषित कीजिए।
(2). घेरण्ड संहिता में वर्णित आठ प्राणायामों में से किसी दो विधियों का वर्णन करें।

इकाई – 12 प्राणायाम के सिद्धान्त प्राणायाम की उपयोगिता

12.1 – प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति ऋषि संस्कृति के नाम से जानी जाती है। प्राणयाम एक वैदिक कालीन परम्परा के रूप में हमारे वहॉ चला आ रहा है। पूर्व काल में ऋषि सत्तऍ ही इसका अभ्यास किया करती थी। उन्होने इस जीवनी शक्ति को स्थूल रूप में श्वास से सम्बन्ध माना है। उनका कहना है कि संसार का प्रत्येक प्राणी श्वास लेता है। प्राण के माध्यम से ही उसके शरीर में उसके शरीर में प्राण एवं जीवन का संचार होता है।

इसलिए ऋषियों ने श्वासो का सम्बन्ध जीवनी शक्ति से माना है। उनका मन्त्र है कि प्राणायाम के अभ्यास द्वारा जीवनी शक्ति पर नियन्त्रण प्राप्त करके शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है, और इसे बचाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में महर्षि घेरण्ड कहते है –

''अथातः संप्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य सिद्धिधिम्।
यस्य साधन मात्रेण देवतुल्योः भवेन्नरः।।'' – 5/1।।

अर्थात् कि मैं प्राणायाम की विधि बतलाता हूॅ। जिसका साधन मात्र करने से मनुष्य देवता के समान हो जाता है।

प्रिय विद्यार्थियों पूर्व की इकाई में प्राणायाम के अर्थ एवं परिभाषाओं के पढ़ने के पश्चात् प्रस्तुत इकाई में आप प्राणायाम के सिद्धान्त एवं उपयोगिता को भलीभॉति समझ सकेंगे। पाठको स्मरण रहे प्राणायाम करने में सरल महसूस होते है किन्तु इनको करने में यदि थोड़ी सी भी असावधानी हो जाए तो इसके परिणाम बहुत ही नकारात्मक प्रभाव शरीर व मन पर पडते है।

12.2 उद्धेश्य

- प्राणायामो को करने से प्राप्त होने वाले लाभो को जान सकेंगे।
- प्राणायाम के सिद्धान्त से भलीभॉति अवगत हो सकेंगे।
- प्राणायाम के लिए उपयुक्त वातावरण का विश्लेषण कर सकेंगे।
- प्राणायाम के अभ्यास काल को भलीभॉति जान सकेंगे।

12.3 प्राणायाम के सिद्धान्त

प्राणायाम के सम्बन्ध में अनेकानेक ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये है, किन्तु उनमें से कुछ सिद्धान्त निम्नलिखित है।

12.3.1 – श्वसन प्रक्रिया – प्राणायाम सिद्धान्त में प्रथम सिद्धान्त नासिका रन्ध्रो को साफ करने का है। साधक को प्राणायाम करते समय श्वसन प्रक्रिया को नासिका से लेना चाहिए। मुंह से श्वास नही लेना चाहिए। यद्यपि कुछ प्राणायाम में मुंह से श्वसन करने का निर्देश है किन्तु उन्हे करते समय उपयुक्त स्थान का चयन कर लेना चाहिए।

12.3.2 – अभ्यास के लिए उपयुक्त स्थान – प्राणायाम का अभ्यास करने से पूर्व शान्त एवं स्वच्छ स्थान का होना नितान्त आवश्यक है। प्राणायाम को कभी भी अत्यधिक हवा और धूप में नहीं करना चाहिए। इसके अभ्यास के ऐसे कमरे का चुनाव करना चाहिए जो शीतल से मुक्त हो, उचित प्रकाश से युक्त हो, तथा कमरे में वायु के अवागमन और निष्कासन की पूरी सुविधा हो। कमरा धूल और गन्दगी से मुक्त होना चाहिए।

12.3.3 – प्राणायाम का समय – प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार प्राणायाम को करने का उपयुक्त समय प्रातः काल का माना गया है। सिर्फ भ्रामरी प्राणायाम को अर्द्ध रात्रि (आधी रात) वीत जाने के पश्चात् करने का नियम दिया गया है। प्राणायाम को प्रातः कालीन करने के विषय ये तथ्य माने जाते है कि भोर में प्राण वायु शुद्ध एवं पवित्र होती है, चित्त शान्त होता है, उस समय किया गया प्राणायाम प्रायः शुभ माना जाता है।

12.3.4 – कम – महर्षि घेरण्ड द्वारा रचित घेरण्ड संहिता पर दृष्टिपात करें तो प्राणायाम का अभ्यास प्रत्याहार के बाद और ध्यान से पहले करने की बात कही गयी है। महर्षि धेरण्ड कहते है कि साधक का इन्द्रियो पर नियन्त्रण हो जाये। उसके बाद ही प्राणायाम का अभ्यास शुरू करना चाहिए।

12.3.5 – वस्त्रो का चयन – प्राणायाम को करने के दौरान साधक को सदैव मौसम को ध्यान में रखकर वस्त्रों का चयन करना चाहिए। यदि ग्रीष्म ऋतु हो तो, सूती वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए, और शीत ऋतु है तो ऊनी तथा ढीले वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए।

12.3.6 – आहार का महत्व – आहार को प्राणायाम में बहुत ही महत्वपूर्ण माना जाता है। अभ्यास प्रारम्भ करने के उपरान्त भोजन में सभी प्रकार के पौषक तत्व जैसे प्रेटीन कार्बोहाइड्रेट, वसा, दुग्ध इत्यादि को लेना प्रारम्भ कर देना चाहिए। क्योकि प्राणायाम को उच्चावस्था तक ले जाने के लिए इसकी आवश्यकता होती है।

12.3.7 – स्नान का समय – प्राणायाम का शुभारम्भ स्नानादि करके किया जाए तो उसके अच्छे परिणाम देखने को मिलते है। यदि साधक ऐसा करने में समर्थ नही है तो प्राणायामक रने के लगभग एक घंटे पश्चात् जब शरीर का तापमान सामान्यावस्था में आ जाए तब स्नान करना चाहिए।

12.3.8 – बैठने का आसन – अभ्यास को शुरू करते समय ध्यान का कोई भी आसन चुन लेना चाहिए, जैसे पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन इत्यादि। इन आसनो में बैठकर शरीरिक स्थिति तथा शान्त रहती है, साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि किसी कम्बल आदि का प्रयोग प्राणायाम को करते अवश्य करें, जिससे साधक द्वारा ली जाने वाली ऊर्जा का क्षय न हो।

12.3.9 – तनाव से बचना – प्राणायाम के सभी अभ्यासों को करते समय यह भी याद रखना चाहिए कि प्राणायाम को जितनी मात्रा में बताया गया है, उतना ही करना चाहिए। आवश्यकता से अधिक तथा जबरदस्ती कुम्भक (श्वास को रोकना) नहीं करना चाहिए। क्योंकि हमारे फेफड़े बहुत ही कोमल होते है। अनावश्यक दबाव देने से फेफड़ो के साथ साथ शरीर के अन्य अंगो में भी हानि हो सकती है। इसलिए अधिक तनाव ना लें।

12.3.10 – धूम्रपान का पूर्णतः निषेध – प्राणायाम के अभ्यासी को धूमपान का पूर्णतः निषेध बताया जाता है, क्योकि जितने अच्छे परिणाम धूमपान न करने वाले व्यक्ति आते है, उतने ही नकारात्मक परिणाम धूमपान करने वाले व्यक्तियो के आते है। इसलिए धूमपान से बचना चाहिए।

12.3.11 – प्राणायाम की सीमाएॅं – सामान्यतः प्राणायाम का सभी व्यक्तियो को करने की सलाह दी जाती है। केवल जिन व्यक्ति की शल्य चिकित्सा की जाती है, उन्हें इस बात को स्मरण रखना चाहिए कि वह ऐसा कोई भी अभ्यास न करे। जिससे प्राणायाम का प्रभाव नकारात्मक रूप में आए।

उदाहरण के लिए पेट की शल्य चिकित्सा के पश्चात् अग्निसार और कपालभॉति का अभ्यास नही करना चाहिए।

12.3.12 – पेट का खाली होना – प्राणायाम को प्रारम्भ करने से पूर्व इस बात का पूरी तरह ध्यान रखना चाहिए कि पेट पूर्णतः खाली हो या भोजन किए हुए 4 से 5 घंटा हो चुका हो। यदि भरे हुए पेट में प्राणायाम का अभ्यास करते है तो फेफड़े और मध्यपट (डायफ्राम) पर दबाव पड़ता है। जिससे श्वसन प्रकिया लम्बी और गहरी नहीं हो पाती है।

12.4 – प्राणायाम की उपयोगिता

प्रिय पाठको अभी तक आप प्राणायाम के सिद्धान्तों को पढ़ रहें थे। इसके सिद्धान्तो को पढ़ने के बाद आप भलीभॉति समझ चुके होंगे कि हठ योग कि प्रत्येक क्रियाए मूल्य एवं सिद्धान्तो पर आधारित है। प्रस्तुत इकाई में अब आप प्राणायाम की उपयोगिता को जान सकेंगे, तथा उनसे मिलने वाले लाभ को प्राप्त कर सकेंगे। प्राणायाम की उपयोगिता या लाभ निम्नलिखित है –

12.4.1 – प्राणायाम द्वारा मन की एकाग्रता – मन व प्राण का अटूट सम्बन्ध है। मन सवार है, तो प्राण वाहन है। अतः मन के निरोध से प्राण का स्पन्दन रूक जाता है, और प्राण के स्पन्दन की शिथिलता मन को एकाग्र बना देती है। इसलिए मन के निरोध के लिए प्राण स्पन्दन की गतिविधि पर सम्यक अनुशासन रखना नितान्त आवश्यक है।

12.4.2 – नाड़ियो का शुद्धिकरण – नाड़ियो की इन्द्रिय जगत् में नहीं देखा जा सकता है, लेकिन इनका हमारे शरीर में महत्वपूर्ण स्थान है। योग के आधार भूत ग्रन्थों के अनुसार शरीर में तीन नाड़ियॉ मुख्य मानी गयी है, इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। प्राणायाम के द्वारा ये प्राण तत्व को ग्रहण करती है। नाड़ियों की शुद्धि होने पर बाहरी लक्षण देखे जा सकते है। जब शरीर दुबला और कान्तिवान हो जाता है तो ऐसा माना जाता है कि नाड़ियो का शुद्धिकरण हो चुका है। नाड़ियो की पूर्ण शुद्धि के बाद अर्न्तनाद सुनायी देने लगते है।

12.4.3 – मानसिक लाभ – प्राणायाम के अभ्यास से मनुष्य का समस्त वृत्तियो का नाश होना प्रारम्भ हो जाता है। मनुष्य इन वृत्तियो से मुक्त होकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि भावनाओ को त्यागकर मानसिक लाभ प्राप्त करने लगता है। प्राणायाम का श्रद्धा तथा भाव पूर्वक नियमित अभ्यास करने से साधक का चित्त एकाग्र, शान्त स्थिर होने लगता है, तथा अवसाद, (डिप्रेशन) चिन्ता, कुण्डा, चिड़चिड़ापन, चंचलता, क्रोध आदि स्वतः ही नष्ट होने लगते है। मन पूरी तरह सन्तुलन की स्थिति में आने लगता है। मन की स्थिर स्थिति होने से उस अर्न्तजगत की शक्तियॉ (अर्थात् आन्तरिक ऊर्जा) जाग्रत होने लगती है, तथा उसकी बौद्धिक क्षमताओं का विकास होना प्रारम्भ हो जाता है। साधक की बुद्धि कुशाग्र होने लगती हैं। उसके समस्त मानसिक विकार नष्ट होने लगते है। अन्ततः साधक उच्चावस्था को प्राप्त करने लगता है।

12.4.4 – शारीरिक लाभ – प्राणायाम के अभ्यास से साधक मानसिक विकास के साथ – साथ अपने शरीर की समस्त बिमारियों का नाश करते हुए शारीरिक लाभ प्राप्त करता है। प्राणायाम के समय साधक त्रिबन्धों (मूलबन्ध, उड्डीयानबन्ध तथा जालन्धर बन्ध) का प्रयोग करता है। इसी के कारण कई ग्रन्थियां विशेष रूप से प्रभावित होता है। प्राणायाम को नियमित करने से असन्तुलित हार्मोन्स सन्तुलित होने प्रारम्भ हो जाते है। जो शरीर को लाभ पहॅुचते हुए शरीर के विकारों को नष्ट करता है।

12.4.5 – पाचन शक्ति का बढ़ना – नियमित रूप से प्राणायाम का अभ्यास करने वाले साधक की पाचन शक्ति बढ़ने लगती है।

12.4.6 – वृद्धावस्था न आना – प्राणायाम के अभ्यासी साधक को वृद्धावस्था छू नही पाती। जब वह अपान वायु को ऊपर खींचते तथा प्राण को कण्ठ के नीचे लाते है तो साधक

वृद्धावस्था से मुक्ति पाकर सोलह वर्ष की आयु का लगने लगता है। अर्थात् बुड़ापा तो व्यक्ति को आता है किन्तु बुड़ापे के लक्षण नहीं आते। जैसे – शरीर में कम्पन, कमजोरी, कमर का झुक जाना, आंखो का कमजोर होना इत्यादि। वह अपने सभी कार्य स्वयं करने में समर्थ होता है।

12.4.7 – आध्यात्मिक लाभ – प्राणायाम एक ऐसी साधना है, इसका जितना अभ्यास किया जाए उतनी ही बढ़ती जाती है। जब कोई भी साधक इसका निरन्तर अभ्यास करता है तो उसकी साधना उच्चावस्था को प्राप्त होने लगती है। साधक की देह दिव्य तथा निर्मल प्रतीत होने लगती है। जब साधक प्राण पर नियन्त्रण प्राप्त करता है, तो प्राण का प्रभाव सुषुम्ना नाड़ी से प्रवाहित होने लगता है, और वह उच्चावस्था को प्राप्त होने लगता है। साधक में नई कान्ति एवं आभा का उदय होने लगता है, तथा वह आलौकिक शक्तियो का दर्शन करने में समर्थ हो जाता है।

12.4.8 – मृत्यु के भय का निराकरण – कुछ विद्वानो के अनुसार प्राणायाम से अशुद्धियां दूर होती है। इसलिए उन्होने प्रणायाम को बहुत सम्मानजनक स्थान दिया है। ब्रह्म और अन्य देवतागण भी प्राणायाम का अभ्यास करते है, जिससे मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है। ऐसा माना जाता है कि जब तक योगी श्वास को शरीर में रोकता है। उस समय उसका मन विचार शून्य होने लगता है। विचारशून्य स्थिति जब किसी साधक की हो जाए तो वह कैसे किसी विषय पर सोच सकता है। इसलिए कहा जाता है कि उसे मृत्यु से भय नही लगता या मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है।

12.4.9 – कुण्डिलिनी जागरण – कुण्डिलिनी शक्ति ऐसी शक्ति होती है, जिसे सिर्फ योगी ही भलीभॉति समझ सकते है। यह प्रत्येक मनुष्य के शरीर में सुप्तावस्था में स्थिर होती है। इसके जाग्रत होते ही सामान्य मनुष्य महामानव बन जाता है। किन्तु ये भौतिक शरीर में प्रतीत नही होती, यह तो अतीन्द्रिय शक्ति है। इसे एक उच्चावस्था का योगी ही महसूस कर सकता है। इस शक्ति को जाग्रत करने के लिए प्राणायाम एक अच्छा माध्यम है, जिससे यह जाग्रत हो सकती है।

12.4.10 – राजयोग की प्राप्ति – हठप्रदीपिका में प्राणायाम को कुम्भक कहा गया है। कुम्भक के द्वारा प्राण को रोकने से मन सभी वृत्तियो से मुक्त होता है।इसलिए प्राणायाम के अभ्यास द्वारा स्थिति प्राप्त होती है। मनु स्मृति में कहा गया है –

“देहयन्ते ध्याय मासांना धातुना हि यथा मलाः।
त्योन्द्रिप्राणा दहन्ते दोषा प्राणस्य निग्रहात्।। – मनु स्मृति

अर्थात् जैसे अग्नि से तपाये स्वर्ण, रजत आदि धातुओं के मल जल जाते है। वैसे ही प्राणायाम के अनुष्ठान से इन्द्रियो में आ गये दोष ही दूर नहीं होते प्रत्युत प्राण, देह तथा मन के विकार भी दूर होकर इन पर वशित्व प्राप्त हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1.सत्य/असत्य कथन की पहचान करें –

(क) प्राणायाम को करने से शरीर की ऊर्जा घटने लगती है।
(ख) प्राणायाम सिर्फ रोगियो के लिए ही आवश्यक है।
(ग) प्राणायाम के नियमित अभ्यास से श्वसन दर घटने लगती है।
(घ) कभी – कभी प्राणायाम से लाभ अधिक मिलते है।
(ड.) अधिक कसे हुए वस्त्रों के साथ ही प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।
(च) शान्त वातावरण में प्राणायाम अधिक प्रभावशाली होता है।

(छ) प्राणायाम के दौरान धूम्रपान नहीं करना चाहिए।

2. रिक्त स्थान की पूर्ति करें –

(क). श्वास को बाहर या अन्दर रोकने की प्रक्रिया को .... कहते है।

(ख). प्राणायाम का अभ्यास .... पर बैठकर करना चाहिए।

(ग). श्वसन प्रायः दीर्घ तथा .... होना चाहिए।

(घ). प्राणायाम के नियमित अभ्यास से चित्त .... एवं .... होने लगता है।

(ड़). प्राणायाम के अभ्यास से साधक की देह .... युक्त हो जाती है।

(च). .... प्राणायाम में पूर्णतः वर्जित माना गया है।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क). प्राणायाम के लिए उपयुक्त स्थान है –

(अ) तेज हवा में।

(ब) दुर्गन्ध युक्त।

(स) तेज धूप में।

(द) शान्त, स्वच्छ एवं हवादार कक्ष मे।

(ख). प्राणायाम का नियमित अभ्यास करने से –

(अ) शारीरिक ऊर्जा का क्षय होता है।

(ब) फेफड़ो की क्षमता घटती है।

(स) पाचन तन्त्र में ज्यादा लाभ पहुँचाता है।

(द) शरीर एवं मन ऊर्जा से पूरित रहता है।

(ग). इनमें से प्राणायाम का सिद्धान्त है –

(अ) कुण्डिलिनी जागरण।

(ब) मृत्यु के भय का निवारण।

(स) धुम्रपान का पूर्णतः निषेध।

(द) नाड़ियों का शुद्धिकरण।

(घ). उक्त में से प्राणायाम का लाभ है –

(अ) श्वसन प्रक्रिया।

(ब) बैठने का आसन।

(स) नाड़ियों का शुद्धिकरण।

(द) स्नान का समय।

12.5 – सारांश

विद्यार्थियों प्रस्तुत इकाई में आपने प्राणायाम के सिद्धान्त एवं उपयोगिताओ का अध्ययन किया। आपने जाना कि प्राणायाम को करते समय सामान्यतः कितने नियम व सिद्धान्त होते है जिनका पालन करना नितान्त आवश्यक होता है। इस इकाई में आपने सिद्धान्त के साथ इसकी उपयोगिताओ को भी भलीभॉति जाना। इनके अध्ययन के पश्चात् आप प्राणायाम के लाभ भी जान चुके होंगे। प्राणायाम सभी मनुष्यो के लिए आवश्यक है। प्राणायाम के नियम अभ्यास से शरीर एवं मन दोनो ही स्वस्थ रहते है। आज के व्यस्त जीवन शैली में जो नितान्त आवश्यक है।

12.6 – शब्दावली

- स्थूल – बड़ा

- अत्यधिक – बहुत अधिक
- नासिका रन्ध्र – नाक के छिद्र
- जीवनी शक्ति – प्राण या जीवन देने वाली ऊर्जा
- निष्काषन – बाहर जाने देना या निकलने देना
- हानि – नुकसान
- पूरक – श्वास को अन्दर ग्रहण करना
- कुम्भक – श्वास को अन्दर या बाहर रोक देना
- रेचक – श्वास को बाहर निकाल देना
- अर्द्धरात्रि – आधी रात
- इन्द्रियां – आंख, नाक, कान इत्यादि
- उच्चावस्था – ऊॅची अवस्था
- ग्रीष्म ऋतु – गर्मी का मौसम
- अर्न्तनाद – अन्दर की ध्वनि

12.7 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.सत्य/असत्य कथन

(क) असत्य (ख) असत्य (ग) सत्य (घ) सत्य (ड) असत्य (च) सत्य (छ) सत्य

2. रिक्त स्थान की पूर्ति करें –

(क) कुम्भक (ख) कम्बल या चटाई (ग) गहरा
(घ) शान्त एवं निर्मल (ड) कान्ति (च) धूम्रपान

3. बहुविकल्पीय प्रश्न –

(क) द (ख) द (ग) स (घ) स

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति ।
2. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।
3. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती– प्राण, प्राणायाम प्राण विद्या बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।

12.9 – निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राणायाम की उपयोगिता एवं सिद्धान्तो की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।

इकाई – 13 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों की विधि व लाभ नाड़ी – शोधन, सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी व शीतली प्राणायाम

13.1 – प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही हठयोग योग का एक महत्तवपूर्ण पक्ष माना जाता रहा है। इस योग की परम्परा के विषय पर दृष्टिपात करे तो सर्वप्रथम इसकी शिक्षा भगवान शिव ने माता पार्वती को दी। उसके बाद नाथ सम्प्रदाय ने इसको विस्तारित किया जिनमें गोरक्षनाथ तथा मत्स्येन्द्र नाथ अग्रणी है। हठयोग में जहॉ एक ओर षट्कर्म को महत्तवपूर्ण माना गया है, तो वही दूसरी ओर प्राणायाम की भी विस्तार पूर्वक चर्चा की गयी है। इसमें प्राणायाम के आठ प्रकार बताये गये है। जिसे एक विशेष नाम **अष्टकुम्भक** कहा गया है।
प्रिय पाठको प्रस्तुत इकाई में आप हठप्रदीपिका में वर्णित अष्टकुम्भको का वर्णन कर सकेगे, तथा उनके बारे में जान सकेगे। प्रत्येक कुम्भक को प्रारम्भ करने से पूर्व उसकी विधि को भली – भांति सिखना होगा ओर फिर आरम्भ करना होगा। इसमें कुम्भक के कुछ प्रकार ऐसे भी है जिससे नये साधक को हानि भी पहुॅच सकती है। प्रिय विद्यार्थियो इसलिए आपको विशेष मार्ग दर्शन सभी अभ्यास सिखने होगे। उसके बाद ही अभ्यास प्रारम्भ करने होगे।

13.2 उद्धेश्य

- हठयोग प्रदीपिका या हठप्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों (अभ्यासों) का अध्ययन कर सकेंगे।
- प्राणायाम को करते समय क्या – क्या सावधानी रखनी चाहिए उससे परिचित हो सकेंगे।
- प्राणायाम के विभिन्न लाभ को प्राप्त कर सकेंगे।
- अष्टकुम्भको का साधना की दृष्टि से क्या महत्व है, इस तथ्य को भी समझ सकेंगे।

13.3 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों की विधि व लाभ

हठप्रदीपिका में प्राणायामों को अष्टकुम्भक के नाम से परिभाषित किया गया है। इस अष्ट कुम्भकों का शारीरिक स्तर पर क्या महत्व है, इस पर भी उल्लेख किया गया है। अष्ट कुम्भक का वर्णन निम्नलिखित है।

13.3.1 – नाड़ीशोधन प्राणायाम – हठप्रदीपिका के अनुसार नाड़ी शोधन की विधि –

बद्धपद्मासनों योगी प्राणं चन्द्रेण पूरयेत।
धारयित्वा यथाशक्ति भूयः सूर्येण रेचयेत्।।
– 2/7 हठप्रदीपिका

अर्थात् पद्मासन में बैठकर साधक को चन्द्र नाड़ी (बायें नथुने) से श्वास अन्दर लेना चाहिए और अपनी शक्ति के अनुसार रोककर सूर्य नाड़ी (दायें नथुने) से श्वास छोड़ना चाहिए। स्वात्माराम सूरी जी ने पुनः अगले सूत्र में पुनः इस प्राणायाम का विस्तृत वर्णन इस प्रकार किया है –

प्राणं चेदिडया पिबेन्नियमितं भूयोऽन्यया रेचयेत्।
पीत्वा पिङ्गलया समीरणयथो बद्ध्वा व्यजेद्वामया।।
सूर्याचन्द्रमसोरनेन विधिनाभ्यासं सदा तन्वतां।
शुद्धा नाडिगणा भवन्ति यमिनां मासत्रयादूर्ध्वतः।।
– 2/10 हठप्रदीपिका

अर्थात् यदि प्राणवायु को इड़ा (बायें नथुने) से पूरित करे तो उसे नियन्त्रित (कुम्भक) करके पुनः दूसरे से छोड़ देना चाहिए, और बाद में पिंगला (दायें नथुने) से वायु अन्दर लेकर, कुम्भक कर, बायें से छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार बांये और दाहिने नथुने से लगातार प्राणायाम का अभ्यास करने से योगसाधकों की नाड़ी समूह तीन मास से कुछ अधिक समय में निर्मल हो जाते हैं।

हठप्रदीपिका में इस प्राणायाम को कोई विशेष नाम नहीं दिया गया है। किन्तु वर्तमान समय में इसे अनुलोम – विलोम प्राणायाम के नाम से जाना जाता है। किन्तु अनुलोम – विलोम सामान्य गति से श्वास को अन्दर और बाहर किया जाता है, तथा नाड़ी शोधन प्राणायाम में श्वसन प्रकिया को पूरक और रेचक के अलावा अर्न्तकुम्भक और बाह्मयी कुम्भक का भी प्रयाोग किया जाता है।

वर्तमान प्रचलित नाड़ी शोधन प्राणायाम की विधि –: सर्वप्रथम किसी ध्यानात्मक आसन (पद्मासन, सुखासन, स्वास्तिकासन) में कमर और गर्दन को सीधा रखते हुए बैठते है। अब सर्वप्रथम बाए नासिका से पूरक करते है और थोड़ी देर अन्तः कुम्भक (अन्दर रोकना) लगा देते है फिर धीरे – धीरे दायी नासिका से रेचक करते है। फिर दायी नासिका से पूरक करते है, और फिर कुम्भक करते है। उसके बाद बायी नासिका से रेचक कर देते हैं। नाड़ी शोधन की यह प्रकिया अन्तकुम्भक के द्वारा बतायी गयी है।

प्रिय विद्यार्थियों इस प्रक्रिया को अन्तकुम्भक और बाह्मय कुम्भक दोनों कुम्भको के द्वारा भी किया जाता हैं। किन्तु जब अन्तःकुम्भक की साधना में पूर्णता प्राप्त हो जाए उसके बाद ही दोनों कुम्भकों का प्रयोग उचित है अन्यथा हानि हो सकती है। अतः प्राणायाम की किसी भी विधि को पुस्तक से पढ़कर ना करें। उचित मार्गदर्शन में प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ करना चाहिए।

लाभ –

- नाड़ी शोधन प्राणायाम के नियमित अभ्यास से शरीर में दिव्य आभा आने लगती है।
- मस्तिष्क में आने वाले नकारात्मक विचार धीरे – धीरे कम होने लगते है।
- अनिद्रा तथा तनाव धीरे – धीरे क्षीण होने लगता है।
- नाड़ियों की शुद्धि होने से कुण्डिलिनी जागरण होता है।

13.3.2 – सूर्यभेदन प्राणायाम –

आसने सखनदे योगी बद्ध्वा चैवासनं ततः।
दक्षनाडया समाकृष्य बहिस्थं पवनं शनैः।। 2/48।।
आकेशादानखाग्राच्च निरोधावधि कुम्भयेत्।
ततः शनैः सव्यनाऽया रेचयेत् पवनं शनैः।। 2/49।।

अर्थात् योगाभ्यासी कोई भी सुखदायक आसन बिछाकर, उस पर आसन लगाकर, दाहिने नथुने से बाहरी वायु को धीरे – धीरे अन्दर खींचकर, उसे जब तक हो सके अधिकाधिक निरोध करे (श्वास को रोके), और फिर बाए नथुने से धीरे – धीरे श्वास को छोड़े।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- कमर गर्दन को सीधा रखते हुए ध्यानातमक आसन में बैठते है।
- दायी नासिका से श्वास को अन्दर ले और थोड़ी देर के लिए कुम्भक करें।
- फिर धीरे –धीरे श्वास को बायी नासिका से रेचक करें।
- तत्पश्चात् इसी तरह विधि को पुनः दोहराए, यही सूर्यभेदन प्राणायाम की विधि है।

लाभ –

- शीतऋतु में नियमित सूर्यभेदन प्राणायाम के अभ्यास से ठण्ड़ का अनुभव नहीं होता है।
- सूेर्यभेदन प्राणायामम करने से कृमि भी नष्ट होने लगते है।
- निम्न रक्तचाप वाले व्यक्ति के लिए लाभकारी प्राणायाम है।
- वात तथा कफ दोष को सामान्य करता है तथा शरीर मे ऊर्जा का संचार करता है।
- अस्थमा के रोगी को इस प्राणायाम को करने से लाभ पहॅुचता है।

13.3.3 – उज्जायी प्राणायाम –

मुखं सुयम्य नाड़ीभ्यामाकृष्य पवनं शनैः।
यथा लगति कण्ठातु हृदयावधि सस्वनम्।। 2/51।।

अर्थात् मुख को बन्द कर दोनों नथुनों से वायु को कुछ आवाज के साथ धीरे – धीरे इस प्रकार लेना चाहिए, जिससे कण्ठ से लेकर हृदय प्रदेश तक इसके स्पर्श का अनुभव हो।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम ध्यानात्मक आसन में बैठते है।
- अब बच्चे के खर्राटे के समान गले को आवाज करे जिससे गला संकुचित हो।

- तत्पश्चात् ठोड़ी को कण्ठ कूप पर लगाते हुए जालन्धर बन्ध लगाए तथा क्षमतानुसार रूके।
- उसके बाद बन्ध को (जालन्धर बन्ध) को हटाते हुए सामान्य अवस्था में वापस आए।
- ये इसका एक अभ्यास हैं। पुनः इसी प्रक्रिया को 5 से 7 बार तक दोहराए।

लाभ –

- इस प्राणायाम का सीधा प्रभाव गले पर पड़ता है। जिससे थायराइड तथा पैराथायराइड ग्रन्थियॉ प्रभावित होती है। जिससे (बढ़ा हुआ तथा कम हुआ) थायराइड रोग ठीक होता है।
- जो लोग बोलने में हकलाते है, तुतलाते है, तथा जिनकी आवाज में कर्कश होती है, उन लोगों पर भी उज्जायी प्राणायाम का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अर्थात् स्वर मधुर तथा हकलाना, तुतलाना खत्म हो जाता है।
- महिलाओं की मासिक धर्म सम्बधी अनिमितता को नियमित करता है।
- नाड़ी तन्त्र को स्वस्थ बनाता है।

13.3.4 – सीत्कारी प्राणायाम –

सीत्कां कुर्यात्तथा वक्त्रे घ्राणेनैव विजृम्भिकाम्।
एवमभ्यासयोगेन कामदेवा द्वितीयकः।। 2/54।।

अर्थात् मुख से सीत्कार (सी, सी की आवाज) करते हुए पूरक करना चाहिए और रेचक केवल नासिका से ही करना चाहिए। इस प्रकार से अभ्यास करते हुए साधक दूसरा कामदेव जैसा हो जाता है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- सर्वप्रथम एक चटाई पर कमर और गर्दन सीधी करते हुए बैठ जाना चाहिए।
- प्राणायाम को करने के लिए ध्यान का कोई भी आसन लगाया जा सकता है, जो साधक के लिए उपयुक्त हो।
- तत्पश्चात् दोनों जबड़ों को आपस में मिलाकर मुंह से पूरक करना चाहिए और थोड़ी देर अन्तः कुम्भक (अन्दर ही श्वास को रोकना) करना चाहिए।
- फिर कुम्भक को हटाकर दोनों नासा छिद्रों से रेचक करना चाहिए।
- अभ्यास क्रम को बड़ाने के लिए पुनः अभ्यास प्रक्रिया को दोहराए, यही सीत्कारी प्राणायाम की सामान्य विधि हैं।
- इस प्राणायाम को करने का समय प्रातः काल का ही होना चाहिए, क्योकि पूरक की प्रक्रिया मुंह के द्वारा बतायी गयी है।

लाभ –

- इस प्राणायाम के नियमित अभ्यास से साधक का भूख एवं प्यास पर नियन्त्रण होने लगता हैं।
- सामान्यतः यह माना जाता है कि इस प्राणायाम से शारीरिक गर्मी को कम करने के लिए किया जाता है।

- इसके नियमित अभ्यास से मांस पेशियों में शिथिलता आती है तथा मन शान्त होता है।
- ग्रीष्मकाल में यह प्राणायाम बहुत ही लाभकारी है।
- उच्च रक्तचाप को कम करता है तथा उदर की अम्लता को भी शान्त करता है।
- ग्रीष्म कालीन ऋतु में जिन लोगों को अधिक पसीना आता है, उन लोगों के लिए भी लाभकारी प्राणायाम है।

13.3.5 – शीतली प्राणायाम –

जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत् कुम्भसाधनम्।
शनकैर्घ्राणरन्ध्राभ्यां रेचयेत् पवनं सुधीः।। 2/57।।

अर्थात् जीभ को दोनों ओर से मोड़कर, परनाले की तरह विशेष स्थिति में लाकर फिर उसके द्वारा वायु अन्दर खींचकर पहले की तरह कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए। पश्चात् बुद्धिमान (साधक) को धीरे – धीरे नासिका छिद्रो द्वारा वायु का रेचक करना चाहिए।

वर्तमान प्रचलित विधि –

नोट – शीतली प्राणायाम की परम्परिक विधि और वर्तमान प्रचलित विधि में कोई भी परिवर्तन नहीं है। प्रिय विद्यार्थियों अभी तक आप जितनी भी विधियॉ पढ़ रहे थे सभी में थोड़ा सा बदलाव आपने देखा, परन्तु कुछ ऐसी भी विधियॉ है जिनमें विल्कुल भी परिवर्तन नहीं है, उन्ही विधियों (प्राणायाम की विधि) में से एक विधि शीतली प्राणायाम की है, जो निम्नलिखित है।

- सर्वप्रथम किसी मैट पर बैठते है तथा कमर, गर्दन को सीधे रखते हुए आखों को बन्द करते है।
- अब जीभ या जीवह्मा को बाहर निकालते हुए परनाले के समान करते है।
- तत्पश्चात् मुख से ही वायु का पान करते है तथा कुम्भक लगाते है।
- फिर धीरे – धीरे कुम्भक को हटाते हुए नासिका से वायु का रेचक करते है।

लाभ –

- यह प्राणायाम मानसिक एवं भावनात्मक उत्तेजनाओ को शान्त करता है, तथा पूरे शरीर में प्राण के प्रवाह को निर्बाध बनाता है।
- इस प्राणायाम के अभ्यास से अजीर्ण, कफ और पित्त की बिमारी में लाभ मिलता है।
- शीतली प्राणायाम के नियमित अभ्यास से भूख एवं प्यास पर भी नियन्त्रण प्राप्त होता है।
- अन्य वे सभी लाभ जो सीत्कारी प्राणायाम द्वारा प्राप्त होते है, वे सब लाभ भी प्राप्त होते है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

- **बहुविकल्पीय प्रश्न –**

1. हठपदीपिका में कुम्भक के प्रकार बताए गए है –
   a- 7 b- 5

c- 8 d- 9

2. सूर्यभेदन प्राणायाम किस ऋतु में करना नितान्त आवश्यक है।

a- ग्रीष्म ऋतु b- शीत ऋतु

c- बसन्त ऋतु d- वर्षा ऋतु

3. उज्जायी प्राणायाम का सबसे ज्यादा प्रभाव किस अंग पर पड़ता है।

a- त्वचा पर b- गले पर

c- पेट पर d- कानों पर

4. थायराइड का सन्तुलन बिगड़ने पर किस प्राणायाम को करने से लाभ मिलता है।

a- उज्जायी प्राणायाम b- सूर्यभेदन प्राणायाम

c- कपालभांति प्राणायाम d- भस्त्रिका प्राणायाम

- **रिक्त स्थानों की पूर्ति करो –:**

(1) भ्रामरी प्राणायाम का सबसे ज्यादा प्रभाव .... पर आता है।
(2) सीत्कारी प्राणायाम के नियमित अभ्यास से ....पर नियन्त्रण प्राप्त होने लगता है।
(3) हठ प्रदीपिका में .... उपदेशों का वर्णन किया गया है।
(4) सूर्यभेदन प्राणायाम के अभ्यास को .... में अच्छा माना गया है।

- **सत्य एवं असत्य को इंकित करे –:**

(1) कुम्भक तथा प्राणायाम में अन्तर है। (..........)
(2) दमा के रोगी के लिए लाभकारी प्राणायाम भस्त्रिका है। (...........)
(3) उच्च रक्तचाप के रोगी को नियमित अनुलोम – विलोम प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिए। (...........)
(4) शीतली प्राणायाम करने पर सीं – सीं की ध्वनि प्रतीत होती है। (...........)
(5) प्राणायाम को नियमित करने पर रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। (...........)

13.4 सारांश

प्रिय पाठकों प्रस्तुत इकाई में आपने हठप्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों का वर्णन किया। उक्त पॉच प्राणायामों में दो प्राणायाम (शीतली एवं सीत्कारी) ऐसे भी है, जिनमें श्वसन में पूरक की क्रिया प्रक्रिया मॅुह के द्वारा बतायी गयी है जबकि अन्य प्राणायामों में पूरक की प्रक्रिया नासिका के द्वारा ही बतायी गयी है। नासिका द्वारा श्वसन करने पर श्वास छन कर हमारे फेफड़ों पर पहॅुचती है, तथा मुह द्वारा पूरक करने पर सीधे ही फेफड़ों तक पहॅुचती है। इसलिए शीतली एवं सीत्कारी प्राणायाम में वातावरण का अवश्य ध्यान रखें।
प्रिय विद्यार्थियों प्राणायाम वह प्रक्रिया है, जिसमें शरीर में ऊर्जा का विकास होता है, तथा (वात, पित्त, कफ) त्रिदोष साम्यावस्था में रहते है। किन्तु विशेष निर्देश के साथ ही अभ्यास करे। आज वर्तमान समय में प्राणायाम नितान्त आवश्यक हो गया है। यदि योग विद्या को आज भी नहीं अपनाया गया तो स्वयं को स्वस्थ रख पाना बहुत ही मुश्किल हो जायेगा। इसलिए नियमित प्राणायाम का अभ्यास कर औरों को भी स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करे।

13.5 – शब्दावली

- इड़ा – बाया स्वर
- पिंगला – दांया स्वर

- अनुलोम – सीधा
- विलोम – उल्टा
- बाह्यय कुम्भक – बाहर श्वास रोक देना
- अन्तः कुम्भक – अन्दर श्वास रोक देना
- आभा – चमक
- ग्रीष्म काल – गर्मी की ऋतु

13.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

- **बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर –:**

1. a
2. b
3. d
4. a

- **रिक्त स्थानों की पुर्ति करो –:**

(1) मस्तिष्क
(2) प्यास
(3) पंच उपदेशों
(4) शीत ऋतु

- **सत्य और असत्य को इंगित कर –:**

(1) असत्य
(2) सत्य
(3) असत्य
(4) असत्य
(5) असत्य

13.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति ।
2. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।
3. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती– प्राण, प्राणायाम प्राण विद्या बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।

13.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शीतली एवं सीत्कारी प्राणायाम की विधि लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए ?
2. हठ प्रदीपिका में वर्णित किन्ही दो प्राणायामों की विधियों की विस्तृत विवेचना कीजिए ?

इकाई – 14 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों की विधि व लाभ – भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा व प्लावनी प्राणायाम

14.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने नाड़ीशोधन ,सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी तथा शीतली प्राणायामों की विधि एवं लाभों का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप हठप्रदीपिका में वर्णित भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा, प्लावनी कि विधि व लाभों का विस्तार पूर्वक अध्ययन करेगें।

14.2 उद्देश्य

- हठप्रदीपिका में वर्णित शेष चार कुम्भकों को जान सकेंगे।
- प्राणायामों की अन्य विधि से भली – भांति परिचित हो सकेंगे।
- प्राणायामों का भली – भांति विश्लेषण कर सकेंगे।
- प्राणायामों का लाभों को आसानी से समझ सकेंगे।
- प्राणायाम की पारम्परिक विधि एवं वर्तमान विधि के अन्तर को जान सकेंगे।

14.3 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित प्राणायामों की विधि व लाभ –

प्रिय विद्यार्थियों इससें पूर्ववत् इकाई में आपने प्रारम्भ के चार कुम्भको का वर्णन किया था। प्रस्तुत इकाई में अन्त के चार कुम्भको का वर्णन कर सकेंगे। जिसमें पुनः आपको पारम्परिक एवं वर्तमान प्रचलित विधि दोनों का परिचय दिया जाएगा। जिससे आप प्राणायामों की दोनो ही प्रकार की विधियों से अवगत हो सकेंगे।

जिज्ञासु विद्यार्थियों अब आपको प्राणायाम के प्रकारों का पुनः वर्णन किया जा रहा है। अतः भली – भांति प्राणायाम को समझने का प्रयास करें। प्राणायामों के प्रकारों का वर्णन निम्नलिखित है –

14.3.1 – भस्त्रिका प्राणायाम –

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छाप्लाविनीत्यष्ट कुम्भका।। 2/44।।

अर्थात् सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी ये आठ प्रकार के कुम्भक होते है। हठप्रदीपिका में भस्त्रिका प्राणायाम को परिभाषित करते हुए स्वात्माराम जी कहते है यथा –

सम्यक् पद्मासनं बद्ध्वा समग्रीवोदरं सुधीः।
मुखं संयम्य यत्नेन प्राणं घ्राणेन रेचयेत्।। 2/60।।

अर्थात् भली प्रकार पद्मासन लगाकर बुद्धिमान साधक गर्दन और उदर (शरीर) सीधा रखे, मुख को बन्द कर यत्नपूर्वक वायु को थोड़ी आवाज के साथ नाक से छोड़े, जिससे वायु स्पर्श का अनुभव हृदय कमल, कण्ठ और कपाल पर्यन्त हो। पश्चात् वायु को हृदय कमल तक वेगपूर्वक आवाज के साथ पूरित करें, फिर छोड़े। इस प्रकार साधक को बार – बार पूरक रेचक करना चाहिए।

वर्तमान विधि के अनुसार –: वर्तमान में भस्त्रिका प्राणायाम को करने की तीन विधियॉ बतायी गयी है, जो निम्नलिखित है –

- तीव्र गति – अभ्यास को जल्दी करना।
- मध्यम गति – अभ्यास को सामान्य गति से करना।
- मन्द गति – अभ्यास को हल्की गति से करना।

इन तीनों प्राणायाम को करने की विधि समान ही है बस साधक अपनी शारीरिक स्थिति के अनुसार पूरक एवं रेचक के वेग को कम, ज्यादा कर सकता है।

- सर्वप्रथम किसी भी आसन में कमर एवं गर्दन को सीधा करते हुए आखों को सहजता से बन्द करें।
- अब तर्जनी अंगुली को अंगूठे से स्पर्श करें।
- अब श्वास जिस वेग से अन्दर भर रहे है उसी वेग से बाहर करे। पूरक एवं रेचक एक ही अनुपात में रहें।
- अगर अभ्यास तेज गति से किया जा रहा है तो पूरक एवं रेचक की प्रक्रिया लौहार की धौंकनी समान अर्थात् तीव्र ही होगी।
- ये भ्रस्त्रिका प्राणायाम की वर्तमान में प्रचलित विधि हैं।
- तत्पश्चात् दोनों हाथों को आपस में तीव्र गति से रगड़े अब आखों पर मसाज करें और धीरे –धीरे आंखे खोल दें।

लाभ –

- इस प्राणायाम के अभ्यास से दमा एवं फेफड़े सम्बन्धी अन्य रोगों में लाभ मिलता है।
- निम्न रक्तचाप के रोगी को भी इस प्राणायाम से लाभ मिलता है।
- महिलाओ को प्रसव के दौरान होने वाली पीड़ा में लाभ मिलता है।
- चर्म रोगों को दूर करने में यह उत्तम कोटि का प्राणायाम माना जाता हैं।
- इस प्राणायाम के नियमित अभ्यास से गले सम्बन्धी सूजन तथा कफ में भी आराम पहॅुचता है।
- पाचन तन्त्र को स्वस्थ्य बनाता है, तथा शरीर में ऊर्जा को बढ़ाता है।

14.3.2 – भ्रामरी प्राणायाम –:

वेगाद घोषं पूरकं भृड्.गनादम्
भृड्.गीनादं रेचकं मन्दमन्दम्।
योगीन्द्राणामेवमभ्यासयोगात्
चित्ते जाता काचिदानन्दलीला।। 2/68।।

अर्थात् वेग से भ्रमर गुंजार के समान आवाज करते हुए पूरक करना चाहिए। तत्पश्चात् भ्रमर की गुंजन के समान आवाज करते हुए धीरे – धीरे रेचक करना चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने से उत्तम साधकों के चित्त में एक अपूर्व आनन्द लीला की उत्पत्ति होती है।

वर्तमान प्रचलित विधि –:

- सर्वप्रथम किसी ध्यानात्मक आसन में बैठते हुए आखों को सहजता के साथ बन्द करते है।
- कुछ देर मन को श्वास एवं प्रश्वास की प्रक्रिया पर केन्द्रित करते है।
- अब दोनों हाथों के अंगूठों से दोनों कानों को अच्छी तरह से बन्द करते है जिससे बाहर की कोई आवाज सुनायी न दें।
- तत्पश्चात् तर्जनी अंगुलियों को माथे पर रखते हुए शेष तीनों अंगुलियॉ आखों पर रखते है।
- अब धीरे – धीरे नासिका से पूरक करते है तथा नासिका से रेचक करते हुए मुंह से ओंकार की (नाद) ध्वनि का गुंजार करते है किन्तु मुंह बन्द ही रखते है।
- इसी प्रक्रिया को पॉच से दस बार तक दोहराते है।

लाभ –:

- बर्हिमुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों को अन्तर्मुखी बनाने में विशेष लाभ पहुॅचाता है।
- तनाव तथा तनाव से उत्पन्न होने वाले रोग जैसे उच्च रक्तचाप, अनिद्रा इत्यादि में इस प्राणायाम से लाभ मिलता है।

14.3.3 – मूर्च्छा प्राणायाम –:

पूरकान्ते गाढतरं बद्ध्वा जालन्धरं शनैः।
रेचयेन्मूर्च्छानारव्येयं मनोमूर्च्छा सुखप्रदा।। 2/69।।

अर्थात् पूरक कर लेने के बाद अति दृढ़तापूर्वक जालन्धर बन्ध लगाकर धीरे – धीरे वायु का रेचक करें। यह मूर्च्छन्य नामक कुम्भक मनोमूर्च्छा लाने वाली तथा सुख देने वाली है।

वर्तमान प्रचलित विधि –

- किसी भी प्राणायाम को करने का सबसे अच्छा आसन पद्मासन माना जाता है, इसलिए इस प्राणायाम को करते समय पद्मासन में ही बैठना चाहिए।
- उसके बाद कमर गर्दन को सीधा कर आखों को सहजता से बन्द करते है एवं शरीर को शिथिल बनाते है।
- तत्पश्चात् धीरे – धीरे पूरक करते सिर को छत की तरफ करते है और आखों को खोलते जाते है लगभग 40 अंश के कोण तक ऑखे पूरी तरह खुल जाती है।
- अब आज्ञा चक्र पर आखों को केन्द्रित कर कुम्भक लगाया जाता है।

- तत्पश्चात् कुम्भक को हटाते हुए धीरे – धीरे श्वास को छोड़ते जाते है ओर सामने आते – आते आखों को बन्द कर लेते हैं।
- अभ्यास को दोहराने के लिए इस प्रक्रिया को 4–5 बार करते है किन्तु यदि मूर्च्छा आनी शुरू हो जाए तो प्राणायाम को रोक कर मन को एकाग्र करते है और धीरे – धीरे आखों को खोल देते है।

नोट –: वर्तमान प्रचलित विधि घेरण्ड संहिता के विधि के समान ही है। किन्तु प्रिय विद्यार्थियों आपसे अनुरोध है, कि इस प्राणायाम का अभ्यास अकेले या पुस्तक पढ़कर न किया जाए। उचित मार्गदर्शन में ही अभ्यास करें। क्योंकि यह उच्च अभ्यासों की श्रेणी में भी आता है। इसलिए वर्तमान में यह प्राणायाम बहुत ज्यादा प्रचलित नहीं है। सामान्यतः आठ प्राणायामों को ही वर्तमान में योगाचार्यो के द्वारा कराया जा रहा है। इसलिए आप की सजगता नितान्त आवश्यक है।

लाभ –

- बर्हिमुखी व्यक्तित्व के व्यक्तियों को अर्न्तमुखी बनाने का अच्छा अभ्यास हैं।
- यह एक शक्तिशाली प्राणायाम है, इसकी सिद्धि किया हुआ साधक हमेशा आनन्दानुभूति करता है।
- इसके नियमित अभ्यास से मस्तिष्क क्षेत्र को विश्राम मिलता है।
- जो भी साधक इस प्राणायाम का नियमित अभ्यास करता है और जब वह नियमित साधना में सध जाता है तो स्वतः ही भौतिकवादिता से ऊपर उठने लगता है।
- मूर्च्छा प्राणायाम के अभ्यास मन को स्वतः शान्त होता है तथा धीरे – धीरे चिन्ताएं शून्य में विलीन होती चली जाती है।

14.3.4 – प्लावनी प्राणायाम –:

अन्तः प्रवर्तितोदारमारूतापूरितोदरः।
पयस्यगाधेऽपि सुखात् प्लवते पद्यपत्रवत्।। 2/70।।

अर्थात् (श्वास नालिका द्वारा) उदर को पर्याप्त मात्रा में वायु से पूरी तरह भर ले। ऐसा साधक अथाह जल में भी कमल पत्र के समान सरलता से तैरता है।

वर्तमान विधि –:

- यह एक प्रकार की वायु धौति है।
- जिस प्रकार मुंह से जल पिया जाता है, ठीक उसी तरह इस प्राणायाम में वायु का पान (पिया) किया जाता है।
- वायुपान इस तरह किया जाता है जिससे पेट (उदर) पूरी तरह भर जाए।
- तत्पश्चात् इस तरह डकार ली जाती है कि अन्दर की दूषित वायु बाहर जाए।
- इस प्राणायाम को दोबारा करने के लिए पुनः प्रक्रिया को दोहराना चाहिए।

लाभ –:

- पाचन तन्त्र को स्वस्थ्य बनाने के लिए लाभकारी प्राणायाम है।
- दूषित वायु को दूर कर उदर को हल्का बनाता है।

- उदर के समस्त रोगों को दूर करता है, साथ ही हिस्ठीरिया को दूर करने में भी सहायक है।
- जठराग्नि को प्रदीप्त करता है, तथा कृमि रोगों को दूर करता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

एक शब्द में उत्तर दीजिए।

1. लोहार की धौकनी का सम्बन्ध किस प्राणायाम से है।
2. सर्वाधिक मानसिक शक्ति किस प्राणायाम को करने से वढती है।
3. किस प्राणायाम को करने से वयक्ति मूर्छित हो सकता है।
4. किस प्रणायाम को करने से साधक अथाह जल में भी कमल पत्र के समान सरलता से तैर सकता है।

14.4 – सारांश –

हठप्रदीपिका हठयोग का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। स्वामी स्वात्माराम जी ने हठप्रदीपिका में प्राणायाम का विस्तार से वर्णन किया है। हठप्रदीपिका में प्राणायाम को कुम्भक कहा गया है। प्रस्तुत इकाई में आपने भस्त्रिका ,भ्रमरी ,मूर्च्छा, प्लावनी कि विधि व लाभों का अध्ययन किया जिज्ञासु पाठको को चाहिए कि एक उचित मार्गदर्शन में ही प्राणायामों का अभ्यास करें बिना मार्गदर्शन से उपरोक्त प्राणायामो के नकारात्मक प्रभाव भी पड सकते है।

14.5 – शब्दावली

- इड़ा – बाया स्वर, चन्द्र स्वर
- पिंगला – दांया स्वर, सूर्य स्वर
- बाह्मय कुम्भक – बाहर श्वास रोक देना
- अन्तः कुम्भक – अन्दर श्वास रोक देना
- आभा – चमक
- ग्रीष्म काल – गर्मी की ऋतु

14.6 – अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. भस्त्रिका 2.भ्रामरी 3.मूर्छा प्राणायाम 4.प्लावनी प्राणायाम

14.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वात्माराम कृत – हठ प्रदीपिका कैवल्यधाम श्री मन्माधव योग मंदिर समिति ।
2. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती – आसन, प्राणायाम, मुद्रा बन्ध, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।
3. स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती– प्राण, प्राणायाम प्राण विद्या बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)।

14.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. भस्त्रिका एवं मूर्छा प्राणायाम की विधि लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए ?
2. हठ प्रदीपिका में वर्णित किन्ही दो प्राणायामों की विधियों की विस्तृत विवेचना कीजिए ?

इकाई 15 मुद्रा व बन्ध अर्थ परिभाषा एवं उद्‌देश्य

15.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में सभी पाठक योग के अभ्यास में मुद्रा एवं बन्ध की आवश्यकता से परिचित होने के साथ–साथ इनके अर्थ परिभाषा को भी ठीक से जान पाने में सक्षम होंगे। प्रस्तुत इकाई ये स्पष्ट करेगी कि योग के क्षेत्र में मुद्राओं की एवं बन्धों की क्या भूमिका होती है। ये योग मार्ग में आगे बढ़ने में कैसे सहायक होते हैं। साथ ही आप ये भी जानेंगे कि किस प्रकार से ये उच्च अभ्यास के अन्तर्गत आता है।

हठयोग में मुद्राओं का विशेष महत्व है। शुद्धि क्रिया एवं आसन के द्वारा जब साधक अपने शरीर को विजातीय पदार्थों से रहित कर शुद्ध कर लेता है और साथ ही आसनों के अभ्यास द्वारा शरीर में दृढ़ता प्राप्त करता है तो इसके बाद घरेण्ड मुनि ने मुद्राओं का अभ्यास कर शरीर में स्थिरता लाने की बात कही है। स्वात्माराम जी ने हठप्रदीपिका में आसन एवं प्राणायाम के बाद मुद्राओं का अभ्यास करने की बात को विस्तार से समझाया है।

अतः इससे स्पष्ट होता है कि मुद्रा का अभ्यास आसन एवं प्राणायाम से भी उच्च अभ्यास है। यह अभ्यास प्राणमयकोश एवं मनोमय को प्रभावित कर उनकी ऊर्जा शक्ति को बढ़ाने में सहायक होता है। जैसा कि हम जानते हैं कि हमारे शरीर में अनेकानेक नाड़ियाँ गति करती हैं। यह नाड़ियों में संवेदनाओं की उत्पत्ति होती है। मन, मस्तिष्क पर इसका प्रभाव

पड़ता है। फलतः अनेकानेक परिवर्तन हमें वहाँ देखने को मिलते हैं, जिन पर समय–समय पर हमारा ध्यान जाता है।

प्रारम्भिक काल में योगाभ्यास की विभिन्न विधियाँ बहुत ही गुप्त हुआ करती थी, परन्तु वर्तमान काल में यह विधियाँ बहुत ही प्रचलित हो गई है। आसन प्राणायाम मुद्रा एवं बंध आदि का अभ्यास बहुत ही गुप्त अभ्यास माना जाता था। प्रारम्भ में इन शक्तिशाली एवं प्रभावी अभ्यास का ज्ञान गुरूजन केवल उन्हीं शिष्यों को प्रदान करते थे जो जिज्ञासु एवं समर्पित होते हों। परन्तु यह विद्याऐं समय के साथ–साथ व्यक्तियों के कल्याणार्थ बहुत ही सहजता से उपलब्ध हो जाती है। विशेष रूप से इस नवीन युग में गुप्त रखी जाने वाली विद्याओं का ही अधिक बोलबाला है। योगाभ्यास में मुद्राऐं एवं बन्ध भी विशेष प्रभावकारी एवं शक्तिशाली विद्याऐं हैं। इनके द्वारा सुषुप्त सूक्ष्म शक्तियों की जाग्रति सम्भव होती है।

हठयोगाभ्यास में मुद्राओं का विशेष महत्व है। घेरण्डसंहिता नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ घेरण्ड मुनि द्वारा लिखा गया है जिससे घेरण्ड मुनि राजा चण्डकपालि को योग की शिक्षा दे रहे हैं तथा घेरण्ड संहिता के तीसरे अध्याय में उन्होंने मुद्राओं एवं बन्धों का वर्णन किया है। साथ ही हठप्रदीपिका नामक ग्रन्थ जो कि स्वात्माराम सूरी जी द्वारा लिखा गया है। जिसमें शिवजी, माता पार्वती को योग विद्या की शिक्षा दे रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में मुद्राओं एवं बन्धों का वर्णन विस्तार से किया गया है।

15.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई में आप जान पायेंगे कि –

- मुद्रा का योग में क्या अर्थ है।
- मुद्रा कितने प्रकार की होती है।
- मुद्रा के क्या उद्देश्य हैं।
- मुद्रा का वर्णन योग ग्रन्थों में कहाँ–कहाँ पर किया जाता है।
- बन्ध क्या होता है।
- बन्ध को किस प्रकार से परिभाषित किया गया है।
- बन्धों का क्या उद्देश्य है।
- योग ग्रन्थों में बन्धों का वर्णन कहाँ–कहाँ पर किया गया है।
- योग के अभ्यास में मुद्रा एवं बन्धों की क्या भूमिका है।

15.3 मुद्रा

प्राण जो कि हमारे स्थूल शरीर को जीवन्त बनाये हुए है। जिनके अभाव में हम क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकते। यह शक्ति नाड़ियों के भीतर ही गति करती है। प्राण शक्ति का शरीर में कम होना या अधिक होना शारीरिक और मानसिक शक्ति के कम होने और बढ़ने को प्रभावित करता है। हम कह सकते हैं कि समय–समय पर मन एवं प्राण के क्षेत्र में हलचल होती रहती है, ये विक्षिप्तता एवं चंचलता का सिलसिला निरन्तर हम अनुभव करते रहते हैं। मुद्राओं के द्वारा इस पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है।

15.3.1 मुद्रा का अर्थ – स्थूल रूप से समझें तो चित्त के विशेष भाव को मुद्रा कहते हैं। जिन मुद्राओं का वर्णन हमें योग ग्रन्थों में मिलता है, वे चित्त के विशेष भाव एवं प्राण की अवस्थाओं की द्योतक हैं। मुद्रा की जानकारी एवं अनुभव बहुत कम साधकों को होता है, ये

वो साधक होते हैं जो योग क्षेत्र में बहुत निपुण एवं निरन्तर अभ्यासी होते हैं, तथा इस क्षेत्र में इनकी पकड़ होती है।

भारतीय संस्कृति में नृत्य का अपना अलग महत्व है। उच्च श्रेणी के भारतीय नृत्यों में हम मुद्राओं को देख सकते हैं। नृत्य में तरह–तरह की हस्त मुद्राओं को देखा जा सकता है। हम कह सकते हैं कि भारतीय नृत्यों में मुद्रा हाथों की विशेष अवस्था है जो आंतरिक भावों या संवेदनाओं का संकेत करती हैं। क्रोध के भाव में आंखों, हाथ एवं शरीर द्वारा उसे प्रदर्शित किया जाता है। जिस प्रकार नृत्य की मुद्राओं के द्वारा विभिन्न भावों को प्रदर्शित किया जाता है, ठीक उसी प्रकार योग मुद्राओं द्वारा अंतरंग भावों को प्रकट करके साधक के आध्यात्मिक भावों की ओर संकेत किया जाता है।

सामान्यतः देखा गया है कि यदि कोई साधक किसी मुद्रा का अभ्यास लम्बे समय तक करता है तो वह उस मुद्रा के भाव को प्राप्त कर लेता है, क्योंकि शरीर और मन में उसी प्रकार की स्थिति, उसी प्रकार का उद्वेग या संवेदना उत्पन्न होने लगती है। हम जिस भी शारीरिक स्थिति को अपनाते हैं, वह हमारे तन्त्रिका तन्त्र में एक विशेष प्रकार की संवेदना उत्पन्न कर हमारी मस्तिष्क तरंगों में परिवर्तन लाती है। मस्तिष्क तरंगों से यह परिवर्तन फिर चेतना की स्थिति को प्रभावित करता है, और कुछ समय तक उस विशेष भाव को हम अपने भीतर, अपने मानस में अनुभव करते हैं।

आध्यात्मिक अर्थ में हम कह सकते हैं कि मुखमण्डल के विशेष भावभंगिमा की स्थिति को मुद्रा कहते हैं। जैसे मन्दिरों में विभिन्न मूर्तियां भिन्न–भिन्न मुद्राओं में प्रतिष्ठित की जाती हैं, उसी तरह यौगिक मुद्राऐं भी भिन्न–भिन्न होती हैं।

मुद्रा शब्द को अनेक अर्थों में जाना जा जाता है। जैसे – सामान्यतः (1) व्यवहारिक अर्थ में मुद्रा को रूपये–पैसे के रूप में जाना जाता है। अर्थशास्त्र में इसे विनीमय का साधन कहा जाता है। जिस तरह अर्थशास्त्र में विनीमय हेतु मुद्रा अति आवश्यक है। ठीक उसी तरह योगी के लिये मुद्रा बहुत महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार से भौतिक जीवन में मुद्रा को गोपनीय रखा जाता है ठीक उसी प्रकार यौगिक मुद्राऐं भी अतिगोपनीय होती हैं।

15.3.2 मुद्रा की परिभाषा –

(1) मुदं आनन्दं राति इति मुद्रा

अर्थात् – आनन्द की प्राप्ति जिससे हो उसे मुद्रा कहते हैं।

(2) आसन, प्राणायाम एवं बंध की सम्मिलित वह विशिष्ट स्थिति जिसके द्वारा उच्च आध्यात्मिक शक्ति का जागरण संभव हो, मुद्रा कहते हैं।

15.4 मुद्रा के प्रकार

यौगिक ग्रन्थों में अलग–अलग मुद्राओं का वर्णन मिलता है।

15.4.1 हठप्रदीपिका के अनुसार – हठप्रदीपिका में तृतीय अध्याय के छठे श्लोक में दस मुद्राओं का वर्णन मिलता है जिसका वर्णन इस प्रकार से है –ः

महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।
उड्डीयानं मूलबन्धस्ततो जालन्धराभिधः।।
करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्तिचालनम्।।

– 3/6 हठप्रदीपिका ।।

अर्थात् महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्डीयान, मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालिनी।

तीसरे अध्याय के सातवें श्लोक में आगे वर्णन करते हुए बताया गया है कि आदिनाथ द्वारा बतायी गयी ये दस मुद्राऐं हैं, जो बुढ़ापा और मृत्यु को दूर करने वाली हैं, और आठ प्रकार के ऐश्वर्य को देने वाली हैं। सभी सिद्धों के लिये प्रिय ये मुद्राऐं देवताओं के लिये भी दुर्लभ हैं।

15.4.1 घेरण्ड संहिता के अनुसार – घेरण्ड संहिता के तृतीय अध्याय के प्रथम, द्वितीय, एवं तृतीय श्लोक में 25 (पच्चीस) मुद्राओं का वर्णन मिलता है। जो कि इस प्रकार से हैं–

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम्।
मूलबन्धो महाबन्धो महाबेधश्च खेचरी।। 1 ।।
विपरीतकरी योनिर्वज्रोणि शक्तिचालनी।
ताड़ागी माण्डुकी मुद्रा शाम्भवी पन्चधारणा।। 2 ।।
अश्विनी पाशिनी काकी मातंगी च भुजागिंनी।
पन्चविंशतिमुद्राश्च सिद्धिदा इह योगिनाम्।। 3 ।।

अर्थात् महर्षि घेरण्ड ने कहा – महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डियान बन्ध, जालन्धर बन्ध, मूलबन्ध, महाबन्ध, महाबेध मुद्रा, खेचरीमुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, योनिमुद्रा, वज्रोणि मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, ताड़ागी मुद्रा, माण्डुकी मुद्रा, शाम्भवी मुद्रा, पार्थिवी धारणा, आम्भसी धारणा, आग्नेयी धारणा, वायवीय धारणा, आकाशी धारणा, अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी और भुजंगनी इत्यादि पच्चीस मुद्रायें हैं। ये योगियों के लिये सिद्धि प्रदान करने वाली हैं। प्रस्तुत श्लोक में 25 मुद्राओं के अन्तर्गत 16 मुद्राओं, 5 धारणाओं एवं 4 बन्धों का वर्णन किया गया है। ये मुद्राऐं अणिमा, महिमा, लधिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व वशित्व आदि आठ सिद्धिओं को प्रदान करने वाली होती है। ऐसा ग्रन्थों में वर्णन मिलता है।

15.4.3 शिव संहिता के अनुसार – शिव संहिता नामक हठयोग के ग्रन्थ में भी 11 यौगिक मुद्राओं का वर्णन मिलता है। अभ्यास की दृष्टि से यौगिक मुद्राऐं तीन प्रकार की होती हैं–

(1) प्राणायामिक मुद्रा
(2) अप्राणायामिक मुद्रा
(3) हस्तमुद्रायें

(1) प्राणायामिक मुद्रा – प्राणायामिक मुद्राऐं ऐसी मुद्राऐं होती हैं, जिनमें आसन के साथ–साथ बन्ध एवं प्राणायाम का विशेष संयोग होता है। जो कुण्डलिनी शक्ति जागरण में विशेष सहायक होती है। उदाहरण – महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, विपरितकरणी, अश्वनी मुद्रा, योग मुद्रा, शक्ति चालिनी आदि।

(2) अप्राणायामिक मुद्रा – अप्राणायामिक मुद्राऐं ऐसी मुद्रायें होती हैं जिनमें आसन के साथ बन्ध एवं प्राणायाम की आवश्यकता नही होती है। प्राणायाम के बिना ही दृष्टि को विशेष स्थान पर स्थिर किया जाता है। ये मुद्राऐं भी कुण्डलिनी शक्ति के जागरण में सहायक होती है। उदाहरण – शाम्भवी मुद्रा, खेचरी मुद्रा, अगोचरी मुद्रा, भूचरी मुद्रा, चाचरी मुद्रा, नभोमुद्रा आदि।

(3) हस्त मुद्राऐं – हस्तमुद्राऐं ऐसी मुद्राऐं होती हैं जिनमें हाथ की हथेलियों को मिलाकर या अलग–अलग अंगुलियों के माध्यम में मुद्रा बनायी जाती है। इसमें भी प्राणायाम नहीं किया जाता है। श्वास–प्रश्वास स्वाभाविक ही रखा जाता है।

ये हस्तमुद्रायें भी प्राणतत्व और पंचतत्वों को प्रभावित करती हैं। शरीर में उपस्थित नाड़ियों को प्रभावित कर उनकी संवेदनाओं को प्रभावित करती है।

15.5 बन्ध

बन्ध हठयोग का बहुत ही महत्वपूर्ण अभ्यास है। प्राणायाम एवं मुद्रा दोनों के अभ्यास में बन्ध का प्रयोग किया जाता है। हठप्रदीपिका एवं घरेण्ड संहिता आदि ग्रन्थों में मुद्राओं के अन्तर्गत ही बन्धों का भी वर्णन किया गया है, लेकिन इसमें होने वाली विशेष क्रिया (बांधने की क्रिया) होने के कारण हम इसे भिन्न रूप में भी वर्णन कर सकते हैं।

बन्ध का अभ्यास पूर्ण रूप से शारीरिक अभ्यास है। इस अभ्यास के द्वारा व्यक्ति शरीर के विभिन्न अंगों एवं नाड़ियों के स्थान विशेष में संकुचित कर उनमें नियन्त्रण स्थापित करता है।

शारीरिक स्तर पर नाड़ियों को संकुचित करके सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त विचारों एवं आत्मिक तरंगों में प्रवेश कर ये सूक्ष्म शरीर में उपस्थित चक्रों और ग्रन्थियों पर सूक्ष्म प्रभाव डालने में सक्षम होते हैं यौगिक ग्रन्थों में बन्धों का विशेष महत्व है। विशेष प्रभाव के लिये बन्धों का प्रयोग किया जाता है।

सुषुम्ना नाड़ी जो कि अत्यन्त सूक्ष्म नाड़ी है, इसमें प्राण के स्वतन्त्र प्रवाह में अवरोध उत्पन्न करने वाली ब्रह्म ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि, रूद्र ग्रन्थि ये सभी बन्ध के अभ्यास से खुल जाती हैं। इनके खुलने के कारण प्राण का प्रवाह समस्त नाड़ियों में सुचारू रूप से होता है। सुषुम्ना में भी प्राण प्रवाह उचित रूप से होने लगता है। फलतः आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न होती है। उच्च स्तर के योग अभ्यासी को सुषुम्ना नाड़ी की अनुभूति होती है। ऐसी ही साधना बढ़ने पर चक्रों के जागरण की भी अनुभूति साधक को होती है, इस प्रक्रिया के लिये बन्ध का अभ्यास बहुत ही महत्वपूर्ण एवं सहायक सिद्ध होता है।

15.5.1 बन्ध का अर्थ एवं परिभाषा – बन्ध शब्द का शाब्दिक अर्थ है – बाँधना या कड़ा करना। इसमें शरीर के भिन्न–भिन्न अंगों को धीरे–धीरे परन्तु शक्ति के साथ संकुचित एवं कड़ा किया जाता है। इसलिये इसे बन्ध कहा जाता हैं।

बन्ध द्वारा शरीर के आन्तरिक अंगों की मालिश होती है। उनमें उपस्थित रक्त का जमाव दूर होता है। यह अंग विशेष से सम्बन्धित नाड़ियों की कार्य क्षमता में कार्य को नियमित करती है। फलतः शारीरिक कार्य एवं स्वास्थ्य में उन्नति होती है। बन्ध को परिभाषित करते हुए हम कह सकते हैं कि –

''जिसके द्वारा शरीर के अंग विशेष को बाँधकर वहाँ से आने–जाने वाली संवेदनाओं को रोककर लक्ष्य विशेष की ओर प्रवाहित किया जाता है, उसे बन्ध कहते हैं।''

बन्ध का अभ्यास एक स्नायविक अवरोध है, जो शरीर और मस्तिष्क के भीतर जितनी तन्त्र–तन्त्रिकायें हैं उनमें उत्पन्न हो रही संवेदनाओं को अवरूद्ध कर देते हैं। और दूसरे प्रकार की संवेदना को जाग्रत करते हैं।

आन्तरिक अंगों में जहाँ पर भी संकुचन एवं प्रसारण की क्रिया की जाती है, वह आन्तरिक अंगों से सम्बन्धित प्रक्रियाओं को बदल देती है, संवेग बदल जाते हैं। इससे शरीर में एक विशेष या भिन्न उत्तेजना या शान्ति की अनुभूति होती है, फलतः मानसिक रूप से स्थिरता का आभास होता है।

15.5.2 बंध के प्रकार – यौगिक ग्रन्थों में तीन प्रकार के बन्धों का वर्णन मिलता है। इन तीन बन्धों का सम्मिलित रूप महाबन्ध के नाम से जाना जाता है।

(1) जालन्धर बन्ध
(2) उड्डियान बन्ध
(3) मूलबन्ध
(4) महाबन्ध

(1) जालन्धर बन्ध – जालन्धर बन्ध में गले में उपस्थित नाड़ियों को संकुचित किया जाता है। जिसका प्रभाव सिर, गर्दन, कन्धे की मांसपेशियों एवं नाड़ियों पर पड़ता है। इसकी पूर्ण स्थिति में साधक अपनी चिबुक को कण्ठकूप से लगाता है। बाह्य कुम्भक एवं अन्तः कुम्भक के साथ इस अभ्यास को किया जाता है। इसमें प्राण प्रवाह को निम्नगामी किया जाता है।

(2) उड्डियान बन्ध – उड्डियान बन्ध के अभ्यास में पेट की मांसपेशियों का संकोच किया जाता है। इसमें पेट को अन्दर की ओर खिंचाव देकर पीठ से चिपकाया जाता है, और फिर डायफॉम को झूठी श्वास लेकर ऊपर की ओर खींचते हैं। बाह्य कुम्भक के साथ उड्डियान बन्ध का अभ्यास किया जाता है। इसमें प्राण प्रवाह को ऊर्ध्वगामी किया जाता है।

(3) मूलबन्ध – मूलबन्ध के अभ्यास में गुदा एवं मूत्रेन्द्रिय की मांसपेशियों का संकोच किया जाता है। जब केवल गुदा द्वार की मांसपेशियों का संकुचन किया जाता है तब उसे अश्विनी मुद्रा के नाम से जाना जाता है। और जब केवल मूत्रेन्द्रिय का संकुचन होता है तो उसे वज्रोणि मुद्रा कहा जाता है। मूलबन्ध में इन दोनों का एक साथ संकोच किया जाता है। इसमें प्राण प्रवाह को अधोगामी से ऊर्ध्वगामी किया जाता है।

(4) महाबन्ध – जब तीनों बन्धों को एक साथ किया जाता है, तब उसे महाबन्ध कहते हैं। पहले मूलबन्ध फिर उड्डियान एवं अन्त में जालन्धर बन्ध का अभ्यास किया जाता है। जो लाभ अलग–अलग बन्ध के अभ्यास से मिलता है, वह एक साथ महाबन्ध के अभ्यास से प्राप्त हो जाता है।

उपरोक्त बन्धों के अभ्यास में परिपक्वता आ जाने पर फिर इनको प्राणायाम एवं मुद्रा के साथ जोड़कर किया जाता है। इस प्रकार करने से सामान्य से अधिक लाभ प्राप्त किया जाता है। यौगिक क्रियाओं में इस प्रकार सम्मिलित अभ्यास करने से सुषुप्त शक्ति की जागृति में अधिक लाभ प्राप्त होता है। कुण्डलिनी योग में जिन मुद्राओं एवं बन्धों का अभ्यास किया जाता है। उनसे प्राणमयकोश प्रभावित होता है, और प्राण की गति को परिवर्तित करने का प्रयास किया जाता है। फलतः अभ्यासी का मस्तिष्क प्रभावित होता है, और वह चित्त के भाव विशेष को प्रभावित करता है जिससे व्यक्ति बाह्यमुखी से अन्तर्मुखी होता है।

योगशास्त्र में वर्णित समस्त मुद्राऐं एवं बन्ध संवेदनाओं एवं उत्तेजनाओं को संयमित एवं शान्त बनाते हैं। जिससे अभ्यासी एकाग्र, स्थिर होता है। घरेण्ड मुनि ने मुद्रा का वर्णन विशेष रूप से स्थिरता प्राप्त करने के लिये बताया है।

वेदान्त में कहा गया है कि सब कुछ क्षणिक है, सब माया है। सब भ्रान्ति है। इसे छोड़ो और सत्य को अपनाओ। योग एवं तन्त्र ये बताता है कि जिस स्थिति में अभी तुम हो उसी को सीढ़ी बनाकर आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढ़ो। इन्द्रियों के माध्यम से भी आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त की जा सकती है। जैसे– उन्हे इतना प्रबल बना लो कि मन अपने आप ही स्थिर हो जाये।

15.6 मुद्रा एवं बन्ध का उद्देश्य

घेरण्ड संहिता के तीसरे अध्याय के चौथे एवं पांचवे श्लोक में भगवान शिव पार्वती जी को मुद्राओं की विशेषता बताते हुऐ कहते हैं कि –

मुद्राणां पटलं देवि कथितं तव संनिधौ।
येन विज्ञातमात्रेण सर्व सिद्धिः प्रजायते।। 4 ।।
गोपनीय प्रयत्नेन न देयंयस्यकस्यचित्।

प्रीतिदं योगिनां चैव दुर्लभंमरूतामपि ।। 5 ।।

अर्थात् – हे देवी। मैने तुम्हें मुद्राओं का ज्ञान प्रदान किया। एकमात्र इनका ज्ञान ही सिद्धियों को प्रदान करने वाला है। ये विद्याऐं योगियों को आनन्द देने वाली है। देवताओं को भी ये विद्याएँ सुलभ नहीं है। इन विद्याओं को सदा गुप्त रखना।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि मुद्राओं का अभ्यास साधक को सिद्धि प्रदान कराने वाला है। सिद्धि यौगिक अभ्यास की श्रेष्ठ उपलब्धि होती है। मुद्राओं का उद्‌देश्य आध्यात्मिक ही होता है, ये शरीर में सूक्ष्म प्रभाव डालती है। मुद्राओं के अभ्यास के साथ यदि शारीरिक और मानसिक प्रभाव पड़ता है तो ये सहज ही सम्भव है। जिन उद्‌देश्यों की पूर्ति हेतु मुद्राओं का अभ्यास किया जाता है वे इस प्रकार से हैं –

(1) कुण्डलिनी शक्ति का जागरण – हठयोग में कुण्डलिनी शक्ति का जागरण साधक का लक्ष्य होता है। मुद्रा इसमें विशेष सहायक होती है। सुषुप्तावस्था में पड़ी कुण्डलिनी शक्ति को यौगिक मुद्राओं द्वारा जाग्रतकर ब्रह्मनाड़ी में प्रवेश करा कर उसे ऊर्ध्वगामी बनाया जाता है। ताड़ागी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा आदि मुद्राऐं इसमें सहायक होती हैं। सामान्यतः माना जाता है कि कुण्डलिनी शक्ति हर जीव में होती है पर वह सोई हुयी अवस्था में होती है। इसे जाग्रत करने की आवश्यकता होती है। तभी व्यक्ति की चेतना ऊँची स्तर पर उठ पाती है। जो कि आध्यात्मिक लाभ के लिये आवश्यक भी होता है।

(2) अमृतरस का पान कराना एवं उसकी सुरक्षा – यौगिक ग्रन्थों की मान्यता है कि हमारा सिरो भाग चन्द्र मण्डल है और हमारा उदर भाग सूर्य मण्डल है। चन्द्रमण्डल से निरन्तर अमृतरस टपकता रहता है परन्तु सूर्यमण्डल में गिरने के कारण वह भस्म हो जाता है, उसका लाभ व्यक्ति को नहीं मिल पाता यदि इस अमृत का पान व्यक्ति कर ले या उसको भस्म होने से रोक ले तो अमृत का पूरा–पूरा लाभ व्यक्ति को मिलेगा। जैसे – बुढ़ापे की समाप्ति, जन्म–मरण के चक्रव्यूह से छुटकारा, मृत्यु पर विजय (अमरता) की प्राप्ति।

वैज्ञानिक इसे मास्टर ग्लेण्ड पिट्‌टयूटरी से टपकने वाले हार्मोन्स के रूप में मानते हैं। जालन्धर बन्ध, खेचरी मुद्रा, विपरितकरणी मुद्रा आदि साधक के इस उद्‌देश्य की पूर्ति में सहायक होती है।

(3) प्राणवायु को सुषुम्ना में प्रवेश कराना – मुद्रा एवं बन्धों के माध्यम से ग्रन्थियों को खोलकर प्राण प्रवाह को समुचित रूप से पूरे शरीर में प्रवाहित किया जाता है। मुद्रा एवं बन्धों द्वारा प्राण को स्थान विशेष में रोककर उसे इच्छानुसार क्षेत्र विशेष में प्रवेश कराया जाता है। जैसा कि हम जानते ही हैं कि प्राण केवल नाड़ियों में ही गति करता है। इस प्रकार विशेष अभ्यास द्वारा प्राणवायु को सुषुम्ना में प्रवेश कराया जाता है। फलतः हठयोग के परम उद्‌देश्य की प्राप्ति सम्भव हो पाती है। मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, उड्‌डियान बन्ध, महाबन्ध इसमें सहायक होते हैं।

(4) शिव–शक्ति का संयोग कराना – मुद्राओं के माध्यम से अधोगामी प्राण प्रवाह ऊर्ध्वगामी होता है। नाड़ियों में प्राण का प्रवाह मुद्राओं के माध्यम से इच्छानुसार करने पर कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करना सम्भव हो जाता है। जागृत होने पर यह शक्ति सहस्रार में स्थित पुरूषतत्व शिव से मिलने के लिये ऊर्ध्वगामी होकर प्रबलता से तीव्र वेग से शिव से मिलती है। यह योग की परम स्थिति है। मुद्राओं का अभ्यास इसमें सहायक होता है।

अतः हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार विशेष विधि द्वारा हम अपने भीतर में उत्पन्न संवेदनाओं को तीव्र बनाते हैं, उनका विस्तार करते हैं और विस्तार के बाद अपने आप को उसमें लीन कर लेते हैं। ठीक उसी प्रकार से मुद्राओं द्वारा भी हम अपने शरीर का प्रयोग

करके अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, एवं मनोमय कोश की संवेदनाओं को तीव्र बनाकर अपने को उनके भीतर ले जाते हैं। इसमें मुद्रा एवं बन्ध बहुत सहायक सिद्ध होते हैं।

- **बहुविकल्पीय प्रश्न –**

(1) यौगिक अर्थ में मुद्रा से तात्पर्य है।
(अ) रूपये–पैसे के रूप में (ब) नृत्यों में हाथों की विशेष अवस्था
(स) चित्त की विशेष भाव भंगिमा (द) उपरोक्त सभी

(2) हठप्रदीपिका में कितने मुद्राओं का वर्णन मिलता है।
(अ) नौ (ब) आठ
(स) सात (द) दस

(3) घेरण्ड संहिता के अनुसार मुद्राओं के प्रकार है।
(अ) 25 (ब) 16
(स) 15 (द) 32

(4) शिव संहिता नामक हठयोग के ग्रन्थ में कितनी मुद्राओं का वर्णन मिलता है।
(अ) 12 (ब) 11
(स) 14 (द) 10

(5) मुद्रा एवं बन्धों का प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता है।
(अ) शारीरिक शक्ति के लिए (ब) कुण्डलिनी शक्ति का जागरण
(स) मानसिक व बौद्धिक एकाग्रता के लिए (द) उपरोक्त सभी

- **रिक्त स्थनों की पूर्ति करो –**

(1) घेरण्ड संहिता के .... अध्याय में मुद्रा एवं बन्धों के उद्धेश्यों को स्पष्ट किया गया है।
(2) हठप्रदीपिका में तृतीय अध्याय के .... श्लोक में मुद्राओं कर वर्णन मिलता है।
(3) उच्च स्तर के योग अभ्यासी को .... नाड़ी की अनुभूति होती है।
(4) मुद्रा का अभ्यास .... व .... से भी उच्च अभ्यास है।

सत्य और असत्य को चिन्हित करें –

(1) आसन, प्राणायाम एवं बन्ध की सम्मिलित वह विशिष्ट स्थिति जिसके द्वारा आध्यात्मिक शक्ति का जागरण सम्भव हो, मुद्रा कहते है। (............)
(2) अभ्यास की दृष्टि से तीन मुद्राओं (प्राणायामिक, अप्रमाणिक व हस्तमुद्रा) का वर्णन मिलता है। (............)
(3) ''जिसके द्वारा शरीर के अंग विशेष को बॉधकर बहॉ से आने जाने वाली संवेदनाओं को रोक कर लक्ष्य विशेष की ओर प्रवाहित किया जाता है, उसे बन्ध कहते है।'' (............)
(4) प्राणायाम व मुद्रा दोनों के अभ्यास में बन्ध का प्रयोग नहीं किया जाता है। (............)
(5) हस्तमुद्रायें प्राणतत्व और पंचतत्वों को प्रभावित करती है। (............)

15.7 सारॉश

प्रस्तुत इकाई में आपने मुद्रा एवं बन्ध के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त की। इकाई के समस्त उद्देश्यों की पूर्ति आपने प्रस्तुत पाठ्य–सामग्री को पढ़कर अवश्य प्राप्त की होगी। आगामी इकाई में वर्णित बन्धों एवं मुद्राओं की विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे। अभी आपने केवल इनके अर्थ को एवं उद्देश्य को जाना, और हठयोग में ये किस प्रकार से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं इसके बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त की।

प्रस्तुत इकाई से हमें स्पष्ट होता है कि हठयोग विद्या में संसार और शरीर को माध्यम बनाकर अपने भीतर प्रवेश किया जाता है, जिसमें मुद्रा और बन्ध एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनके अभाव में हठयोग की पूर्णता सम्भव न हो सकेगी।

15.8 शब्दावली

- दृढ़ता – मजबूती
- जीवन्त – प्राणवान (जीवित)
- विक्षिप्त – चंचल, अस्थिर
- सुषुप्त – सोई हुई
- जिज्ञासु – जानने की इच्छा रखने वाला
- अंतरंग – अन्दर के
- संकुचित करना – सिकोड़ना
- प्रसारण – फैलाव
- चिबुक – ढोड़ी
- बाह्य – बाहर
- ऊर्ध्वगामी – ऊपर की ओर जाने वाली
- अधोगामी – नीचे की ओर जाने वाली

15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- **बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर –**

(1). स (2). द (3). ब (4). ब (5). ब

- **रिक्त स्थानों के उत्तर –**

(1) तृतीय (2) छठे (3) सुषुम्ना (4) आसन व प्राणायाम

- **सत्य और असत्य प्रश्नों के उत्तर –**

(1) सत्य (2) सत्य (3) सत्य (4) असत्य (5) सत्य

15.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. घेरण्ड संहिता – स्वामी निरन्जनानन्द
2. हठप्रदीपिका – कुवल्यानन्द
3. हठयोग प्रदीपिका – स्वामी मुक्तिबोधानन्द
4. आसन, प्राणायाम,मुद्राबन्ध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मुद्रा के अर्थ को स्पष्ट करते हुऐ इसका विस्तृत वर्णन करें।
2. बन्ध के अर्थ को समझाते हुऐ इसे परिभाषित करें।
3. मुद्राओं का सन्दर्भ सहित वर्णन करें।
4. मुद्रा एवं बन्ध क्या हैं? इनका विस्तृत परिचय दें।
5. मुद्राओं के उद्देश्यों को स्पष्ट करें।
6. हठयोग में मुद्राओं की भूमिका पर विस्तार से प्रकाश डालें।

इकाई 16 हठयोग प्रदीपिका में वर्णित मुद्राओ की विधि, सावधानियॉ एवं लाभ मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध, उड्डियानबन्धः महाबन्ध

16.1 प्रस्तावना

हठयोग में बन्धो का विशेष महत्व है। आसन प्राणायाम मुद्रा आदि सभी क्रियाओं में बाधों का उपयोग किया जाता है। हठयोग के अभ्यास में उच्च अवस्था को प्राप्त करने के लिए बांधों का उपयोग आवश्यक हो जाता है। प्रस्तुत इकाई में पाठक को इसकी विस्तृत जानकारी प्राप्त होगी ।

16.2 उद्‌देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप जान पायेगें –

- मूलबन्ध उड्डियानबन्ध जालन्धर बन्ध की विधि
- तीनो बन्ध के लाभ के बारे में
- महाबन्ध के अर्थ को
- महाबन्ध के विधि लाभ के बारे में,
- बन्धों के अभ्यास में ध्यान रखने वाली बातो को।

16.3 मूलबन्ध

सामान्यतः प्रारम्भ में विषय से अपरिचित व्यक्ति के मन में विषय को लेकर बहुत सी शंकाऐ उत्पन्न होती है, जिनका समाधान वो जल्द ही चाहता है। प्रस्तुत पाठ्‌य सामग्री को पढ़ने के बाद हर स्तर के व्यक्ति की शंकाओं का समाधान सम्भव होगा वह जान पायेगा कि –

- मूलबन्ध का अर्थ क्या होता है ?
- मूलबन्ध का अभ्यास कैसे किया जाता है ?
- मूलबन्ध के लाभ क्या है ?
- मूलबन्ध को करते समय किन सावधानियॉ का पालन करना चाहिये ?

16.3.1 नामकरण – मूलबन्ध दो शब्दो से मिलकर बना है मूल + बन्ध मूल = आधार या जड़ बन्ध = बांधना। जिस बन्ध में शरीर के जड़ या आधार वाले भाग को बॉधा जाता है उसे मूल बन्ध कहते है।

16.3.2 संदर्भ ग्रन्थ – हठप्रदीपिका के द्वितीय अध्याय के 60 – 62 श्लोक में मूलबन्ध की विधि को इस प्रकार से समझाया गया है।

16.3.3 विधि – एड़ी से सीवनी को दबाकर गुदा का आकुन्चन करना चाहियें। फिर अपानवायु के ऊपर की ओर खीच कर रखने से मूलबन्ध होता है, स्वाभाविक रूप से निम्नगामी अपान वायु को आकुन्चन के द्वारा बलपूर्वक जो ऊपर की ओर ले जाता है, उसे योगियो ने मूलबन्ध कहा है। एड़ी से गुदा को दबाकर बारम्बार बलपूर्वक योनि का आकुन्चन करे इससे वायु ऊपर की ओर चला जाता है।

विधि की प्रथम स्तर की सरल व्याख्या – सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाते है। जैसे पद्मासन, स्वास्तिकासन, सिद्धासन, मूलबन्ध में प्रमुखता सिद्धासन को दी जाती है। क्योंकि इसमें एड़ी का दबाव सीधे मूल आधार पर पड़ता है।

निश्चित आसन पर बैठने के बाद दोनो हाथों को घुटनो के ऊपर ज्ञान मुद्रा या चिनमुद्रा में रखते है। शरीर पूर्णतः शिथिल एवं स्थिर अवस्था में रहेगा। इसके पश्चात् अपना सारा ध्यान एड़ी से मूलाधार (पेरिनियम) में पड़ने वाले दबाव पर लगाते है। साथ ही गुदा और योनि वाले भाग की मांसपंशियो को सफुचित करके ऊपर की आरे खीचते है। इस भाग में भीतर की ओर खीचाव बनाकर फिर मांसपेशियों को ढीला छोडे अपनी क्षमतानुसार जब तक आप आराम से बिना किसी तनाव व परेशानी के इस क्रिया को करने में सक्षम हो इसे लयबद्ध तरीके से करत रहे, एक बार में अधिकतम 20 आवृति करें।

विधि की द्वितीय स्तर की सरल व्याख्या – प्रथम स्तर के अभ्यास में पूर्णतः प्राप्त होने पर इस अभ्यास को थोड़ा और ऊचे स्तर की ओर बढ़ाऐगे। इस विधि में योनि और गुदा की संकुचित की गई मांसपेशियो के संकुचन को कुछ देर तक रोककर रखेंगे, उस अवस्था में क्षमतानुसार बनें रहेगे। श्वास की गति को सामान्य रखेगे। ली जाने वाली श्वास और छोड़ी जाने वाली श्वास में को परिर्वतन नही करेगें। शरीर पूरी तरह से तनाव मुक्त रहेगा। शरीर में अन्यत्र अंगो में किसी प्रकार का कोई भी मांसपेशिय तनाव उत्पन्न न करें। केवल पेरिनियम वाले भाग की मांसपेशियो का संकुचन नियन्त्रण में रहेगा।

क्षमतानुसार संकुचन की स्थिति को बनाऐ रखने के बाद धीरे से मांसपेशियों को ढीला छोड़े। इसके बाद कुछ देर विश्राम करे। 10 बार तक इस प्रक्रिया को आप दोहरा सकते है।

विधि की तृतीय स्तर की सरल व्याख्या – मूलबन्ध अभ्यास की द्वितीय स्तर में पूर्णता प्राप्त करने के बाद अभ्यासी अभ्यास में और आगे बढ़ता है। इसके लिये ध्यानात्मक आसन में दोनो हाथ ज्ञानमुद्रा या चिनमुद्रा में घुटनों के ऊपर रखते है। ऑखे बन्द रहेगी। इसके बाद अपना सारा पेरिनियम वाले भाग में ले जाते है। फिर नाक से श्वास के भीतर की ओर ले फिर पेरिनियम भाग की मांसपेशियो की संकुचित कर ऊपर की ओर खीचते है। क्षमतानुसार इस स्थिति में रूकते है। इसके पश्चात् श्वास की छोड़ते हुऐ मांस पेशियो को भी ढीला छोड़ते है। 10 बार तक इस अभ्यास को दोहराया जा सकता है।

जालन्धर बन्ध के साथ मूलबन्ध का अभ्यास – मूलबन्ध का दीर्घ अभ्यास होने पर इस क्रिया को जालन्धर बन्ध के साथ भी किया जा सकता है। जिसकी विधि इस प्रकार से है। सर्वप्रथम उचित शारीरिक अवस्था ले फिर नाक से श्वास को भीतर की आरे ले और रोके।

जालन्धर बन्ध लगााये फिर मूलबन्ध अभ्यास के तृतीय स्तर को करे। क्षमतानुसार रूके फिर विपरित क्रम में वापस आयेगे। सर्वप्रथम मूलबन्ध छोड़ेगे फिर जालन्धर बन्ध फिर श्वास को नाक से बाहर निकालेंगे। फिर शरीर को शिथिल कर विश्राम अवस्था में आयेगे।

मूलबन्ध का अभ्यास मूलाधार चक्र पर सीधा प्रभाव डालता है। अभ्यास के दौरान अभ्यासी की पूर्ण सजगता इसी स्थान पर होने से लाभ अधिक मिलता है साथ ही अभ्यास भी सही होता है।

16.3.4 सावधानियाँ – मूलबन्ध के अभ्यास से हमें जितना लाभ प्रदान करता है। उसी के साथ – साथ इसके अभ्यास के दौरान कुछ सावधानियॉ भी अभ्यासी को ध्यान में रखनी चाहिये। अन्यथा लाभ के स्थान में हानि भी हो सकती है। अभ्यास के दौरान ध्यान रखने योग्य बातें इस प्रकार से है –

- मूलबन्ध का अभ्यास प्राणायाम के अभ्यास के बाद ही करना चाहिये।
- किताबो में पढ़कर या सुनकर अभ्यास नहीं करना चाहिये।
- जानकार व्यक्ति के सम्पर्क में रहकर अभ्यास करना चाहिये।
- अभ्यास क्रमबन्ध व धीरे–धीरे करना चाहिये।

16.3.5 लाभ – मूलबन्ध के अभ्यास में गुदा और प्रजनन अंग से सम्बन्धित मांसपेशियों परा सीधा प्रभाव पड़ता है। साथ ही इस स्थान से अनेक नाड़िया शुरू होकर सीधे मस्तिक तक जाती है। अभ्यास के दौरान विभिन्न संवेदनाऐं इस भाग पर उत्पन्न होती है जिनके प्रति सजगता हमें ज्यादा लाभ प्रदान करने में सक्षम होती है। मूलबन्ध द्वारा हमें शरीरिक मानसिक और आध्यात्मिक तीनो लाभ प्राप्त होते है जो कि इस प्रकार से है।

शारीरिक लाभ – मूलबन्ध उत्सर्जन तन्त्र एवं प्रजन्नांगो को सीधा प्रभावित करता है। इस प्रक्रिया में होने वाला आकुंचन = प्रकुन्चन इन्हीं की मोसपेशियो को सीधा प्रभावित करती है। कब्ज, अपचन, की समस्या दूर होती है। बवासीर से लाभ मिलता है। ऑते सक्रियता से कार्य करती है। गठियॉ, दमा, ब्रकाइटिस में लाभदायक है। यौन रोगो के उपचार में मूलबन्ध का अभ्यास लाभकारी है। मूलबन्ध के अभ्यास मलमूत्र की अल्पता होती है। वह व्यक्ति की युवावस्था को प्राप्त करता है।

मानसिक लाभ – मूलबन्ध का अभ्यास ऊर्जा मुक्त करने में सहायक है इससे इसका प्रभाव मानसिक और मनोकायिक रोगो परा भी पड़ता है। विषाद की समस्या में लाभदायक है। इसका अन्तः स्रावी ग्रान्थियो में भी प्रभाव पड़ता है। यह क्रिया मस्तिक को भी सीधा प्रभावित करती है।

आध्यात्मिक लाभ – मूलाधार चक्र की जागृति में सहायक है। ब्रहमचर्य पालन एवं वार्यशक्ति वृद्धि में सहायक, कुण्डलिनी शक्ति का जागरण इस प्रक्रिया से सम्भव है। मूलबन्ध का अभ्यास प्राणवायु और अपान वायु को मिलाने में सहायक होता है। साथ ही इस प्रक्रिया द्वारा नाद और बिन्दु को एक किया जा सकता है। यह अवस्था योग की उच्च अवस्था होती है।

मूलबन्ध के अभ्यास से मस्तिष्क की सक्रियता बढ़ती है। साथ ही एकाग्रता, स्थिरता जैसे – 2 बढ़ती जाती है। अभ्यासी के भीतर आध्यात्मक की प्रवृर्ति और बढ़ने लगती है। वह लौकिक से अलौकिक वृर्त्तियो की ओर अग्रसित होने लगता है।

16.4 जालन्धर बन्ध

हठयोग में तीन प्रकार के बन्धो का वर्णन किया गया है। जिनमें से एक जालन्धर बन्ध है। इस बन्ध का प्रयोग सामान्यतः प्राणायाम के साथ भी किया जाता है। जालन्धर बन्ध के बारे में विस्तृत जानकारी इस प्रकार से है –

16.4.1 नामकरण – जालन्धर बन्ध तीन शब्दो से मिलकर बना है। जाल + धर + बन्ध। जाल = गला, धर = धारण करना या ऊपर की ओर खिचना, बन्ध = बॉधना अर्थात इसमें गले में उपस्थित नाड़ियो को दबाव बनाकर ऊपर की ओर खिंचाव देते हुए बॉध देने के कारण इसे जालन्धर बन्ध कहते है। इसमें वायु का आवागमन रूक जाता है। साथ ही चन्द्र मण्डल से टपकने वाले सोमरस को नाभिमण्डल में गिरकर नष्ट होने से भी रोकता है।

16.4.2 संदर्भ ग्रन्थ – हठप्रदीपिक के 69–75 श्लोक तक हमें जालन्धर बन्ध का वर्णन मिलता है। जिसमें इसकी विधि, लाभ का विस्तृत वर्णन हैं। अब हम इसके नामकरण पर प्रकाश डालते है –

16.4.3 विधि – त्रिबन्धो में से ज्यादा प्रयोग में आने वाली जालन्धर बन्ध की विधि इस प्रकार से है – सर्वप्रथम किसी भी ध्यानत्मक आसन में बैठते है। पदमासन्, सिद्धासन या स्वास्तिकासन में से सुविधानुसार आसन में स्थिर व निश्चिल अवस्था में बैठने के बाद सहजता से ऑखो को बन्द करते है। दोनो हाथ ज्ञान मुद्रा में या हथेलियो को घुटनो के ऊपर उल्टा करके रखते है। फिर श्वास प्रश्वास को सामान्य करें। अपनी श्वासो के प्रति सजगता बनाते है, अपना सारा ध्यान श्वास भीतर जाने और बाहर जाने की गति पर एकाग्र करते है। फिर धीरे–धीरे श्वास को भीतर की ओर लेते है, भीतर ही रोककर ढीड़ी को कण्ठकूप से लगते है। इसी स्थिति में कुछ देर क्षमतानुसार रूके रहते है। फिर गर्दन को सीधा करके श्वास को नासिकाद्वार से बाहर निकालते है। फिर कुछ देर शान्त बैठते है, फिर पुनः प्रारम्भ करते है। जालन्धर बन्ध का अभ्यास श्वास को बाहर निकालकर भी किया जाता है। 10 बार तक इस अभ्यास को किया जा सकता है। जालन्धर बन्ध का अभ्यास करते समय एकाग्रता कण्ठकूप (विशुद्धिचक्र) पर बनानी चाहिये।

16.4.4 सावधानियाँ – इस अभ्यास में निम्न बातो का विशेष ध्यान रखना चाहिये – सरवाइकल स्पॉण्डिलाइटिस, उच्चरक्तचाप से पीडित व्यक्ति इसका अभ्यास न करे। हृदय रोगी भी इस अभ्यास को न करे।

16.4.5 लाभ – जालन्धर बन्ध के अभ्यास से जब निरन्तर कण्ठकूप पर ठोड़ी द्वारा दबााव पड़ता है, तब निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते है – कष्ठ सम्बन्धी रोग दूर होत है। थॉराइड–पैराथॉयराइड ग्रथियॉ पर दबाव पड़ने के कारण वे अपना कार्य सुचारू रूप से करती है। जालन्धर बन्ध द्वारा मस्तिष्क से टपकने वाले अमृतरस (सोमरस) की रक्षा होती है। जिसके कारण अभ्यासी बुढ़ापा और मृत्यु को भी दूर करता है। यह अभ्यास मानसिक तनाव, चिंता, क्रोध को दूर करता है। ध्यान से पूर्व इसका अभ्यास करने से लाभ मिलता है। जालन्धर बन्ध में पड़ने वाला दबाव प्राणशक्ति के संचार को बढ़ाता है। टॉन्सिल, कफ, के निवारण में सहायक है। स्वर ग्रान्थियॉ को प्रभावित करता है।

16.5 उडिड्यान बन्ध

16.5.1 नामकरण – उडिड्यान बन्ध दो शब्दो से मिलकर बना है, उड्डियान + बन्ध। उड्डियान = ऊपर उठाना या उड़ना, बन्ध = बॉधना। उड्डियान बन्ध में हम पेट की मांसपेशियो को भीतर की ओर दबाकर ऊपर की ओर खीचते है। साथ ही सुषुम्ना नाड़ी में होने वाले प्राण प्रवाह को ऊपर उठाया जाता है। प्राण रूप में सुषुम्ना के भीतर स्थित पक्षी निरन्तर उड़ान भरता रहता है। इसलिये इसे उड्डियान बन्ध कहते है।

16.5.2 संदर्भ ग्रन्थ – हठप्रदीपिक के तृतीय अध्याय के 54–59 तक उड्डियान बन्ध का वर्णन मिलता है।

16.5.3 विधि – प्रथम विधि सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठते है पद्मासन, सिद्धासन या स्वास्तिकासन। शरीर शिथिल एवं दोनो हथेली घुटनो ऊपर रखते है। नासिक से धीरे–धीरे श्वास को भीतर लेते हुऐ फेफड़ो को वायु से भर देते है। फिर मुँह से पूरी श्वास को बाहर निकालकर पेट की मांसपेशियो को पीठ से चिपका देते है। इसके बाद डायफाम को झूठी श्वास लेते हुए ऊपर की ओर खीचते है। ठोड़ी को कण्ठकूप से लगा देते है। ऐसी स्थिति में हाथो से घुटनो के ऊपर दबाव बना रहेगा। बाह्रय कुम्भक (श्वास को बाहर रोककर) के साथ क्षमतानुसार रूके रहे। इसके पश्चात् गर्दन को सीधा करके श्वास को धीरे–धीरे भीतर की ओर ले तथा सामान्य स्थिति में वापस आ जायेंगे। इस प्रकार से 5 बार तक इसका अभ्यास किया जा सकता है।

द्वितीय विधि – उड्डियानबन्ध को खड़े होकर भी किया जा सकता है। जिसकी विधि इस प्रकार से है। सर्वप्रथम दोनो पैरो के बीच कन्धो के बराबर दूरी बनायेगे। दोनो हाथो को घुटनो के ऊपर रखेगे। इस प्रकार शारीरिक स्थिति के बाद उपरोक्त विधि के अनुरूप ही प्रक्रिया होगी। अन्तिम स्थिति में विश्राम करेंगे। विश्राम खड़े होकर या लेट कर दोनो तरह से आवश्यकतानुसार किया जा सकता है।

16.5.4 सावधानियॉ – उड्डियान बन्ध का अभ्यास करते समय निम्न बातो को ध्यान में रखना चाहिए। गर्भवती महिलाए इस अभ्यास को ना करे। पेट में अल्सर आदि घावो से पीड़ित व्यक्ति इस अभ्यास को न करे। ह्रदय रोगियो के लिए यह अभ्यास वर्जित है। खाली पेट ही करे। ऑतो की समस्या वाले व्यक्ति भी इस अभ्यास को न करे।

16.5.5 लाभ – उडिड्यानबन्ध से अभ्यासी को निम्नलिखित लाभ प्राप्त होतो है – यहा बन्ध पाचन संस्थान की प्रक्रिया को सक्रियता प्रदान करता है। पाचन सम्बन्धी समस्त रोगो को दूर करने में सहायक है कब्ज पेट में कीड़े, अर्जीण अपच आदि समस्याओ को दूर करता है। आते सूचारू रूप से सक्रिय हो जाती है। श्वसन तन्त्र के सभी अंग सक्रिय होते हे। इनकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। ह्रदय की भी मसाज होने से इसकी कार्यक्षमता में भी वृद्धि होती है। आलस्य भी दूर होता है। मणिपूर चक्र की जाग्रति होती है। मृत्यु रूपी हाथी के उड्डियानबन्ध सिंह के समान होता है।

16.6 महाबन्ध

महाबन्ध त्रिबन्ध की उच्च अवस्था है। जिसके अभ्यास से अभ्यासी एक साथ त्रिबन्धो का लाभ प्राप्त करने में सक्षम होता है। हठयोग में महाबन्ध का विशेष महत्व है।

16.6.1 नामकरण – जब तीनो बन्धो (मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, एवं उड्डियान बन्ध) को एक साथ लगाया जाता है, तो उसे महाबन्ध कहा जाता है। हर बन्ध में जब अभ्यासी की दक्षता हो जाती है तब इसके पश्चात् ही वह महाबन्ध का अभ्यास करने के लिए तैयार हो जाता है।

16.6.2 संदर्भ ग्रन्थ – हठप्रदीपिका के तीसरे अध्याय के 18 – 23 श्लोक तक महाबन्ध का वर्णन किया गया है।

16.6.3 विधि – सर्वप्रथम किसी भी आध्यानात्मक आसन में बैठते है, सिद्धासन ज्यादा लाभकारी होता हैं। क्योकि इस आसन का प्रभाव सीधे सीवनी में पड़ने से बन्ध में लाभ मिलता है। दोनो हथेलियो को घुटनो के ऊपर रखेंगे। आखे सहजता से बन्द कर शरीर

को शिथिल करेगें। अपनी एकाग्रता श्वास–प्रश्वास की गति पर बनायेंगे श्वासो की गति सामान्य करेगे। इसके पश्चात् धीरे–धीरे नासाद्वार से श्वास को भीतर की ओर लेगे। तत्पश्चात् श्वास को मूह से बाहर की ओर निकालकर बाहर ही रोक देगे। क्रमशः मूलबन्ध, उड्डियान बन्ध एवं जालन्धर बन्ध लगायेंगे। ऑखे बन्द रखकर चेतना को मूलाधार, मणिपूर, विशुद्धि चक्रो पर क्रमबद्ध लगायगे। क्षमतानुसार श्वास को रोकने के पश्चात् गर्दन को सीधा कर धीरे–धीरे श्वास को भीतर लेगे फिर उड्डियान बन्ध छोड़ेगे। इसके बाद मूलबन्ध को छोड़कर सामान्य स्थिति में आयेगे। श्वास–प्रश्वास सामान्य करने के पश्चात् विश्राम करेगे। महाबन्ध की 5 आवृत्ति प्रारम्भ की जा सकती है। फिर धीरे–धीरे इसे 10 तक बढ़ाया जा सकता है।

16.6.4 सावधानियॉ – महाबन्ध के अभ्यास में कुछ सावधानियॉ का विशेष ध्यान रखना जरूरी होता है जो कि इस प्रकार से है– महाबन्ध का अभ्यास मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध ओर उड्डियान बन्ध में पूर्णता प्राप्त होने के बाद ही करना चाहिये। हृदय रोग एवं उच्च रक्तचाप का निम्न रक्तचाप से ग्रसित व्यक्तियों को इसका अभ्यास नही करना चाहिये। हर्निया, अल्सर, ऑतो की सूजन से पीड़ित व्यक्ति भी इसका अभ्यास न करे। गर्भवती महिलाओं के लिये यह अभ्यास वर्जित है। चूकि इस अभ्यास में उपरोक्त वर्णित तीनो बन्धो को किया जाता है इसलिये इनमें बताई गई समस्त सावधानियॉ को महाबन्ध में भी ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।

16.6.5 लाभ – महाबन्ध से मूलबन्ध उड्डियान बन्ध एवं जालन्धरबन्ध तीनो की लाभ प्राप्त होते है। सहश्रार से टपकने वाले सोमरस का भी पूरा लाभ महाबन्ध से प्राप्त होता है। विशुद्धि चक्र, मणिपूर चक्र और मूलाधार चक्र की जागृति में भी से सहायक है। महाबन्ध का अभ्यास काल के बन्धन से मुक्त करने में सहायक है। मन को एकाग्र करने मानसिक शान्ति प्राप्त कराने में यह क्रिया सहायक है। ध्यान से पूर्व इसका अभ्यास लाभदायक होता है।

अभ्यास प्रश्न

- **बहुविकल्पीय प्रश्न –**

(1) निम्न में से मूलबन्ध का सम्बन्ध है?
 (अ) उदर प्रदेश से (ब) सीवनी प्रदेश से
 (स) कण्ठ प्रदेश से (द) तीनों में से कोई नहीं।

(2) हठप्रदीपिका में जालन्धर बन्ध का वर्णन कौन से श्लोक में मिलता है?
 (अ) 59 से 65 (ब) 65 से 69
 (स) 69 से 75 (द) 75 से 79।

(3) महाबन्ध लगाने का सही क्रम क्या है?
 (अ) जालन्धरबन्ध, उड्डियानबन्ध, मूलबन्ध (ब) जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध, उड्डियानबन्ध
 (स) मूलबन्ध, उड्डियानबन्ध, जालन्धरबन्ध (द) उड्डियानबन्ध, जालन्धरबन्ध, मूलबन्ध।

(4) उड्डियानबन्ध के अभ्यास से सबसे अधिक प्रभाव किस चक्र पर पड़ता है?
 (अ) मणिपूर चक्र (ब) अनाहत चक्र
 (स) मूलाधार चक्र (द) विशुद्धि चक्र।

(5) महाबन्ध का अभ्यास उपरोक्त में से किसे नहीं करना चाहिए?
 (अ) हर्निया व अल्सर रोगी को (ब) हृदय रोग व उच्च रक्तचाप के रोग में
 (स) गर्भवती महिलाओं को (द) उपरोक्त सभी को।

- **रिक्त स्थनों की पूर्ति करो –**

(1) महाबन्ध का अभ्यास .... कुम्भक में किया जाता हैं।
(2) तीनों बन्धों का सम्मिलित अभ्यास .... कहलाता है।
(3) हठप्रदीपिका के .... अध्याय में उड्डियान बन्ध का वर्णन मिलता है।
(4) मूलबन्ध के अभ्यास में .... और .... से सम्बन्धित मॉसपेशियों पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

- **सत्य और असत्य को चिन्हित करें –**

(1) महाबन्ध का अभ्यास तीनों बन्धों के साथ नहीं किया जाता। (...........)
(2) उड्डियान बन्ध का सम्बन्ध उदर प्रदेश से है। (...........)
(3) महाबन्ध का अभ्यास हृदय रोगियों तथा उच्च रक्तचाप के रोगियों के लिये लाभदायक है। (...........)
(4) जालन्धर बन्ध का अभ्यास विशुद्धि चक्र को प्रभावित करता है। (...........)

16.7 सारॉश –

उपरोक्त वर्णित त्रिबन्धो के अध्ययन से हमें इनकी महत्ता का पता चलता है साथ ही हम जान पाते है कि इनका अभ्यास योग में आगे बढ़ने वाले अभ्यासी के लिये कितना महत्वपूर्ण है। यहॉ त्रिबन्धो एवं महाबन्ध की विधि को बहुत ही सरल भाषा में वर्णित किया गया है। त्रिबन्धो एवं महाबन्ध से होने वाले लाभो को विस्तार से समझाया गया है ताकि क्रिया का प्रभाव क्या होता है इसे समझा जा सके और इसकी महत्ता से परिचित हो सके। साथ ही इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण अभ्यास ध्यान रखने योग्य बातें, जिन्हें हम सावधानियॉ कहते है। उन्हें भी समझाया गया है। अभ्यास में यदि सावधानिया का ध्यान न रखा जाए तो लाभ के स्थान पर हानि होने की सम्भावना अधिक हो जाती है। इसलिये उचित लाभ हेतु इनका विशेष ध्यान रखा जाता है।

उपरोक्त वर्णित समस्त क्रिया विधि से परिचित होकर सावधानियो के साथ समस्त लाभो को प्राप्त किया जा सकता है। योगाभ्यास में इनका विशेष महत्व है।

16.8 शब्दावली

- पेरिनियम = सीवनी।
- संकुचन = सिकुड़ना।
- विपरीत = उल्टा।
- श्वास प्रश्वास = नाक द्वारा भीतर जाने वाली हवा व बाहर आने वाली हवा
- सक्षम = समर्थ।
- अल्पता = न्यूनता।
- कुण्डलिनी शक्ति = प्रचण्ड ऊर्जा शक्ति, जो सर्प के समान 3, 1/2 फेरे लगाकर अपनी पूंछ को अपने मुख से दबाकर मूलाधार चक्र में सुषुप्तावस्था में पड़ी होती है।
- लौकिक = सांसारिक।
- अलौकिक = संसार से परे।

- सुषुम्ना नाड़ी = यह इड़ा, पिंगला से भी सुक्ष्म नाड़ी होती है, इन दोनो के सम होने पर ही यह जागृत होती है।
- त्रिबन्ध = मूलबन्ध। (जालन्धर बन्ध एवं उड्डियान बन्ध इन तीनो को त्रिबन्ध के नाम से पुकारा जाता है)

16.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

- **बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर –**

(1). ब (2). स (3). अ (4). द

- **रिक्त स्थानों के उत्तर –**

(1). बाहय (2). महाबन्ध (3). तृतीय (4). गुदा, प्रजनन

- **सत्य और असत्य प्रश्नों के उत्तर –**

(1). असत्य (2). सत्य (3). असत्य (4). सत्य

16.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हठप्रदीपिका – स्वात्माराम सूरी,
2. घरेण्ड संहिता – स्वामी निरंजना नन्द,
3. आसन प्राणायाम मुद्राबन्ध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती।

16.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मूलबन्ध के अर्थ को समझाते हुऐ, इसके लाभ तथा सावधानियों का वर्णन करो।
2. जालन्धरबन्घ के अर्थ को बताते हुए इसके लाभ व सावधानियों का वर्णन करों।
3. उड्डियान बन्ध से आप क्या समझते है इसका विधि लाभ व सावधानियो को समझाऐ।
4. हठयोग में वर्णित महाबन्ध की महत्ता पर प्रकाश डालते हुऐ इसका विस्तृत वर्णन करें।

इकाई 17 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित मुद्राओं की विधि सावधानियां व लाभ– महामुद्रा, महावेध, खेचरी मुद्रा

17.1 प्रस्तावना –

हठयोग मे मुद्राओं का अभ्यास साधक को दिव्यशक्ति सम्पन्न बनाने में बहुत ही सहायक होता है। प्राणशक्ति का उच्च प्रवाह साधक की सुषुप्त क्षमताओं को जाग्रत करता है। जिसके फलस्वरूप साधक सामान्य से विशिष्टता की ओर अग्रसित होता चला जाता है।

हठयोग के ग्रन्थों में अनेकों मुद्राओं की चर्चा मिलती है जो योग में आगे बढ़ने वाले जिज्ञासुओं को उसके लक्ष्य तक पहुंचाने में सहायक होती है। जिनमें से हठप्रदीपिका में 10 मुद्राओं का एवं घरेण्ड संहिता में 24 मुद्राओं का वर्णन मिलता है। जिनमें से निम्नलिखित 3 मुद्राओं का वर्णन इस प्रकार से है –

(1) महामुद्रा (2) महाबेधमुद्रा (3) खेचरी मुद्रा

17.2 उद्धेश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप जान पायेंगे महामुद्रा महाबेधमुद्रा एवं खेचरी मुद्रा को किस तरह किया जाता है। उपरोक्त मुद्राओं के अभ्यास से क्या लाभ हैं। उपरोक्त मुद्राओं को करते समय किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिये।

17.3 महामुद्रा

17.3.1 नामकरण – हठयोग में वर्णित समस्त मुद्राओं में श्रेष्ठ होने के कारण इसे महामुद्रा कहा जाता है। महाक्लेश आदि दोष तथा मृत्यु के भय को दूर करने की क्षमता रखने के कारण ही इसे महामुद्रा कहते हैं।

साथ ही महामुद्रा दो शब्दों से मिलकर बनी है–: महा + मुद्रा। महा का अर्थ उच्चतम से लगाया जाता है और मुद्रा का अर्थ मानसिक वृत्ति से। इस प्रकार मानव चेतना को उच्चतम शिखर में गमन करने के कारण इसे महामुद्रा कहते हैं।

17.3.2 सन्दर्भ ग्रन्थ – हठयोग के प्रसिद्ध ग्रन्थ हठप्रदीपिका में तीसरे अध्याय के 9–17 श्लोक तक महामुद्रा का वर्णन किया गया है।

17.3.3 विधि – हठप्रदीपिका में महामुद्रा की विधि इस प्रकार से बताई गई है –: बायें पॉव की एड़ी से सीवनी को दबायें तथा दाहिने पॉव को फैलाकर उसे दोनों हाथों से दृढ़ता से पकड़ें। तब जालन्धर–बन्ध करके वायु को ऊपर की ओर ले जाकर कुम्भक करें। जिस

प्रकार डंडे की मार खाकर सांप डंडे की आकृति वाला हो जाता है अर्थात सीधा हो जाता है उसी प्रकार महामुद्रा करने से कुंडलिनी शक्ति सहसा सीधी हो जाती है।
इसके फलस्वरूप दोनों नासापुटों से सम्बन्धित क्रियाशीलता समाप्त प्रायः हो जाती है। इसके बाद साधक को धीरे–धीरे श्वास छोड़ना चाहिये। कभी भी वेग से ना छोड़ें। महासिद्धों द्वारा बताई गई यह महामुद्रा है।
घेरण्ड संहित के तीसरे अध्याय के 29–31 श्लोक में भी इस मुद्रा का वर्णन मिलता है जो इस प्रकार से है–
बाई एड़ी से गुदा प्रदेश को दबाएं और दाहिने पैर को फैलाकर उसकी अंगुलियों को हाथ से पकड़े और कंठ को सिकोडकर भोहो के मध्य पर दृष्टि लगाए रखें। यह महामुद्रा कहलाती है । इसके अभ्यास से कफ, कब्ज, प्लीहा वृद्धि, जीर्ण ज्वर तथा अन्य रोग ठीक होते हैं और शरीर स्वास्थ्य प्राप्त करता है।
उपरोक्त वर्णित विधि को सरल रूप में इस प्रकार से समझा जा सकता है –

- सर्वप्रथम दोनों पैरों को मिलाकर सीधे सामने की ओर सीधा रखकर दोनों हाथों को जंघा के बगल में रखकर दण्डासन की स्थिति में बैठ जाते हैं।
- इसके पश्चात् हाथ की सहायता से बाँयें पैर के पंजे को पकड़के उसकी एड़ी को सीवनी (पेरीनियम) में लगायेंगे।
- दायाँ पैर सीधा सामने की ओर रहेगा।
- उसके बाद नासिका से श्वास बाहर निकालते हुए दोनों हाथ से आगे झुककर दाँयें पैर के पंजे को पकड़ेंगे।
- इसके पश्चात् गर्दन को ऊपर उठाते हुए श्वास को भीतर लेते हैं। जालन्धरबन्ध और मूलबन्ध को लगाते हैं।
- क्षमतानुसार श्वास को भीतर रोकते हैं।
- इसके बाद जालन्धरबन्ध एवं मूलबन्ध छोड़ते हैं। श्वास को धीरे–धीरे बाहर की ओर निकाल देते हैं।
- बाँयी ओर अभ्यास पूर्ण होने के बाद दाहिनी ओर से इसी प्रक्रिया को दोहराते हैं।
- एक बार श्वास को पूरा भीतर की ओर लेने के बाद जब पूर्ण रूप से रेचक किया जाता है तो ये महामुद्रा का एक चक्र होता है।
- घेरण्ड मुनि ने महामुद्रा के अभ्यास में शाम्भवी मुद्रा को भी जोड़ा है। चक्रों में विशुद्धि चक्र, मूलाधार चक्र और आज्ञाचक्र में चेतना को कुम्भक की अवस्था में घुमाने को कहा है।
- प्रारम्भ में अभ्यास को एक तरफ से 3 बार तक दोहराकर दूसरी तरफ से भी 3 बार दोहरायें।
- धीरे–धीरे अभ्यास को क्षमतानुसार बढ़ाया जा सकता है। 3 चक्र से लेकर 12 चक्र तक अभ्यास को बढ़ाया जा सकता है।
- महामुद्रा के अभ्यास में ली जाने वाली शारीरिक अवस्था में यदि अभ्यासी को कठिनाई का अनुभव हो तो ऐसी स्थिति में सिद्धासन में भी इस अभ्यास को किया जा सकता है। ध्यान देने योग्य बात बस ये है कि पैर की ऐड़ी से सीवनी में

उचित दबाव पड़ना आवश्यक होता है। बांकि समस्त श्वास प्रक्रिया, कुम्भक एवं बन्ध का अभ्यास उसी प्रकार से होगा।

17.3.4 सावधानियॉ – महामुद्रा का अभ्यास करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये–:

महामुद्रा जैसे की नाम से ही स्पष्ट होता है कि मुद्रा में महान है, श्रेष्ठ है। जिस प्रकार इससे होने वाले लाभ अधिक और प्रभावपूर्ण हैं ठीक उसी प्रकार इसके अभ्यास में अनेकों सावधानियाँ भी रखनी आवश्यक होती हैं। जिससे मुद्रा का सही और पूर्ण लाभ प्राप्त किया जा सके। अभ्यास में ध्यान रखने योग्य बातें इस प्रकार से हैं –:

- महामुद्रा का अभ्यास कुशल व्यक्ति के निर्देशन में ही करना चाहिये।
- सुनकर या किताबों से पढ़कर अभ्यास नहीं करना चाहिये, इससे फायदे के स्थान पर नुकसान भी हो जाता है।
- बन्ध एवं प्राणायाम के अभ्यास के बाद ही मुद्रा का अभ्यास करना चाहिये।
- उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोगी को यह अभ्यास को नहीं करना चाहिये।
- खाली पेट ही महामुद्रा का अभ्यास करना चाहिये।
- शुद्धि क्रिया के पश्चात् मुद्रा का अभ्यास करने से अधिक लाभ की प्राप्ति होती है। अन्यथा विजातीय तत्व शारीरिक स्वास्थ्य में हानिकारक प्रभाव डालते हैं।
- महामुद्रा का अभ्यास शरीर में उच्च प्राण शक्ति को प्रवाहित करता है। यह शक्ति शरीर में ऊर्जा बढ़ती है। गर्मी के रूप में हम इस ऊर्जा को अनुभव कर सकते हैं। अतः अभ्यासी को यह अभ्यास गर्मी के दिनों में नहीं करना चाहिये। अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न होने के कारण यह स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालती है।

17.3.5 लाभ – महामुद्रा का सही अभ्यास अभ्यासी के लिये बहुत ही लाभप्रद रहता है, अभ्यास से होने वाले लाभ इस प्रकार से हैं–:

- महामुद्रा मनुष्यों को महासिद्धि प्रदान करने में सक्षम है।
- यह पाचन शक्ति की वृद्धि में सहायक है।
- यह मुद्रा भयानक विष को पचाने की शक्ति प्रदान करती है।
- गैस, कब्ज, अजीर्ण, अपच सम्बन्धी रोगों को नष्ट करती है।
- गले सम्बन्धी रोग एवं बुखार में जिसका कारण पाचन तन्त्र की गड़बड़ी रहती है, उसमें भी ये लाभ पहुंचाता है।
- इससे टी0 वी0, कुष्ठरोग आदि रोगों में भी लाभ मिलता है।
- यह क्रिया अनुकम्पी और परानुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र के सन्तुलन में सहायक है।
- संवेदी और प्रेरक तन्त्रिका तन्त्रों में इन्द्रियों, शरीर और मस्तिष्क के बीच जो आदान–प्रदान होता है, उसमें शान्ति स्थापित करता है।
- ध्यान की पूर्व तैयारी के रूप में महामुद्रा का अभ्यास बहुत ही लाभप्रद है।

17.4 महावेध मुद्रा

17.4.1 नामकरण – महाबेधमुद्रा मुद्रा तीन शब्दों से मिलकर बनी है। महा+बेध+मुद्रा। महा का अर्थ है श्रेष्ठ या उच्चतम, बेध का अर्थ होता है भेदन करना, मुद्रा का अर्थ परमानन्द की

स्थिति। इस प्रकार महाबेधमुद्रा की प्रकिया में साधक जिस प्रकार एक माला के दानों को सुई से भेदते हुए धागे में पिरोया जाता है ठीक उसी प्रकार से महाबंध मुद्रा में सप्त चक्रों जो कि शरीर में ऊर्जा के केन्द्र के रूप में जाने जाते हैं, का भेदन किया जाता है। यह प्रक्रिया उच्चस्तरीय होती है। और प्रक्रिया की पूर्णता में परमानन्द की प्राप्ति होती है। इसीलिये इस मुद्रा को महाबंध मुद्रा के नाम से जाना जाता है।

17.4.2 सन्दर्भ ग्रन्थ – हठप्रदीपिका के तृतीय अध्याय के 24–30 श्लोक में तथा घेरण्ड संहिता के तृतीय अध्याय के 41–44 श्लोक में हमें महाबंध मुद्रा का वर्णन मिलता है। जिसमें इनका विस्तार से वर्णन किया गया है। ऋषिमुनियों ने अपने–अपने ढंग से इसकी विधि को समझाया और अपने अनुभवों का वर्णन किया है। हठप्रदीपिका में स्वात्माराम सूरी जी ने महाबेधमुद्रा का वर्णन इस प्रकार से किया है–:

रूपलावण्यसम्पन्ना यथास्त्री पुरूषं बिना
महामुद्रामहाबन्धौ निश्फलौ बेधवर्जितौ।
– (3/24 ह0प्र0)

अर्थात् – जिस प्रकार यौवनसम्पन्न सुन्दरी–स्त्री पुरूष के बिना फल रहित है वैसे ही महामुद्रा और महाबन्ध ये दोनों महाबेध के बिना फलहीन है। महाबेधमुद्रा की विधि का ग्रन्थों में अलग–अलग वर्णन मिलता है।

साधक महाबन्ध लगाकर एकाग्रचित्त हो पूरक करके श्वास–प्रश्वास की गति को कण्ठमुद्रा के द्वारा रोककर दोनों हथेलियों को अच्छी तरह जमीन पर लगाकर नितम्ब को हल्के एवं धीरे से भूमि पर पटकें वायु दोनों पुटों को छोड़कर सुषुम्ना में गतिशील होता है।

इडा–पिंगला और सुषुम्ना के स्पन्दन जब आपस में परस्पर मिलते हैं तब अवश्य ही अमरत्व की प्राप्ति होती है। इसके बाद मृतावस्था की स्थिति उत्पन्न होने पर वायु का रेचन करना चाहिये। घेरण्ड संहिता में महाबेध मुद्रा को इस प्रकार से समझाया गया है–

महाबेधमुद्रा के बिना मूलबंध और महाबंध भी उसी तरह निष्फल है जिस प्रकार पुरूष के बिना स्त्री का रूप, यौवन और लावण्य व्यर्थ है। प्रथम महाबंध का अभ्यास कर उड्डियान बंध करते हुए कुम्भक द्वारा वायु को रोके। यही महाबेध मुद्रा कही गई है। नित्य प्रति महाबेध के साथ महाबंध, मूलबंध करने वाले योगी सब योगियों से श्रेष्ठ माने जाते है। उन्हें वृद्धावस्था नहीं घेरती और न मृत्यु का भय ही होता है। योगियों को इसे गोपनीय रखना चाहिए।

17.4.3 विधि –

उपरोक्त विधि को सरल तरीके से इस प्रकार समझ सकते हैं –

1. सर्वप्रथम दण्डासन की स्थिति में बैठते हैं, इसमें दोनों पैर सीधे सामने की ओर रखते हैं तथा दोनों हाथ जंघा के बगल में, कमर, गर्दन सीधी रहेगी।
2. शारीरिक स्थिति लेने के पश्चात् दोनों हाथों की सहायता से पैरों को मोड़ते हुऐ पदमासन की स्थिति में आयेंगे।
3. इसके लिये पहले बायें पैर को मोड़कर दाहिनी जंघा के ऊपर रखेंगे फिर दायें पैर को मोड़कर बायीं पैर की जंघा के ऊपर रखेंगे।
4. इसके पश्चात् दोनों हाथों की हथेली को जंघा के अगल–बगल स्थित करेंगे। इस स्थिति में अभ्यासी का शरीर पूर्णतः शिथिल और मन शांत रहेगा। आँखें बन्द रहेंगी।
5. श्वास – प्रश्वास की स्थिति सामान्य रहेगी।

6. धीरे से गहरी लम्बी श्वास भीतर की ओर लेंगे। श्वास को भीतर ही रोकेंगे। फिर जालन्धर बन्ध लगायेंगे।
7. इसके पश्चात् हथेली पर शरीर का सारा भार नियन्त्रित करते हुए हाथों की सहायता से पूरे शरीर को ऊपर उठायेंगे।
8. अब बन्ध एवं कुम्भक की स्थिति में ही अपने नितम्बों को जमीन में पटकते हैं। बार–बार नीचे पटककर ऊपर उठाते हैं। इस प्रकार 3 से 7 बार तक इस प्रक्रिया को दोहराया जा सकता है।
9. इस क्रिया को करते समय अपना पूरा ध्यान मूलाधार चक्र पर लगाना चाहिये।
10. क्षमतानुसार क्रिया को दोहराने के पश्चात् विश्राम की स्थिति में आते हैं।
11. शरीर को जमीन में रखते हैं। हाथों का विश्राम देते हैं। जालन्धर बन्ध को छोड़ते हैं। श्वास को बाहर निकालते हैं।
12. इसके पश्चात् सामान्य श्वास–प्रश्वास करते है। ये पूरी प्रक्रिया क्रिया का एक चक्र हुआ।
13. विश्राम के पश्चात् सामान्य स्थिति में आने पर क्रिया का अभ्यास पुनः दोहरायें।
14. इस प्रकार से 3 चक्र तक अभ्यास को किया जा सकता है। धीरे–धीरे अधिकतम 5 चक्र तक इसको बढ़ाया जा सकता है परन्तु इससे ज्यादा अभ्यास करने में हानि हो सकती है।
15. अन्तिम चक्र के पश्चात् विश्राम की स्थिति में आयेंगे।
16. आँखों को खोलेंगे, पैरों को सीधा करेंगे। शवासन की स्थिति में लेट जायेंगे।
17. इसके बाद क्रिया के प्रभाव को अनुभव करेंगे।

17.4.4 महावेधमुद्रा में ली जाने वाली सावधानियॉ –

महाबेधमुद्रा का लाभकारी और शक्तिशाली प्रभाव प्राप्त करने के लिये ये आवश्यक है कि मुद्रा को करते समय कुछ महत्वपूर्ण बातों का ध्यान रखा जाये, जिससे अभ्यासी को क्रिया का पूर्ण फल प्राप्त हो और हानि होने की सम्भावनाऐं भी समाप्त हों। ध्यान रखने वाले महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार से हैं –:

1. उच्च रक्तचाप एवं हृदयरोगी इस अभ्यास को न करें।
2. शरीर शुद्धि के बाद ही इस अभ्यास को करना चाहिये। अन्यथा शरीर में फोड़े–फुन्सी आदि समस्या उत्पन्न होने की सम्भावनाऐं बढ़ जाती हैं।
3. गर्मी के दिनों में यह अभ्यास नहीं करना चाहिये।
4. सरवाइकल स्पॉण्डिलाइटिस वाले व्यक्तियों को ये अभ्यास नहीं करना चाहिये।
5. आँतों की सूजन या आँतों से सम्बन्धित रोग वाले व्यक्ति को ये अभ्यास नहीं करना चाहिये।
6. गर्भवती महिलाओं को ये अभ्यास नहीं करना चाहिये।

17.4.5 महाबेधमुद्रा के लाभ – आत्मा से जुड़ने में यह मुद्रा बहुत ही प्रभावकारी और लाभप्रद प्रयोग है। चूंकि बंध शब्द का अर्थ भेदन या छेद करने से लिया जाता है, इसलिये इस मुद्रा में चेतना चक्रों एवं आत्मिक चेतना पथ को बांधा जाता है। इस मुद्रा से प्राप्त होने वाले अन्य लाभ इस प्रकार से हैं–:

1. यह मुद्रा सम्पूर्ण शरीर व मन को स्थिरता व शक्ति प्रदान करती है।
2. यह मुद्रा प्राण का प्रवाह पूरे शरीर में होने में सहायक है।
3. झुर्रीयां, बालों का सफेद होने की समस्या इस मुद्रा से दूर होती है।

4. बुढ़ापा दूर होता है।
5. इसके अभ्यास से साधक मृत्यु पर भी विजय पा लेता है।
6. इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है। पाचन सम्बन्धी गड़बड़ी दूर करने में यह मुद्रा सहायक है।
7. अष्टसिद्धियाँ प्रदान करने में यह मुद्रा सहायक है।
8. नियमित अभ्यास करने वाले के समस्त पाप इससे दूर हो जाते हैं। और वो पुण्यों को प्राप्त करता है।
9. यह मुद्रा मूलाधार चक्र, मणिपुर चक्र एवं विशुद्धि चक्र को विशेष रूप से प्रभावित करती है।
10. ध्यान से पूर्व इस मुद्रा का अभ्यास करने से लाभ मिलता है।
11. यह मुद्रा शारीरिक, मानसिक और प्राणिक स्तर पर बहुत ही प्रभावकारी है।
12. महामुद्रा के साथ महाबंध मुद्रा का अभ्यास करने पर शरीर मन और इन्द्रियों के अन्दर एक नयी शक्ति का प्रवाह होने लगता है।
13. चेतना सूक्ष्म और गहरी हो जाती है।
14. ग्रन्थों में कहा गया है कि जो प्रतिदिन नियमित रूप से महाबन्ध, मूलबन्ध तथा का महाबेध मुद्रा अभ्यास करता है वह योग विशेषज्ञ कहलाता है।

17.5 खेचरी मुद्रा

हम जानते हैं कि हठयोग का उद्देश्य राजयोग की प्राप्ति है इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये हठयोग में बताये अनेक साधनों में मुद्राओं का विशेष महत्व है। इसी प्रकार के अन्तर्गत खेचरी मुद्रा इस उद्देश्य को प्राप्त करने वाले साधनों में विशेष महत्वपूर्ण साधन है। आइये इसके बारे में विस्तार से जानें :–

17.5.1 नामकरण – खेचरी शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। खे + चरी। खे = शून्य (अलौकिक) चरी = गमन करना। अर्थात जो अलौकिकता की ओर अग्रसर कराये वही मुद्रा खेचरी मुद्रा कहलाती है। खेचरी मुद्रा का वर्णन करते हुए हठप्रदीपिका में कहा गया है कि जीभ को उल्टाकर कपालकुहर में प्रविष्ट करा दें। और तब दृष्टि को भूमध्य में लगाने से खेचरी मुद्रा होती है।

17.5.2 संदर्भ ग्रन्थ – हठयोग के ग्रन्थों में मुद्रा वाले अध्याय के अन्तर्गत हमें खेचरी मुद्रा का वर्णन मिलता है। हठप्रदीपिका के अन्तर्गत तृतीय अध्याय के 31–53 श्लोक में खेचरी मुद्रा का विस्तार से वर्णन मिलता है। साथ ही घेरण्ड संहिता के तृतीय अध्याय के 33–40 श्लोक में भी हमें खेचरी मुद्रा की विधि लाभ सावधानियों के बारे में चर्चा मिलती है। जो इस प्रकार से है–

जीभ को उलटकर कपालकुहर में प्रविष्ट करा दें। और तब दृष्टि को भ्रूमध्य में लगाने से खेचरी मुद्रा होती है। काटना चालन और दोहन इन तीनों क्रियाओ के द्वारा क्रमश जीभ को तब तक बढाते रहना चाहिए जब तक वह भ्रूमध्य को स्पर्श न कर ले। तब खेचरी सिद्ध होती है। थूअर के पत्ते के समान तेज धारवाला स्निग्ध तथा निर्मल अर्थात् कीटाणु रहित शस्त्र लेकर उसके द्वारा जीभ के मूल को बाल भर काटें।

इसके बाद सेंधा नमक तथा हरडे के चूर्ण से जिह्वा का घर्षण करे। सात दिन के बाद पुनः बाल भर काटें। इस क्रम से छहमास तक उक्त विधि से रोजाना अभ्यास करे। इस तरह करने से जिह्वा मूल का शिराबंध हट जाता है। इसके पश्चात् जीभ को उलटकर कपालकुहर में प्रविष्ट कराते हैं यह खेचरी मुद्रा होती है। इसे व्योम चक्र भी कहते हैं ।

घेरण्ड संहिता के तृतीय अध्याय के 33–40 श्लोक में वर्णन इस प्रकार से है–
जिहवा और जिहवामूल को मिलने वाली जो नदी जिहवा के नीचे होती है, उसका छेदनकर जिहवा के अग्रभाग का निरंतर चालन करें तथा मक्खन लगाकर दोहन करते हुए लोहे की चिमटी से खीचें। रोजाना इसका अभ्यास करने से जिह्वा बढ़ जाती है । उसे इतना लम्बा कर लेना चाहिए की वह भोहो के मध्य तक पहुॅच सके। इस प्रकार धीरे–धीरे तालू मूल में प्रविष्ट कराए। जिह्वा को उल्टा करके ऊपर की ओर कपालरंध में ले जाना चाहिए। उस समय दोनों भोहों के मध्य भाग में दृष्टि रखें। यह खेचरी मुद्रा होती है।

17.5.3 विधि – उपरोक्त विधि की विस्तरित व्याख्या –

- सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक (पद्मासन, सिद्धासन, स्वास्तिकासन) आसन में बैठते हैं।
- दोनों हाथ घुटनों के ऊपर रखते हैं।
- आँखें सहजता से बंद करते हैं।
- फिर जिह्वा को मोड़कर सावधानीपूर्वक तालु के ऊपरी छिद्र में प्रवेश कराते हैं।
- यह क्रिया धीरे–धीरे करनी चाहिये।
- इस क्रिया के दौरान मुँह बन्द रहेगा।
- क्रिया की पूर्ण स्थिति में आज्ञा चक्र पर ध्यान एकाग्र रखेंगे।
- पूर्णस्थिति में श्वास की गति सामान्य रहेगी। अभ्यास बढ़ते जाने के साथ–साथ श्वास की संख्या प्रतिमिनट कम होती जायेगी।
- खेचरी मुद्रा का अभ्यास व्यक्ति की क्षमतानुसार हो सकता है। जब तक वह एकाग्रता के साथ स्थिर स्थिति में सुखपूर्वक बैठ सके तब तक अभ्यास कर सकते हैं।
- अभ्यास के अन्त में जिह्वा को धीरे से सीधा करेंगे।
- कुछ देर शांत बैठकर धीरे–धीरे आँखों को खोलेंगे।
- दोनों पैरों को सीधा करेंगे और विश्राम की स्थिति में आयेंगे।

स्वात्माराम सूरी जी ने हठप्रदीपिका के 3/46,47 में कहा है कि –
प्रतिदिन गोमांस का भक्षण करने वाले तथा अमरवारूणी का पान करने वाले को मैं योगी मानता हूँ। उससे अन्य सभी कुलघातक (अयोगी) है।
यहाँ पर गोमांस को इस प्रकार से समझाया गया है। गो अर्थात जीभ, माँस अर्थात जीभ जिस मांसपेशियों द्वारा निर्मित है उसे मांस कहा गया है। भक्षण अर्थात् जीभ का जब कपालगुहा के अन्दर प्रवेश कराया जाता है तो इस प्रक्रिया को भक्षण कहते हैं।
स्पष्टतः हम कह सकते हैं कि गोमांस भक्षण का अर्थ जीभ को कपालगुहा में प्रवेश करने से है, जिसे हम खेचरी मुद्रा कहते हैं। इस प्रकार उपरोक्त पंक्तियों का अर्थ हुआ कि खेचरी मुद्रा करने वाले को योगी और न करने वाले को स्वात्माराम जी ने अयोगी माना है।

खेचरी मुद्रा के अभ्यास से पूर्व तैयारियाँ –

जैसा कि हमने जाना कि खेचरी मुद्रा में जिह्वा को उलटकर कपालकुहर में प्रवेश कराया जाता है। इसके लिये जिह्वा को पहले तैयार किया जाता है उसकी लम्बाई एवं लचीलेपन को बढ़ाया जाता है। महीनों तक चलने वाले पूर्व अभ्यास के पश्चात् ही खेचरी मुद्रा में पूर्णता प्राप्त होती है। प्रक्रिया इस प्रकार से है –

जिह्वा को काटकर चालन एवं दोहन क्रिया के द्वारा लम्बा एवं लचीला बनाया जाता है। काटना – जिह्वा एवं जिह्वा मूल को जोड़ने वाली जो नाड़ी है, उसको काटते हैं। इससे जीभ लम्बी होती है। पहले के समय में काटने के लिये तेज धार वाले पत्ते पेड़ की जड़ का प्रयोग करते थे। जैसे – तेज पत्ता, जिससे कोई हानि नहीं होती थी। ग्रन्थों में बाल के बराबर हल्का सा काटने का विधान बताया गया है। क्रिया के अभ्यास के लिये हर हफ्ते थोड़ा–थोड़ा काटना पड़ता है। चालन– जिह्वा को पकड़कर उसको दायें–बायें, ऊपर–नीचे चलाया जाता है।

दोहन – जिस प्रकार गाय के थन से दूध निकालते समय दबाव के साथ खींचा जाता है, ठीक उसी प्रकार से जिह्वा की भी मालिश की जाती है। सेन्धा नमक एवं हरड़े के चूर्ण से तथा मक्खन, तेल आदि चिकनाई युक्त पदार्थों का प्रयोग इसके लिये किया जाता है। छः महीने तक लगातार काटना, चालन और दोहने से जीभ लम्बी और लचीली हो जाती है साथ ही जीभ के नीचे की जो नाड़ी है वह भी हट जाती है। जिससे जीभ आसानी से कपाल गुहा में प्रवेश कर लेती है।

17.5.4 सावधानियॉ –

- खेचरी मुद्रा के अभ्यास में प्रारम्भ में अभ्यासी कठिनाई का अनुभव कर सकता है परन्तु निरन्तर नियमित अभ्यास से वह क्रिया में पूर्णता प्राप्त करने में सक्षम होता है।
- जीभ या मुंह में कोई रोग होने पर इस अभ्यास को नहीं करना चाहिये।
- जीभ को काटने की प्रक्रिया जानकार व्यक्ति के संरक्षण में ही होनी चाहिये।
- जीभ की दोहन और चालन प्रक्रिया नियम से बिना किसी जल्दबाजी के करनी चाहिये।
- उचित मार्ग दर्शन में ही खेचरी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिये।
- अगर अभ्यास के समय मुंह के भीतर कड़वे स्वाद जैसी अनुभूति हो तो अभ्यास रोक देना चाहिये। यदि अभ्यास नही रोका तो यह कड़वा स्वाद शरीर के लिये जहर बन सकता है जो कि शरीर को नुकसान पहुँचाता है।
- कड़वा स्वाद अनुभव होने का एक कारण और हो सकता है। यदि हमारे शरीर में विजातीय पदार्थ पूर्ण रूप से साफ नहीं हो रखे हैं तो ऐसी स्थिति में भी कड़वा स्वाद अनुभव होता है। ऐसी स्थिति में हठयोग में वर्णित शुद्धि क्रियाओं का अभ्यास करना चाहिये।
- शुद्धि क्रियाओं को षट्क्रिया के नाम से भी जाना जाता है। इसमें छः प्रकार से शरीर की सफाई की जाती है और शरीर में उपस्थित विजातीय पदार्थों को बाहर निकाला जाता है। इन क्रियाओं से शरीर विकार रहित हो जाता है। खेचरी मुद्रा के अभ्यास के लिये ये आवश्यक है कि अभ्यासी का शरीर विकार रहित हो।
- खेचरी मुद्रा से पूर्व प्राणायाम का अभ्यास इसमें सहायता प्रदान करता है। मुद्रा का अभ्यास श्वासों की मन्दता स्थिरता को दर्शाता है, शरीर और मन शान्त रहे एवं क्रिया उचित रूप से हो इसके लिये प्राणायाम का अभ्यास आवश्यक है।

- ध्यानात्मक आसन का अभ्यास भी इसके लिये आवश्यक है। जब तक एक आसन में स्थिर होकर बैठने का अभ्यास नहीं होगा तब तक खेचरी मुद्रा की उच्च स्थिति में पहुँचना कठिन होता है।

17.5.5 लाभ – ग्रन्थों में खेचरी मुद्रा के लाभों का वर्णन इस प्रकार से किया गया है –

- जो आधे क्षण मात्र भी जीभ को तालु से लगाकर रख लेता है, वह विष, रोग, अकाल मृत्यु एवं बुढ़ापे से मुक्त हो जाता है।
- खेचरी मुद्रा सिद्ध होने से रोग, मृत्यु, आलस्य, निद्रा, मूर्च्छा नहीं सताती है।
- जीभ मोड़ने पर लार ग्रन्थियों से अधिक रस निकलता है जिससे शारीरिक स्वास्थ्य में लाभ पहुँचता है, भूख–प्यास नहीं लगती है।
- खेचरी सिद्ध योगी को रोग नहीं सताते हैं।
- व्यक्ति कर्म बन्धन में नहीं बन्धता।
- ऐसा व्यक्ति जन्म–मरण के चक्रव्यूह से मुक्त हो जाता है।
- खेचरी मुद्रा के द्वारा व्यक्ति अपनी चेतना को कारण शरीर में प्रवेश करा लेता है।
- खेचरी सिद्ध व्यक्ति के शरीर को जल, अग्नि, वायु प्रभावित नहीं करती है।
- यह मुद्रा प्राण–शक्ति का संचय एवं कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करती है।
- सहस्रार से निरन्तर टपकने वाले सोम रस को नाभि मण्डल में गिरकर क्षय होने से बचाने के लिये खेचरी मुद्रा बहुत ही प्रभावकारी प्रक्रिया है। सोमरस रूपी अमृत का पान होने पर साधक को शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों प्रकार के लाभ होते हैं।

खेचरी मुद्रा का अभ्यास करते हुये जब दोहन आदि क्रियाओं के पश्चात् जीभ को कपाल गुहा में प्रविष्ट कराया जाता है तब वहाँ उपस्थित स्वादग्रन्थियों से स्वाद का अनुभव होने लगता है। जैसे – कड़वा, खारा, मीठा। जब जीभ और भीतर की ओर घुसती है तब दूध, मक्खन आदि जैसा स्वाद जो कि नैसर्गिक स्वाद है, अनुभव होने लगता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

- **बहुविकल्पिय प्रश्न –**

(1) हठप्रदीपिका के कौन से अध्याय में महामुद्रा का वर्णन मिलता है।
(अ) तृतीय (ब) चतुर्थ
(स) द्वितीय (द) इनमें से कोई नही

(2) हठप्रदीपिका के अनुसार महाबन्ध का अभ्यास कौन से बन्ध के साथ किया जाता है।
(अ) जालन्धर बन्ध (ब) मूलबन्ध
(स) मूलबन्ध व उड्डियान बन्ध (द) उपरोक्त सभी के साथ

(3) घेरण्ड संहिता में महावेध मुद्रा का वर्णन मिलता है।
(अ) 41 से 44 (ब) 42 से 45
(स) 40 से 42 (द) 43 से 45

(4) हठप्रदीपिका में खेचरी मुद्रा का वर्णन मिलता है।
(अ) 3/46–47वें श्लोक में (ब) 3/46–49वें श्लोक में
(स) 3/45–47वें श्लोक में (द) इनमें से कोई नहीं

- **रिक्त स्थनों की पूर्ति करो –**

(1) महावेध का वर्णन हठप्रदीपिका के .... श्लोक में मिलता है।
(2) खेचरी मुद्रा सिद्ध होने पर .... रस की प्राप्ति होती है।
(3) घेरण्ड संहिता के अनुसार महामुद्रा का वर्णन .... श्लोक में मिलता है।
(4) हठप्रदीपिका में .... मुद्राओं तथा घेरण्ड संहिता में .... मुद्राओं का वर्णन मिलता है।

- **सत्य और असत्य को चिन्हित करें –**

(1) शुद्धि क्रिया के पश्चात् मुद्रा का अभ्यास करने से अधिक लाभ प्राप्त होता है। (............)
(2) गर्मी के दिनों में महामुद्रा का अभ्यास अधिक करना चाहिए। (............)
(3) सरवाईकल स्पाण्डिलाइटिस वाले व्यक्तियो को महामुद्रा का अभ्यास नहीं करना चाहिए। (............)
(4) हठप्रदीपिका के तीसरे अध्याय के 9–17वें श्लोक तक महामुद्रा का वर्णन मिलता है। (............)

17.6 सारांश –

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत पाठकों को हठयोग में वर्णित तीन महत्वपूर्ण मुद्राऐं महामुद्रा, महाबेधमुद्रा, एवं खेचरी मुद्रा के बारे में विस्तार से जानकारी दी गई है। इकाई के उद्देश्यों को समझाते हुए इकाई की शुरूआत की गई है। जिसमें प्रारम्भ में महामुद्रा की विधि को समझाया गया है। ग्रन्थों में इसके वर्णन को बताते हुऐ महामुद्रा के लाभ एवं सावधानियों को भी बताया गया है।

इकाई में वर्णित दूसरी मुद्रा महाबेधमुद्रा का विस्तार से वर्णन किया गया है जिसमें इसके नामकरण को समझाते हुऐ ग्रन्थों में कहाँ–कहाँ इस मुद्रा की चर्चा मिलती है इसको स्पष्ट किया गया है। अभ्यासी को इस मुद्रा से क्या लाभ प्राप्त होता है साथ ही किन–किन बातों को ध्यान में रखते हुऐ व्यक्ति को ये अभ्यास करना चाहिये। इन सभी बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गई है।

इस इकाई में खेचरी मुद्रा की विधि के अन्तर्गत समझाया गया है, कि किस प्रकार से खेचरी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिये। साथ ही ये भी समझाया गया है कि खेचरी मुद्रा के अभ्यास को करने के लिये पूर्वाभ्यास किस प्रकार से करना चाहिये। जीभ को तालु से लगाने एवं उसे कपालगुहा में भीतर डालने के लिये किस प्रकार की तैयारी की आवश्यकता होती है। साथ ही खेचरी मुद्रा से प्राप्त होने वाले लाभों को भी विस्तार से समझाया गया है। खेचरी मुद्रा के अभ्यास को शुरू करने से पूर्व एवं बाद में बहुत सी बातों का ध्यान रखना भी आवश्यक होता है, जिससे कि मुद्रा का पूरा–पूरा लाभ प्राप्त किया जा सके। इसके अभाव में हानि होने की सम्भावनाऐं अधिक बढ़ जाती हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत इकाई की पाठ्य सामग्री में इकाई के समस्त उद्देश्यों की पूर्ति की गई है।

17.7 शब्दावली

- कपालगुहा – तालु के पीछे मस्तिष्क एवं गले तक का भाग
- महा क्लेश – अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश नामक 5 क्लेश है जो कि दुःख का कारण है।

- भय – डर
- पाचन शक्ति – भोजन को पचाने वाली शक्ति
- विजातीय पदार्थ – शरीर द्वारा त्याज्य पदार्थ, जो शरीर में रहने पर उसे नुकसान पहुँचाते हैं।
- प्राण – जीवनी शक्ति
- कुम्भक – श्वास को रोकना
- सप्त चक्र – हठयोग में वर्णित सात ऊर्जा केन्द्र व्यक्ति के शरीर में हैं जिन्हें चक्र के नाम से जाना जाता है।
- सुषुम्ना – हठयोग में तीन मुख्य नाड़ियों का वर्णन किया गया है इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना जिनमें सुषुम्ना अतिसूक्ष्म एवं महत्वपूर्ण नाड़ी है।
- रेचन – श्वास बाहर निकालना
- शिथिल – ढीला
- श्वास–प्रश्वास – बाहर की वायु को भीतर लेना और भीतर से वायु को बाहर निकालना
- मूर्च्छा – चक्कर आना
- सहस्रार – 1000 पत्तियों वाला चक्र जिसका स्थान तालु में बताया गया है।

17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

- **बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर –**

(1). अ (2). अ (3). अ (4). अ

- **रिक्त स्थानों के उत्तर –**

(1) 24–30 (2) सोम (3) 29–31 (4) 10, 24

- **सत्य और असत्य प्रश्नों के उत्तर –**

(1) सत्य (2) असत्य (3) सत्य (4) असत्य

17.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. घेरण्ड संहिता – स्वामी निरन्जनानन्द
2. हठप्रदीपिका – कुवल्यानन्द
3. हठयोग प्रदीपिका – स्वामी मुक्तिबोधानन्द
4. आसन, प्राणायाम, मुद्राबन्ध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

17.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. महामुद्रा क्या है? इसके अर्थ व विधि को समझाते हुए इससे मिलने वाले लाभों व सावधानियों पर प्रकाश डालें।
2. महाबेधमुद्रा क्या है? इसके अर्थ को समझाते हुऐ इससे मिलने वाले लाभ व सावधानियों पर प्रकाश डालें।
3. हठयोग ग्रन्थों में वर्णित खेचरी मुद्रा की विधि को विस्तार से समझाते हुए इसकी विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन करें।

इकाई 18 – हठयोग प्रदीपिका में वर्णित मुद्राओं की विधि सावधानियाँ एवं लाभ– विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालनी

18.1 प्रस्तावना

हठयोग में योग मुद्राओं की चर्चा हम पहले भी कर चुके हैं। जिससे पाठक इनके मुद्राओं के व्यवहार से थोड़े परिचित तो हो ही चुके हैं। यौगिक मुद्रा बहुत व्यवहारिक विषय नहीं है। यह गुप्त रखने वाला ज्ञान है जिसे सामान्य व्यक्ति से नहीं बल्कि अनुभवशील व्यक्ति द्वारा ही सीखा जाता है अन्यथा अभ्यासी को शारीरिक मानसिक क्षति होने की सम्भावनाऐं बढ़ जाती हैं।

प्रस्तुत इकाई में आपको विपरीतकरणी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा एवं शक्तिचालिनी मुद्रा के बारे में विस्तार से जानकारी दी जा रही है। इन मुद्राओं का शारीरिक मानसिक स्तर पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। इन्हें बहुत ही एकाग्रता एवं स्थिरता के साथ करना चाहिये। इसीलिये हठयोग के कुछ ग्रन्थों में आसन और प्राणायाम के बाद ही मुद्राओं के अभ्यास को करने का विधान बताया गया है। क्योंकि आसन से शारीरिक दृढ़ता एवं प्राणायाम से शरीर में हल्कापन आता है जिनमें शुद्धि क्रियायें भी सहायक होती हैं।

18.2 उद्देश्य

- प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद पाठक जान पायेंगे कि हठयोग के अन्तर्गत वर्णित मुद्राओं में विपरीतकरणी मुद्रा का वर्णन हठयोग ग्रन्थ में कहाँ पर किया गया है।
- विपरीतकरणी मुद्रा को किस प्रकार से किया जाता है।
- विपरीतकरणी मुद्रा को करने से अभ्यासी को क्या लाभ प्राप्त होता है।
- विपरीतकरणी मुद्रा को करते समय किन–किन सावधानियों का ध्यान रखना आवश्यक होता है।
- विपरीतकरणी मुद्रा को इस नाम से क्यों जाना जाता है।
- वज्रोली मुद्रा को किस प्रकार से किया जाता है।
- वज्रोली मुद्रा करने के क्या लाभ हैं।

- हठयोग के ग्रन्थों में इस मुद्रा को करते समय किन–किन बातों का ध्यान रखने को कहा गया है।
- वज्रोली मुद्रा के नामकरण के बारे में।
- ग्रन्थों में कहाँ–कहाँ पर वज्रोली मुद्रा का वर्णन मिलता है।
- शक्तिचालिनी मुद्रा को किस प्रकार से किया जाता है।
- ग्रन्थों में कहाँ–कहाँ पर शक्तिचालिनी मुद्रा का वर्णन मिलता है।
- शक्तिचालिनी मुद्रा के अभ्यास से प्राप्त होने वाले लाभों के बारे में जानकारी।
- शक्तिचालिनी मुद्रा को करते समय ध्यान रखने योग्य बातों के बारे में।
- शक्तिचालिनी मुद्रा को इस नाम से क्यों जाना जाता है।

योग के क्षेत्र में रूचि रखने वाले जिज्ञासुओं को प्रस्तुत इकाई में विपरीतकरणी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा एवं शक्तिचालिनि मुद्रा के बारे में विस्तार से जानकारी देकर उनकी जिज्ञासाओं को संतुष्ट करने का प्रयास किया गया है। मुद्राओं का वर्णन इस प्रकार से है –

18.3 विपरीतकरणी मुद्रा

18.3.1 नामकरण – विपरीतकरणी मुद्रा, यह नाम तीन शब्दों से मिलकर बना है – विपरीत + करणी + मुद्रा विपरीत अर्थात उल्टा, करणी अर्थात करना, मुद्रा अर्थात ऐसी शारीरिक स्थिति जिसमें प्रसन्नता की अनुभूति हो।

इस मुद्रा में शरीर की जो सामान्य स्थिति होती है जिसमें पैर नीचे और सिर ऊपर की ओर रहता है इसे उल्टा कर दिया जाता है। इस मुद्रा की पूर्ण स्थिति में अभ्यासी के पैर ऊपर एवं सिर नीचे की ओर करके स्थिर रहकर आनन्द का अनुभव लिया जाता है। इसीलिये इस मुद्रा को विपरितकरणी मुद्रा कहते हैं।

18.3.2 संदर्भ ग्रन्थ – स्वात्माराम जी द्वारा रचित हठयोग प्रदीपिका में तीसरे अध्याय के 76–81 तक विपरीतकरणी मुद्रा का वर्णन किया गया है। साथ ही घरेण्ड मुनि द्वारा रचित घेरण्ड संहिता में तृतीय अध्याय के 45–48 तक हमें इसका वर्णन मिलता है।

हठयोग प्रदीपिका में स्वात्माराम जी के अनुसार सोममंडल से जो दिव्यरूप अमृत स्रावित होता है उन सब को सूर्य खा जाता है। इससे शरीर में बुढापा आता है। उसके निवारणार्थ एक क्रिया होती है, जिससे सूर्य के मुख में उस स्राव का जाना टल जाता है। वह क्रिया गुरू के द्वारा ही जानी जा सकती है न कि करोड़ों शास्त्रार्थ से । नाभि को ऊपर और तालु को नीचे करने से सूर्य मंडल ऊपर और सोममंडल नीचे हो जाता है । इसे ही विपरीतकरणी कहते हैं, जिसे गुरू से ही सीखना चाहिए।

घेरण्ड संहिता में घेरण्ड मुनि जी के अनुसार नाभिमूल में सूर्य नाड़ी और तालू में चन्द्र का वास है। सूर्य द्वारा चन्द्र से स्रावित अमृत का पान करने से प्राणी की मृत्यु होती है परन्तु चन्द्र नाड़ी के अमृत पान करने पर मृत्यु का भय नहीं रहता। अतएव सूर्य को ऊपर और चन्द्र को नीचे कर लें। यही विपरीतकरणी मुद्रा है जो सब प्रकार से गोपनीय है। सिर को भूमि में लगाकर दोनों हाथ टेकें और दोनों पावों को ऊपर उठाकर कुम्भक के द्वारा वायु को रोकें ये ही विपरीत करणी मुद्रा है। इसका नित्य अभ्यास करने से वृद्धावस्था और मृत्यु नष्ट हो जाती है। इसका नित्य अभ्यास करने वाला सब लोकों में सिद्धि सम्पन्न एवं प्रलयकाल मैं भी दुखित नहीं होता ।

18.3.3 विधि – सरल भाषा में विधि को इस प्रकार से समझा जा सकता है –

1. सर्वप्रथम पीठ के बल सीधे लेट जाते हैं।
2. दोनों पैरों को आपस में मिलाकर रखते हैं। दोनों हाथों को जंघा से सटाकर रखते हैं।
3. हथेली जमीन की ओर रखते हैं।
4. धीरे–धीरे श्वास को भीतर की ओर भरते हैं।
5. फिर श्वास को भीतर ही रोक कर दोनों पैरों को एक साथ धीरे–धीरे ऊपर की ओर उठाते हैं। क्रमशः इस प्रकार से – 45, 60, 90 अंश के कोण में।
6. इसके पश्चात् दोनों हथेलियों की सहायता से नितम्बों को ऊपर की ओर उठाते हैं।
7. कोहनियों को मोड़कर हथेलियों की सहायता से नितम्बों को सहारा देंगें ताकि पैरों का हवा में संतुलन बना रहे।
8. दोनों पैरों को थोड़े खिंचवा के साथ सीधा करते हुए सिर की तरफ थोड़ा झुकाकर रखेंगे ताकि आँखों की सीध में पैर आ जाये।
9. पूर्ण स्थिति में आँखें बन्द रखेंगे।
10. शारीरिक स्थिति लेने के बाद उसी में स्थिर रहेंगे, श्वास बाहर निकालेंगे।
11. इसके पश्चात् शरीर के भीतर स्थित चक्रों पर एकाग्रता बनायेंगे।
12. श्वास लेते हुऐ मणिपुरचक्र से विशुद्धि चक्र पर चेतना को ले जाते हैं।
13. श्वास छोड़ते समय विशुद्धि चक्र से आज्ञा चक्र पर चेतना को ले जाते हैं।
14. इस प्रकार श्वास एवं प्रश्वास की क्रिया पर चेतना की गति ऊपर की ओर ही बढ़ती रहेगी।
15. मुद्रा के अभ्यास के दौरान पूर्ण एकाग्रता चक्रों पर बनाकर ही रखते हैं।
16. पूर्ण शारीरिक स्थिति में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि ठुड्डी कण्डकूप से न लगे अर्थात् विपरितकरणी मुद्रा में जालन्धर बन्ध नहीं लगेगा।
17. प्रारम्भ में 5 से 7 बार तक अभ्यास को दोहराया जा सकता है। फिर धीरे–धीरे कुछ महीनों के अभ्यास के बाद 21 बार तक मुद्रा की आवृत्ति की जा सकती है।
18. साथ ही उज्जायी प्राणायाम एवं खेचरी मुद्रा के अभ्यास को भी जोड़ देते हैं।
19. मुद्रा के अभ्यास के पश्चात् श्वास को भीतर ही रोककर अर्थात् अन्तःकुम्भक के साथ पैरों को धीरे–धीरे नीचे रखेंगे। इसके लिये पहले कमर फिर नितम्ब फिर पैरों को नीचे लायें।
20. पैरों को नीचे रखने के पश्चात् श्वास पूर्णतः बाहर निकालेगे।
21. इसके पश्चात् शरीर को पूर्णतः ढीला छोड़ते हैं, फिर शवासन की स्थिति में विश्राम करते हैं।
22. ध्यान के अभ्यास से पूर्व विपरितकरणी मुद्रा का अभ्यास लाभदायक होता है।

18.3.4 सावधानियाँ – विपरीतकरणी मुद्रा के अभ्यास से अभ्यासी को जितना लाभ मिलता है यदि वह कुछ बातों का ध्यान न रखे तो लाभ के स्थान पर हानि होने की सम्भावनाऐं भी बढ़ जाती हैं। इसलिये अभ्यास के दौरान निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना अत्यावश्यक है –:

1. उच्च रक्तचाप एवं हृदयरोगी इस अभ्यास को न करें।
2. थायरायड की समस्या से ग्रसित व्यक्ति इस अभ्यास को न करे।
3. अस्वस्थ स्थिति में विपरितकरणी मुद्रा का अभ्यास नहीं करना चाहिये।

4. शरीर में विजातीय पदार्थों की वृद्धि होने पर इसका अभ्यास नहीं करना चाहिये।

18.3.5 लाभ – विपरीतकरणी मुद्रा के अभ्यास का विशेष महत्व इस प्रकार से है –:

इस मुद्रा में चक्रों का विशेष महत्व है। मुख्यतः तीन चक्रों पर ध्यान को विशेष रूप से एकाग्र किया जाता है – मणिपुर चक्र, विशुद्धि चक्र, बिन्दु चक्र।

मणिपुर चक्र सूर्य का केन्द्र स्थान माना जाता है। और बिन्दु चक्र चन्द्र का केन्द्र स्थान माना जाता है। हठयोग में कहा जाता है कि चन्द्र मण्डल से निरन्तर अमृत रस टपकता रहता है जो सूर्य मण्डल में गिरने से भस्म हो जाता है, जिसके कारण उसका पूर्ण लाभ व्यक्ति को प्राप्त नहीं होता। विपरितकरणी मुद्रा में जब पैरों को ऊपर करके शरीर को उल्टा किया जाता है तब सूर्य मण्डल के ऊपर होने से चन्द्र मण्डल से गिरने वाले अमृत रस की क्षति समाप्त हो जाती है। और व्यक्ति को उसका पूरा–पूरा लाभ प्राप्त होता है।

1. विपरीतकरणी मुद्रा का नियमित अभ्यास पाचन शक्ति को बढ़ाता है।
2. यह क्रिया सूक्ष्म शरीर को पवित्र करने में भी सहायक है।
3. यह अभ्यास झुर्रियों को दूर करता है।
4. बाल काले होते हैं।
5. तीन घंटे प्रतिदिन इसका अभ्यास करने से अभ्यासी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है।
6. इससे बुढ़ापा नहीं आता।
7. यह अभ्यास बवासीर, कब्ज, हर्निया में लाभ पहुँचाता है।
8. मस्तिष्क में रक्त के संचार को बढ़ाता है।
9. नाड़ियों में प्राण के प्रवाह को बढ़ाने में यह अभ्यास लाभदायक होता है।
10. इस मुद्रा का अभ्यास सन्तुलन उत्पन्न करता है, जिससे शारीरिक व मानसिक स्तर पर लाभ मिलता है।

18.4 ब्रजोली मुद्रा

18.4.1 नामकरण –

हठयोग में नाड़ियों का विशेष महत्व है। हजारों लाखों नाड़ियों का वर्णन हमें हठयोग में मिलता है जिनमें प्रमुख सुषुम्ना नाड़ी के भीतर भी तीन नाड़ियों की उपस्थिति बताई गई है –: वज्रानाड़ी, चित्रानाड़ी, ब्रह्मनाड़ी। वज्रोली मुद्रा वज्रा नाड़ी से सम्बन्धित होती है। इसीलिये इस क्रिया को वज्रोली मुद्रा कहा जाता है।

18.4.2 सन्दर्भ ग्रन्थ – स्वात्माराम सूरी जी द्वारा हठयोगप्रदीपिका में तृतीय अध्याय के 82–89 श्लोक में वज्रोली मुद्रा का वर्णन इस प्रकार से मिलता है।

योगशास्त्र के नियमों के बिना भी स्वेच्छा से रहने वाला साधक यदि वज्रोली मुद्रा को जनता है तो वह योग में सफलता को प्राप्त कर लेता है। उस प्रक्रिया में जिस किसी के लिए दुर्लभ दो वस्तु रखी जाती है। पहला सोममंडल का स्राव और दूसरा स्वाधीन नाड़ी अर्थात चित्रा नाड़ी। धीरे–धीरे अच्छी तरह से योनी मंडन का आकुंचन करना चाहिए ऐसा करने से पुरूष अथवा नारी दोनों ही वज्रोली का फल प्राप्त करते हैं। यत्न पूर्वक अच्छी नली से फुत्कार के साथ मूत्र मार्ग में वायु का प्रवेश कराए। इस प्रकार धीरे–धीरे करने से भीतर वायु का संचार होगा। योनी मंडल में आकर गिरने वाले बिंदु को अभ्यास के द्वारा ऊपर उठाए और उस चलायमान बिंदु को ऊपर ही खींचकर रखें। इस प्रकार बिंदु की रक्षा करने वाला योग का जानकार साधक मृत्यु को जीत लेता है। बिंदु का क्षरण ही मृत्यु है

और बिंदु की रक्षा ही जीवन है। साथ ही घेरण्ड मुनि द्वारा रचित घेरण्ड संहिता में तृतीय अध्याय के 57–60 श्लोक में वज्रोली मुद्रा का वर्णन इस प्रकार से मिलता है –

दोनों हाथों को दृढ़ता पूर्वक धरती पर टेकें और दोनों पैरों तथा सिर को आकाश में उठा दें। ज्ञानियों ने इसे शक्ति संचार करने वाली तथा जीवन प्राप्त करने वाली वज्रोली मुद्रा कहा है। यह मुद्रा योगियों के लिये मुक्ति देने वाली हितकारिणी सिद्धिदायिनी तथा श्रेष्ठ है। इसके प्रसाद से बिन्दु सिद्ध होने के कारण साधक उर्ध्वरेतस तत्व में समर्थ होता है और जब सिद्धि प्राप्त कर ली जाती है तब पृथ्वी पर कौन सा कार्य सिद्ध नहीं हो सकता यदि भोगी मनुष्य भी इस मुद्रा का साधन करें तो उन्हें सभी सिद्धियां मिल जाती हैं।

यहाँ पर विस्तार से वज्रोली मुद्रा की विधि, लाभ एवं अभ्यास के दौरान रखने वाली सावधानियों के बारे में चर्चा मिलती है।

18.3.1 विधि –

1. सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाते हैं।
2. दोनों हाथ घुटनों के ऊपर रखते हैं।
3. शरीर को तनाव रहित रखते हैं।
4. इसके पश्चात् नेत्रों को सहजता से बन्द करते हैं।
5. श्वास–प्रश्वास को सामान्य बनाये रखते हैं।
6. प्रारम्भिक अभ्यास में निम्न उदर प्रदेश पर तनाव लाते हुए तथा मूत्र प्रणाली का संकोच करते हुए प्रजनन अंगो को ऊपर की ओर खींचते हैं।
7. प्रारम्भिक अभ्यास के पश्चात अभ्यास की पूर्णता आने पर नली से मूत्र मार्ग में वायु का प्रवेश कराते हैं। इस प्रकार धीरे–धीरे करने से भीतर वायु का संचार होता है।

हठप्रदीपिका में बताया गया है कि योनिमण्डल में आकर गिरने वाले सोमस्राव को अभ्यास के द्वारा ऊपर उठाकर उसे ऊपर ही खींचकर रखते हैं।

नोट – :

1. आसन प्राणायाम मुद्राबन्ध नामक पुस्तक में वज्रोली मुद्रा के अभ्यास के अन्तर्गत मूत्र नली में लगभग 12 इंच लम्बी चाँदी की नली का प्रवेश कराने को कहा गया है।
2. फिर इस नलिका से पानी, मधु और पारा ऊपर खींचने को कहा गया है।
3. घेरण्ड संहिता में घेरण्ड मुनि ने ब्रह्मचर्य आसन में इस मुद्रा का अभ्यास करने की बात बताई है।
4. इसमें दोनों पैरों को सीधा सामने की ओर मिलाकर रखते हैं।
5. दोनों हाथों को नितम्बों के पास रखते हैं।
6. सिर गर्दन एवं कमर एक सीध में रखते हैं।
7. तत्पश्चात् पूरे शरीर को हाथों की सहायता से जमीन से ऊपर उठा लेते हैं।
8. इस स्थिति में मूलबन्ध दृढ़ता के साथ स्वतः ही लग जाता है। और दृढ़ता से लगा मूलबन्ध वज्रनाड़ी पर प्रभाव डालती है।

18.4.4 लाभ – वज्रोली मुद्रा का अभ्यास अत्यन्त गोप्य विधि द्वारा किया जाता है। इससे प्राप्त होने वाले लाभों का वर्णन इस प्रकार से है –:

1. प्रजनन अंगो में प्राण ऊर्जा का समुचित प्रवाह होता है।
2. अभ्यासी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है। व्यक्ति का मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है। जिसे क्लेश के रूप में योग सूत्र में भी समझाया गया है।

3. साधक की अकाल मृत्यु नहीं होती है।
4. बिन्दु धारण से साधक के शरीर में सुगन्ध उत्पन्न होती है।
5. वीर्य शक्ति पर नियन्त्रण प्राप्त कर साधक ओज युक्त होता है।
6. स्वप्नदोष समाप्त होता है। इन्द्रियों पर नियन्त्रण होता है।
7. चक्रों की शक्ति बढ़ती है।
8. कहा गया है कि इन्द्रिय सुख लोलुपता अत्यधिक रहने पर भी इन्द्रिय सुख के पीछे भागते रहने पर भी इस मुद्रा के अभ्यास से सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं।
9. यह मुद्रा ब्रह्मचर्य के पालन के लिये बहुत ही उपयोगी क्रिया विधि है।

18.4.5 सावधानियां –

वज्रोली मुद्रा का अभ्यास सामान्यतः बहुत व्यवहारिक अभ्यास नहीं है। यह बहुत ही गुप्त विद्या है। इस क्रिया को केवल सुनकर या पढ़कर नहीं करना चाहिये। योग्य व्यक्ति के निर्देशन में यह अभ्यास करना आवश्यक है। कुछ और विशेष सावधानियाँ इस अभ्यास में आवश्यक हैं जिनसे अभ्यासी को लाभ पहुँचेगा। जिनका वर्णन इस प्रकार से है –ः

1. अभ्यास की अवधि को धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिये।
2. क्षमतानुसार अभ्यास करना चाहिये।
3. प्रजनन अंगों के रोग से पीड़ित व्यक्ति इस अभ्यास को न करे।
4. उत्सर्जन तन्त्र सम्बन्धी गड़बड़ी वाले व्यक्ति भी इस अभ्यास को न करे।
5. हृदयरोगी एवं उच्च रक्तचाप वाले व्यक्तियों को ये अभ्यास नहीं करना चाहिये।
6. हार्निया, बवासीर रोग से ग्रसित व्यक्ति भी इस क्रिया का अभ्यास न करे।
7. अनुभवी एवं योग्य व्यक्ति के निर्देशानुसार उसके संरक्षण में ही इस क्रिया का अभ्यास करना उचित रहता है।
8. अभ्यास करते समय पूरी एकाग्रता स्वाधिष्ठान चक्र पर लगाकर रखनी चाहिये।
9. अभ्यास के दौरान प्रयोग की जाने वाली सामग्री शुद्ध एवं उचित होनी चाहिये।
10. अभ्यास करते समय जल्दबाजी बिल्कुल नहीं करनी चाहिये।

18.5 शक्तिचालिनी मुद्रा

18.5.1 नामकरण – शक्तिचालिनी मुद्रा का वास्तविक अर्थ कुण्डलिनी शक्ति के चालन से है। इस मुद्रा में कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत कर उसका चालन किया जाता है इसलिये इस मुद्रा को शक्तिचालिनी मुद्रा कहते हैं।

स्वात्माराम सूरी जी द्वारा रचित हठप्रदीपिका के तृतीय अध्याय के 100–118 श्लोक तक हमें शक्तिचालिनी मुद्रा का वर्णन इस प्रकार से मिलता है –

वज्रासन में बैठकर दोनों हाथों से दोनों पावों के टकनों को दृढ़ता से पकड़े और उससे कंद को जोर से दबायें। साधक वज्रासन पर बैठकर कुंडलिनी को चलाने की क्रिया करे। अनन्तर भस्त्रिका कुम्भक करें। इससे कुंडलिनी शीघ्र जगती है।

साथ ही घेरण्ड मुनि द्वारा रचित घेरण्ड संहिता के तृतीय अध्याय के 61–72 श्लोक तक शक्तिचालिनी मुद्रा का वर्णन इस प्रकार से मिलता है –

बालिस्तभर चौड़ा चार अंगुल लंबा कोमल वस्त्र नाभि पर लगाकर कटिसूत्र से बांधें। शरीर में भष्म लगाकर सिद्धासन पर बैठें और प्राण को खींचकर अपान से उक्त करें। जब तक सुषुम्ना द्वारा से चलती हुई वायु प्रकाशित न हो तब तक अश्विनी मुद्रा द्वारा गुह्य को

संकुचित करें । इस प्रकार वायु से रूकने से कुम्भक द्वारा सर्प रूपिणी कुंडलिनी जाग्रत होकर मार्ग में ऊपर खड़ी हो जाती है। मूलाधार में जो कुंडलिनी साढ़े तीन फेरा लगाए हुए सर्पिणी के रूप में सो रही है उसके सोते रहने पर जीव पशु की अवस्था में रहता है। इसलिए जब तक ज्ञान उत्पन्न न हो तब तक अभ्यास करते रहना चाहिए। जिस प्रकार कुंजी से ताला खुलने पर ही किवाड़ खुलता है उसी प्रकार कुंडलिनी के जागृत होने पर ही ब्रह्मरन्ध्र खुल सकता है। नाभि को वस्त्र से लपेटकर एकांत में इसका अभ्यास करें। नग्न रहकर बाहर इस मुद्रा का अभ्यास निषिद्ध है।

शक्तिचालिनी मुद्रा के अभ्यास के बिना योनिमुद्रा सिद्ध नहीं हो सकती। पहले इस शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास करें, फिर योनी मुद्रा का। हे चण्डकपाल ! इस प्रकार यह शक्तिचालिनी मुद्रा जो मैंने कही है इसे प्रयत्न पूर्वक गोपनीय रखते हुए नित्य प्रति अभ्यास करें। जो भी इसका अभ्यास करता है उसे विग्रह सिद्ध सहित सर्व सिद्धियां प्राप्त होती हैं और सभी रोगों का नाश होता है।

18.5.3 विधि –

1. सर्वप्रथम दण्डासन की स्थिति में बैठते हैं।
2. दोनों पैर सीधे सामने की ओर दोनो पैर आपस में मिलाकर रखते हैं।
3. दोनों हाथों को नितम्बों के बगल में रखते हैं।
4. कमर गर्दन एक सीध में रखते हैं।
5. इसके पश्चात् दोनों हाथों को दायें नितम्ब के पास रखते हैं।
6. दोनों पैरों को घुटनो से मोड़कर ऐड़ियों को नितम्बों के नीचे लाते हैं।
7. वज्रासन की स्थिति में बैठते हैं।
8. वज्रासन की स्थिति में दोनों अंगुठों को आपस से मिलाकर रखते हैं। दोनों ऐड़ियों को नितम्बों के बगल में फैलाते हैं, सामने से दोनों घुटनों को आपस में मिलाकर रखते हैं। कमर गर्दन सीधी रखते हैं।
9. वज्रासन में स्थित होने के पश्चात अश्विनि मुद्रा व मूलबन्ध का अभ्यास करते हैं।
10. तत्पश्चात् दोनों हाथों से दोनों पाँवों के टखनों को दृढ़ता से पकड़ते हैं।
11. फिर कन्द को जोर से दबाते हैं। (कन्द का स्थान मूल स्थान से 9 इंच ऊपर बताया गया है। यह 3 इंच विस्तार वाला, कोमल, सफेद तथा वस्त्र में लिपटा हुआ जैसा प्रतीत होता है।)
12. इसके पश्चात् भस्त्रिका प्राणायाम करने का विधान बताया गया है।
13. इसी के साथ–साथ नाभि मण्डल को जाग्रत करने वाली अन्य क्रियाओं के अभ्यास को करने का विधान भी ग्रन्थों में बताया गया है।

जैसे – उड्डियान बन्ध, नौलि। ये क्रियाऐं मणिपुर चक्र को जाग्रत करती हैं। इन क्रियाओं का सीधा प्रभाव सूर्य चक्र पर पड़ता है। यह सुषुम्ना के मार्ग को खोलता है।

बाह्य कुम्भक के साथ ये अभ्यास किया जाता है। क्षमतानुसार यह अभ्यास करना चाहिये। इन क्रियाओं के अभ्यास में मूलबन्ध स्वतः ही लग जाता है। चूंकि कुण्डलिनी शक्ति का स्थान मूलाधार चक्र हो तो ये क्रिया इसमें सहायक भी होती है।

14. इस प्रकार क्रिया करके सुषुप्त कुण्डलिनी शक्ति पर दबाव पड़ता है और वह सुषुप्त शक्ति जाग्रत होकर सुषुम्ना में प्रवेश कर जाती है। और उर्ध्वगामी होकर सहस्रार में शिव स्थान में जाकर शिव से मिल जाती है।

15. प्रारम्भ में इस प्रक्रिया को प्रतिदिन करते हैं। फिर लम्बे अभ्यास के बाद परम स्थिति (पूर्णावस्था) की प्राप्ति सम्भव हो पाती है।

नोट – घेरण्ड संहिता में 9 इंच लंबा और चार अंगुल चौड़ा नरम सफेद कपड़ा नाभि पर पतले धागे से बाँधकर शरीर में भस्म लगाकर सिद्धासन में बैठकर दीर्घ पूरक कर पेट में श्वास भरने को कहा गया है।

तत्पश्चात् उड्डियान बन्ध करके अप्राण वायु को प्राण वायु से मिलाने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार से अभ्यास करने से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है।

18.5.4 सावधानियाँ – शक्तिचालिनी मुद्रा कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने की विधि है। यह सामान्य प्रक्रिया नहीं है। इस प्रक्रिया में बातों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। अन्यथा अभ्यासी को परम हानि का सामना भी करना पड़ सकता है। क्रिया के दौरान ध्यान रखने योग्य बातें इस प्रकार से हैं–:

1. अभ्यास खाली पेट करना चाहिये।
2. रोगयुक्त स्थिति में अभ्यास नहीं करना चाहिये।
3. हृदयरोगी, उच्च रक्तचाप, निम्न रक्तचाप वालों को ये अभ्यास नहीं करना चाहिये।
4. उदर सम्बन्धी रोगों से पीड़ित व्यक्ति इसका अभ्यास न करें।
5. फेफड़े सम्बन्धी रोगी इस अभ्यास को न करें।
6. कमजोर व्यक्तियों के लिये तथा टी0 बी0 के रोगी को भी यह अभ्यास नहीं करना चाहिये।
7. घेरण्ड संहिता में बताई गई विधि के अनुसार खुले बदन शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास नहीं करना चाहिये।
8. वस्त्र को लपेटकर एकान्त में बैठकर शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिये।
9. शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिये तभी इसका पूरा लाभ प्राप्त होता है।

18.5.5 लाभ – शक्तिचालिनी मुद्रा हठयोग में वर्णित विभिन्न मुद्राओं में विशेष मुद्रा है। यह मुद्रा हठयोग के परम लक्ष्य कुण्डलिनी शक्ति जागरण में सहायक होती है। इसके अन्य लाभ इस प्रकार से हैं।

1. शक्तिचालिनी मुद्रा सुषुप्त कुण्डलिनी को जाग्रत कर उर्ध्वगामी बनाती है।
2. पाचन संस्थान को सुचारूता प्रदान करती है।
3. इस क्रिया के अन्तर्गत की जाने वाली उड्डियान बन्ध, मूलबन्ध, अश्विनी मुद्राओं के पूर्ण लाभ प्राप्त होते हैं।
4. दीर्घ पूरक, रेचक फेफड़ों की क्रिया क्षमता को बढ़ाता है।
5. यह क्रिया चेतना को उच्चस्तरीय गति प्रदान करती है।
6. चक्रों के जागरण की प्रक्रिया भी इस मुद्रा द्वारा सम्भव है।
7. सुषुम्ना के अन्दर प्रवाहित होने वाली कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने से पूर्व शक्ति के प्रवाह के लिये सूक्ष्मस्तरीय चक्र, नाड़ियों की शुद्धि भी स्वतः होती चली जाती है।
8. इस अभ्यास से व्यक्ति सामान्य से विशिष्ट बन जाता है।
9. व्यक्ति में मृत्यु को जीत लेने की शक्ति आ जाती है।
10. व्यक्ति में मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है। पंचतत्वों से निर्मित नाशवान शरीर और ब्रह्माण्ड में स्थित पंचतत्वों का रहस्य वह जान लेता है।

11. मूलाधार एवं मणिपुर चक्र की जाग्रति व्यक्ति में दिव्य ज्ञान का प्रवाह कर देती है।
12. शक्तिचालिनी की मुद्रा से साधक को सिद्धियाँ प्राप्ति होती हैं।
13. ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, पथ्यकारक भोजन करने वाले, सन्तुलित भोजन करने वाले, तथा शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास करने वाले साधक को 40 दिन में सिद्धि प्राप्ति के लक्षण दिखने लगते हैं।
14. कुण्डलिनी शक्ति के प्रतिदिन चालन से साधक के रोग समाप्त हो जाते हैं।
15. इस अभ्यास से समस्त नाड़ियों की शुद्धि होती है। 72000 नाड़ियों में प्राण प्रवाह उचित ढंग से होने लगता है। इसी प्रभाव के कारण कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना में प्रवेश करने में सक्षम हो पाती है। अन्यथा ये सम्भव न था।

अभ्यास हेतु प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न –

(1) निम्न में से किस मुद्रा का वर्णन हठप्रदीपिका में प्राप्त होता है
(अ) विपरिकरणी (ब) वज्रोली
(स) शक्तिचालिनी (द) उपरोक्त सभी

(2) हठप्रदीपिका में विपरितकरणी मुद्रा का वर्णन कौन से श्लोक में मिलता है।
(अ) 45 से 46वें (ब) 46 से 47वें
(स) 45 से 48वें (द) इनमें से कोई नही

(3) हठप्रदीपिका में वज्रोली मुद्रा का वर्णन मिलता है।
(अ) 82 से 89वें श्लोक में (ब) 90वें श्लोक में
(स) 81वें श्लोक में (द) उपरोक्त में से किसी में नहीं

(4) वज्रोली मुद्रा का अभ्यास निम्न रोग में निषेध है।
(अ) हर्निया व वबासीर में (ब) हृदय रोग में
(स) प्रजनन सम्बन्धी रोग में (द) उपरोक्त सभी में

रिक्त स्थनों की पूर्ति करो –

(1) हठप्रदीपिका में शक्तिचालिनी का वर्णन .... श्लोक में मिलता है।
(2) शक्तिचालिनी के अभ्यास के बिना .... मुद्रा सिद्ध नहीं हो सकती है।
(3) विपरितकरणी मुद्रा में .... बन्ध नहीं लगता है।
(4) विपरितकरणी मुद्रा में क्रमशः ...., ... व .... चक्र पर ध्यान किया जाता है।

सत्य और असत्य को चिन्हित करें –

(1) विपरितकरणी मुद्रा में हमारे शरीर की स्थिति विपरित हो जाती है। (...........)
(2) वज्रोली मुद्रा ब्रहमचर्य के पालन के लिए बहुत ही उपयोगी क्रिया है। (...........)
(3) वज्रोली मुद्रा वज्रा नाड़ी से सम्बन्धित नहीं है। (...........)
(4) घेरण्ड संहिता में शक्तिचालिनी मुद्रा का वर्णन 61 से 72वें श्लोक में किया है। (...........)

18.6 सारॉश

प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि हठयोग जो कि राजयोग की प्राप्ति में सीढ़ी की तरह काम करने वाला एक साधन रूप योग साधना है, इसमें किस प्रकार से मुद्राओं का वर्णन किया गया है। वैसे यदि देखा जाये तो हठयोग में मुद्राबन्ध के अन्तर्गत कहीं पर 24 की

संख्या तो कहीं पर 10 की संख्या में मुद्राओं का वर्णन मिलता है। संख्या में भिन्नता होने के बावजूद भी हठयोग के अभ्यास में मुद्राओं का विशेष महत्व है। इसके अभाव में हठयोग में पूर्णता प्राप्त करना कठिन ही नहीं असम्भव सा लगता है।

प्रस्तुत इकाई में वर्णित विपरीतकरणी मुद्रा, वज्रोलीमुद्रा एवं शक्तिचालिनी मुद्रा ये तीनों अपने आप में विशिष्ट मुद्रा हैं। यह बहुत व्यवहारिक तो नहीं हैं लेकिन इनका प्रभाव बहुत सूक्ष्म और फलदायी है। बिना योग्य गुरू के संरक्षण के ये कठिन एवं रहस्यमय अभ्यास सम्भव नही हैं। इसके अभ्यास के लिये अनुभवी गुरू का मार्गदर्शन अत्यन्त आवश्यक है। केवल सुनकर या पढ़कर इन अभ्यासों को करना हानिकारक भी हो सकता है।

प्रस्तुत इकाई में आपको विस्तार में तीनों मुद्राओं की जानकारी दी गई है। जिसमें मुद्रा के नामकरण विधि, लाभ एवं अभ्यास में रखने वाली सावधानियों के बारे में विस्तार से समझाया गया है। साथ ही हठयोग के ग्रन्थों में कहां पर इन मुद्राओं की चर्चा हमें मिलती है इस बारे में भी समझाया गया है। भिन्न–भिन्न ग्रन्थों एवं लेखकों के अपने व्यक्तिगत अनुभव होते हैं, जिसके कारण हमें क्रियापद्धति में भिन्नता देखने को मिल जाती है। प्रस्तुत इकाई में इस भिन्नता को भी स्पष्ट करके बताया गया है।

प्रस्तुत इकाई में पाठकों की समस्त जिज्ञासाओं का समाधान करने का प्रयास किया गया है। विषय से अनभिज्ञ नये व्यक्ति इस इकाई से विषय के बारे में उसकी महत्ता के बारे में जान पायेंगे।

18.7 शब्दावली

- श्वास – नासिका द्वार से बाहरी वायु को भीतर लेना।
- प्रश्वास – भीतर की वायु की बाहर निकालना
- दृढ़ता – मजबूती
- जिज्ञासा – जानने की इच्छा
- जिज्ञासु – जानने की इच्छा रखने वाला
- पूर्णतः – पूरी तरह से
- संकोच – सिकोड़ना
- ओज – तेज
- लोलुप्ता – लालच
- दीर्घपूरक – लम्बी श्वास भीतर लेना
- उर्ध्वगामी – ऊपर की ओर गति करने वाली
- पंचतत्व – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश (5 तत्व)
- सक्षम – समर्थ
- कुण्डलिनी – शक्तिचालिनी मुद्रा के अन्तर्गत कुण्डलिनी शक्ति को जानना अत्यन्त आवश्यकता है।
- स्वप्नदोष – सामान्य रूप से यह पुरूषों को होता है, यह शारीरिक नहीं बल्कि मानसिक रोग है। व्यक्ति का अपने मन की विचारधारा और भावना पर नियन्त्रण नही रहता और कामुक विचार मन में आते हैं, वासनापूर्ण विचार निद्रा के समय आते हैं, तब उनका प्रभाव इन्द्रियों पर पड़ता है वह कमजोर हो जाती हैं। मानसिक

उद्वेग का प्रभाव प्रजनन इन्द्रियों पर पड़ता है और वीर्य को शरीर से बाहर निकालता है।

18.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- **बहुविकल्पिय प्रश्नों के उत्तर –**

(1). द (2). स (3). अ (4). द

- **रिक्त स्थानों के उत्तर –**

(1) 100 से 118वें (2) योनि (3) जालन्धर (4) मणिपूर, विशुद्धि व विन्दु

- **सत्य और असत्य प्रश्नों के उत्तर –**

(1) सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) सत्य

18.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. घरेण्ड संहिता– स्वामी निरन्जनानन्द
2. हठप्रदीपिका – कुवल्यानन्द
3. हठयोग प्रदीपिका – स्वामी मुक्तिबोधानन्द
4. आसन, प्राणायाम, मुद्राबन्ध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

18.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. विपरीतकरणी मुद्रा क्या है? इसके अर्थ को समझाते हुए इससे मिलने वाले लाभों पर प्रकाश डालें।
2. विपरीतकरणी मुद्रा की विधि को विस्तार से समझाते हुऐ इसके अभ्यास में ली जाने वाली सावधानियों का वर्णन करें।
3. वज्रोली मुद्रा क्या है? इसके अर्थ को समझाते हुऐ इससे मिलने वाले लाभों पर प्रकाश डालें।
4. वज्रोली मुद्रा की विधि को विस्तार से समझाते हुऐ इसके अभ्यास में ली जाने वाली सावधानियों का वर्णन करें।
5. शक्तिचालिनी मुद्रा क्या है? इसके अर्थ व विधि को समझाते हुऐ इससे मिलने वाले लाभों पर व सावधानियों पर प्रकाश डालें।

इकाई 19 – शीर्षक – नाड़ियाँ

19.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम जानते ही हैं कि हठयोग विद्या शरीर को साधते हुऐ मन को साधने की प्रकिया है। यह शरीर से प्रारम्भ होकर मन के स्तर में कार्य करने वाली पद्धति है। कहा भी गया है कि 'केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते' अर्थात् केवल राजयोग की प्राप्ति के लिये ही हठ विद्या का उपदेश दिया गया है।

शारीरिक स्तर पर यदि बात की जाये तो हमें वैज्ञानिक स्तर से ज्ञात होता है। कि कोशिका से विकसित होते हुऐ ये मानव शरीर का रूप लेता है। परन्तु योग के अनुसार ये विचारधारा अलग ही रूप से कार्य करती है। पंचकोश एवं तीन शरीर की अवधारणा के अनुसार शरीर के निर्माण की चर्चा हमें योग में मिलती है। इसके साथ–साथ हमें शरीर में चक्र, नाड़ी, ग्रन्थियों आदि की भी जानकारी सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत हठयोग के अनुसार प्राप्त होती है। जिसमें से बहुत ही महत्वपूर्ण विषय नाड़ियों के बारे में विस्तार से जानकारी आपको प्रस्तुत इकाई में दी जा रही है। जिसे पढ़कर आप स्थूल शरीर की नाड़ियों और सूक्ष्म शरीर की नाड़ियों में अन्तर ज्ञात कर पायेंगे, साथ ही योग क्षेत्र में इनकी क्या महत्तता है इस बारे में भी आपको विस्तार से जानकारी प्राप्त होगी। विषय से सम्बन्धित समस्त जिज्ञासाओं की सन्तुष्टि आपको प्रस्तुत इकाई को पढ़कर प्राप्त होगी।

नाड़ियों को समझने के लिये और उनके अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिये यह जानना आवश्यक है कि वे शारीरिक नही है जिसके कारण इन्हें देखा नहीं जा सकता है। नाड़ियाँ ऐसी बुनियादी शक्ति होती हैं जो हमारे जीवन और चेतना को उत्प्रेरित करती है।

19.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़कर आप जान पायेंगें कि –

- योग ग्रन्थों में बताये गये नाड़ियों के स्वरूप के बारे में।
- नाड़ियों के प्रकार के बारे में।
- नाड़ियों के कार्यों के बारे में।
- मानव शरीर में नाड़ियों की उपयोगिता के बारे में।
- योग में नाड़ियों के महत्व के बारे में।
- प्राण और नाड़ियों के सम्बन्ध के बारे में।
- तीन महत्वपूर्ण नाड़ियों के बारे में विस्तार से जानकारी।
- श्वास एवं नाड़ियों में सम्बन्ध।
- नाड़ियों का तंत्रिका तंत्र से सम्बन्ध।
- नाड़ियों में असन्तुलन एवं इससे होने वाली समस्याऐं।
- नाड़ियों के अस्तित्व के प्रमाण।

19.3 नाड़ी

नाड़ियों के अस्तित्व पर विश्वास करने से पूर्व उनके विषय में जानना आवश्यक है। इन्हें अनुभव स्तर पर जानना तभी सम्भव हो पाता है जब व्यक्ति की चेतना एक विशेष स्थिति में आती है। इसकी शक्ति को शक्ति प्रवाह के रूप में जाना जाता है, अतीन्द्रीय स्तर पर नाड़ियों के प्रवाह को देखकर ज्ञात होता है कि इनके अनेक रंग, ध्वनि प्रकाश आदि हैं। नाड़ियाँ शरीर के सभी कार्यों एवं प्रक्रियाओं के साथ कार्य करती हैं, ये शरीर और मन से अलग नही हैं। जिस प्रकार बिजली के तारों द्वारा करन्ट को अनेकों स्थानों में प्रवाहित किया जाता है। ठीक उसी प्रकार नाड़ियाँ सम्वेदनाओं एवं प्राण को प्रवाहित करती हैं। स्थूल शरीर में इन्हें नर्व के रूप में भी जाना जा सकता है जो रक्त प्रवाह में सहायक होती है। परन्तु योग में वर्णित जिन नाड़ियों की बात हम कर रहे हैं वे नग्न आँखों से नहीं देखी जा सकती क्योंकि वे सूक्ष्म होती हैं और उनमें सूक्ष्म प्राण शक्ति ही प्रवाहित होती है। सामान्यतः शरीर में पायी जाने वाली नर्व मृत्यु के बाद में शरीर में देखी जा सकती है परन्तु यौगिक नाड़ियाँ केवल जीवित शरीर में ही पायी जाती हैं। मृत्यु के बाद ये शरीर में नही पाई जाती है।

19.3.1 नाड़ी शब्द का अर्थ – नाड़ी शब्द संस्कृत के 'नाड्य' धातु से बना है जिसका अर्थ है – गतिमान रहना। जब तक व्यक्ति जीवित रहता है तब तक व्यक्ति में ये नाड़ियां संवेदनाओं, प्राण, उद्वेगों आदि को सतत् प्रवाहित करती रहती है, इसीलिये इन्हें नाड़ी कहा जाता है। कहा जा सकता है कि योग ग्रन्थों में नाड़ी शब्द का प्रयोग ऐसे अंगों के लिये हुआ है जो खाद्य पदार्थों, पेय, रक्त, लसीका वायु और नाड़ी संवेगों के परिवहन के लिये बड़े या छोटे मार्ग के रूप में काम करते हैं।

19.3.2 नाडियों की संख्या – हठयोग के विभिन्न ग्रन्थों में नाड़ियों की संख्या अलग–अलग बताई गई है। वास्तव में हमारे शरीर में नाड़ियों का जाल बिछा हुआ है, फलतः ये असंख्य मानी जाती हैं। फिर भी विद्वानों एवं सूक्ष्मदर्शियों ने अपने अनुभव से इन्हें देखा और इनकी संख्या का वर्णन किया है, विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित नाड़ियों की संख्या का वर्णन इस प्रकार से है –

शिवसंहिता के अनुसार – शिवसंहिता में $3_{1/2}$ लाख नाड़ियों की चर्चा मिलती है।

सार्धलक्षत्रयं नाड़यः सन्ति देहान्तरे नृणाम्।
प्रधानभूता नाड्यस्तु तासु मुख्याश्चतुर्दश।। (2/13 शि0 सं0)

अर्थात् – मानव शरीर में साढ़े तीन लाख (3,50,000) नाड़ियाँ हैं, उनमें प्रधान रूप से चौदह नाड़ियाँ ही मुख्य हैं।

वशिष्ठ संहिता के अनुसार – वशिष्ठ संहिता में 72000 नाड़ियों की चर्चा मिलती है। नाड़ियों की कुल संख्या में हमें भेद मिलता है परन्तु उन सभी में 14 नाड़ियाँ मुख्य मानी गई है। इन 14 नाड़ियों में से भी तीन नाड़ियों को विशेष माना गया है। तीन नाड़ियों में से एक मुख्य है। जिनका नाम इस प्रकार से है –

1. इड़ा	6. कुहू	11. वारूणी
2. पिंगला	7. सरस्वती	12. अलंबुशा
3. सुषुम्ना	8. पूषा	13. विश्वोदरा
4. गांधारी	9. शंखिनी	14. यशस्विनी
5. हस्तिजिह्वा	10. पयस्विनी	

उपरोक्त 14 नाड़ियों में तीन मुख्य नाड़ियाँ हैं–

(1) इड़ा (2) पिंगला (3) सुषुम्ना

उपरोक्त तीन नाड़ियों में से सबसे प्रमुख नाड़ी है– 'सुषुम्ना'। सुषुम्ना के भीतर भी तीन और नाड़ियाँ उपस्थित रहती है। वज्रा नाड़ी, चित्रा नाड़ी एवं ब्रह्म नाड़ी। इनमें ब्रह्म नाड़ी सबसे सूक्ष्म होती है।

ऊपर वर्णित 14 नाड़ियों में मुख्य तीन इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ी के अतिरिक्त समस्त नाड़ियाँ के स्थान एवं कार्य क्षेत्रों का वर्णन शिव संहिता के द्वितीय पटल के 29–30 श्लोक में इस प्रकार मिलता है –

अन्याः सन्त्यपरा नाड्यो मूलाधारात्समुत्थितः।
रसना मेद्र नयनं पादांगुष्ठे च श्रोत्रकम् ।।
– (2/29 शिव संहिता)

कुक्षिकक्षां गुश्ठवर्णं सर्वांगं पायुकुक्षिकम् ।
लब्धान्ता वै निवर्तन्ते यथादेश समुद्भवाः।।
– (2/30 शिव संहिता)

अर्थात् – इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना के अतिरिक्त अन्य दूसरी नाड़ियाँ भी मूलाधार से उत्पन्न हुई हैं। जिह्वा, लिंग, नेत्र, दोनों पादांगुष्ठ, कान तथा कांख, हाथ का अंगूठा, गुदा एवं पेट, इन सब अंगों में इनका अन्त हुआ है। इस प्रकार सभी नाड़ियाँ मूलाधार से उत्पन्न होकर अपने–अपने गन्तव्य को प्राप्त होकर निवृत्त हो जाती है।

जैसा कि आपने जाना कि हमारे शरीर में तीन मुख्य नाड़ियाँ हैं इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना। आइये इनके बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करें –

योगियों ने इन नाड़ियों के अस्तित्व एवं इनकी शक्ति को पहचानकर उनके सम्बन्ध को स्पष्ट किया है। इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना को शरीर, मन एवं आत्मा के रूप में वर्णित किया है। तीसरी शक्ति पहली और दूसरी शक्ति के बीच सन्तुलन स्थापित होने से उत्पन्न होती है। सामान्यतः व्यक्ति अपने पूरे जीवन में इड़ा एवं पिंगला अर्थात् शरीर और मन के स्तर में ही कार्य करता है, तीसरी शक्ति सुषुप्त रहती है। जिसे यौगिक अभ्यास द्वारा जागृत किया जाता है।

इड़ा नाड़ी – इड़ा नाड़ी शीतल नाड़ी होती है। ये हमारे बायें नासारन्ध्र द्वारा प्रवाहित होती है। इसे चन्द्र, शीत, कफ, अपान, रात्रि, शक्ति, जीव, तामस आदि नामों से भी जाना जाता है। चेतना को अन्तर्मुखी बनाती है। इसका सम्बन्ध परानुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र से होता है, इसलिये इससे सम्बन्धित क्रियाविधि को इड़ा नाड़ी प्रभावित करती है। इड़ा का उद्गम स्थान हमारी मेरूदण्ड का निचला भाग मूलाधार चक्र है। यहाँ से होती हुई ये आज्ञा चक्र तक फैली होती है। मूलाधार से इड़ा नाड़ी बाईं ओर से वक्राकार विशुद्धि चक्रों को पार करती हुई आज्ञा चक्र पर जाकर बाईं ओर विलीन हो जाती है। इड़ा नाड़ी का रंग नीला होता है।

शिव संहिता में द्वितीय पटल के 25वें श्लोक में इड़ा नाड़ी की स्थिति एवं कार्यक्षेत्र को इस प्रकार से बताया है –

इड़ा नाम्नी तु या नाड़ी वाममार्गे व्यवस्थिता।
मध्यनाड़ी समाश्लिष्य वाम नासापुटे गता।।
– (2/25 शिव संहिता)

अर्थात् इड़ा नाम की नाड़ी जो कि वाम भाग में स्थित है, वह सुषुम्ना नाड़ी से लिपटाकर बायें नासापुट तक गयी है।

पिंगला नाड़ी – पिंगलानाड़ी उष्णता प्रदायिनी होती है। यह दायें नासारन्ध्र में प्रवाहित होती है। इसे सूर्य, उष्ण, पित्त, प्राण, दिन, शिव, रजस एवं ब्रह्म आदि नामों से भी जाना जाता है। पिंगला नाड़ी व्यक्ति में जोश उत्साह उत्पन्न करती है। यह चेतना को बहिर्मुखी बनाती है। इसका सम्बन्ध अनुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र से होता है, इसीलिये इससे सम्बन्धित क्रियाविधि को पिंगला नाड़ी प्रभावित करती है। इसका उद्गम स्थान मूलाधार चक्र के दाहिनी ओर है वहाँ वक्राकार होती हुये पिंगला नाड़ी आज्ञा चक्र के दाहिनी ओर पहुँचकर समाप्त हो जाती है। पिंगला नाड़ी का रंग लाल होता है।

शिव संहिता के द्वितीय पटल के 26वें श्लोक में पिंगला नाड़ी की स्थिति एवं कार्यक्षेत्र को बताया गया है जो कि इस प्रकार से है –

पिंगला नाम या नाड़ी दक्षमार्गे व्यवस्थिता।
सुषुम्नां सा समाश्लिष्य दक्ष नासापुटे गता।।
– (2/26 शिव संहिता)

अर्थात् पिंगला नाम की नाड़ी जो दाहिने मार्ग में स्थित है, वह सुषुम्ना से लिपटकर दाहिने नासापुट तक गयी हुई है।

सुषुम्ना नाड़ी – इसकी शक्ति अनन्त है। जब इड़ा, पिंगला नाड़ी में सन्तुलन स्थापित हो जाता है तब यह जाग्रत होती है। यह मेरूदण्ड के बीच में प्रवाहित होती है। इसकी जागृत अवस्था में मस्तिष्क पूरा क्रियाशील हो जाता है। हठयोग में वर्णित कुण्डलिनी शक्ति भी इसी नाड़ी के भीतर उपस्थित सबसे सूक्ष्म अन्तिम नाड़ी ब्रह्मनाड़ी में ही गति करते हुऐ सहस्रार में शिव से जाकर मिलती है।

सुषुम्ना नाड़ी को तमोगुण से सम्बन्धित माना जाता है। सुषुम्ना नाड़ी में प्राण संचार के समय अवरोध उत्पन्न करने वाली तीन ग्रन्थियाँ भी इसमें पायी जाती हैं, जिन्हें हठप्रदीपिका में इस प्रकार से समझाया गया है – (हठप्रदीपिका 3/70,71)

(1) ब्रह्म ग्रन्थि – (अनाहतचक्र के भीतर हृदय क्षेत्र में)
(2) विष्णु ग्रन्थि – (विशुद्धिचक्र के भीतर कण्ठ के क्षेत्र में)
(3) रूद्रग्रन्थि – (आज्ञाचक्र के भीतर भ्रूमध्य के क्षेत्र में)

हठप्रदीपिका के तृतीय अध्याय के चौथे श्लोक में वर्णन मिलता है कि सुषुम्ना को अनेक नामों से जाना जाता है जिसका वर्णन इस प्रकार से है – शून्यपदवी, ब्रह्मरन्ध्र, महापथ, श्मशान, शाम्भवी, मध्यमार्ग।

सुषुम्ना के उपरोक्त विभिन्न नाम उसके स्वरूप, उद्देश्य तथा भूमिका आदि आयामों के परिचायक हैं। आइये इन्हें विस्तार से जानें –

(1) शून्यपदवी – इससे उस परमं तत्व का बोध होता है, जो वर्णनातीत है। अतः शून्य कहा गया है। सुषुम्ना इस परम तत्व को प्राप्त कराने में सहायक होती है अतः इसे शून्यपदवी के नाम से अभिहित किया जाता है।

(2) ब्रह्मरन्ध्र – ब्रह्म शब्द परम तत्व का वाचक है, तथा रन्ध्र का अर्थ है मार्ग। इस प्रकार जिस मार्ग का अनुसरण कर ब्रह्म की प्राप्ति हो उसे ब्रह्मरन्ध्र कहा जाता है।

(3) महापथ – महा का अर्थ होता है महान और पथ का अर्थ होता है मार्ग। इड़ा और पिंगला की तुलना में सुषुम्ना को महापथ कहा गया है, क्योंकि इसी मार्ग का अनुवर्तन कर परम तत्व अर्थात् महान तत्व (ब्रह्म) तक पहुँचा जा सकता है।

(4) श्मशान – भारतीय पौराणिक मान्यताओं के अनुसार भगवान शिव को भूतनाथ भी कहा जाता है, जो कि श्मशान के प्रति विमुखता प्रदान करता है। श्मशान में जाकर सांसारिक आसक्ति समाप्त हो जाती है। चूंकि सुषुम्ना सांसारिकता से विमुख करके मनुष्य को भूतनाथ अर्थात् शिव तक पहुँचाने में सक्षम है, अतः इसलिये इसे श्मशान कहा गया है।

(5) शाम्भवी – शम्भू अर्थात् शिव। हठयोग में कुण्डलिनी को शक्ति के नाम से भी जाना जाता है। कुण्डलिनी शक्ति शम्भू यानि कि शिव से मिलने के लिये जिस मार्ग का अनुसरण करती है वह सुषुम्ना है। इसलिये उस मार्ग को अर्थात् सुषुम्ना को शाम्भवी कहा जाता है।

(6) मध्यमार्ग – हठयोग के अनुसार शरीर में उपस्थित अनेक नाड़ियों में इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना ये तीन नाड़ियाँ महत्वपूर्ण हैं। इड़ा का स्थान बायीं ओर, पिंगला का स्थान दाहिनी ओर तथा सुषुम्ना का स्थान इन दोनों के मध्य में है। हठयोग के उच्च अभ्यासों में सुषुम्ना मार्ग का अनुसरण करना अत्यन्त आवश्यक है। सुषुम्ना का स्थान इड़ा एवं पिंगला नाड़ी के मध्य में होने के कारण उसे मध्यमार्ग कहा गया है।

जब सुषुम्ना में गति होती है, वह अपना कार्य करना शुरू करती है तब इड़ा एवं पिंगला नाड़ी की क्रिया रूक जाती है या हम कह सकते हैं कि इनकी क्रिया नियन्त्रित हो जाती है।

शिव संहिता के द्वितीय पटल के 27वें श्लोक में सुषुम्ना नाड़ी की स्थिति एवं कार्यक्षेत्र को इस प्रकार से बताया गया है –

इड़ापिंगलयोर्मध्ये सुषुम्ना या भवेत्खलु।
षट् स्थानेषु च शट्शक्तिं षट्पद्मं योगिनो विदुः।।
– (2/27 शिव संहिता)

अर्थात् – जो नाड़ी इड़ा और पिंगला के बीच में स्थित है वह निश्चित ही सुषुम्ना कही गयी है। योगीजन इसी सुषुम्ना के छः स्थानों पर छः शक्तियों और छः चक्रों को जानते हैं।

सुषुम्ना के भीतर स्थित चित्रा नाड़ी का वर्णन शिव संहिता के द्वितीय पटल के 161–163 श्लोक में इस प्रकार से किया गया है–

यस्याः स्मरणमात्रेण ब्रह्मज्ञत्वं प्रजायते।
पापक्षयश्च भवाति न भूयः पुरूषो भवेत्।।

प्रवेषितं चलाङ्.गुष्ठं मुखे स्वस्य निवेशयेत्।
तेनात्र न वहत्येव देहचारी समीरणः ।।
तेन संसारचक्रेडास्मिन् न भ्रमन्त्येव सर्वदा।
तदर्थ च प्रवर्तन्ते योगिनः प्राणधारणे।।

अर्थात् – भगवान शिव पार्वती जी से कहते है कि हे प्रिये पार्वती! सुषुम्ना में स्थित नाड़ी चित्रा कही जाती है। मेरे मतानुसार उसी में ब्रह्मरन्ध्र आदि की कल्पना करनी चाहिये। चित्रा नाड़ी के स्मरण मात्र से ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति हो जाती है, और पापों का नाश हो जाता है, तथा पुनः इस संसार में नहीं आना पड़ता। अपने मुख में दाहिने हाथ के अंगूठे को प्रविष्ट कर उसे स्थापित कर देना चाहिये। इस अभ्यास से ही पेट में प्रवाहित होने वाली वायु ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर हो जाती है। योगीजन इसी अभ्यास के कारण इस संसार चक्र में कभी भी भ्रमित नहीं होते हैं। इसीलिये योगीजन इसे प्राण धारणा का अभ्यास करते हैं। कहा भी गया है कि इड़ा, पिंगला के बीच में सुषुम्ना नाड़ी योनि के मध्य तक जाती है, वहीं सुषुम्ना के आधारमण्डल के बीच में ब्रह्मरन्ध्र है, जो साधक इसे जान लेता है वह बुद्धिमान साधक कहलाता है, और फिर वह बुद्धिमान साधक कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

हम पहले भी चर्चा कर चुके हैं कि इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना समस्त नाड़ियों में प्रमुख नाड़ियाँ होती हैं। इन्हें क्रमशः गंगा, यमुना और सरस्वती के नाम से जाना जाता है। सांसारिक मान्यतानुसार जिस प्रकार गंगा, यमुना, सरस्वती तीनों नदियों के संगम में स्नान करने से मुक्ति की प्राप्ति होती है, ठीक उसी प्रकार इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना के संगम में स्नान करने से भी व्यक्ति की मुक्ति होती है।

19.4 नाड़ियों में प्राण का प्रवाह –

आपने जाना कि हमारा दायाँ नासाछिद्र में पिंगला नाड़ी तथा बायाँ नासाछिद्र में इड़ा नाड़ी उपस्थित होती है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीनों नाड़ियाँ हमारे शरीर में एक के बाद एक गति करती है। प्राण इन्हीं 72000 हजार आदि समस्त नाड़ियों द्वारा पूरे शरीर में भ्रमण करता है।

किसी विशेष समय में कौन सी नाड़ी क्रियाशील है इसे नासिका में चल रहे श्वास के प्रवाह से देखा जा सकता है। जब दाहिने नासाछिद्र से श्वास तेज चल रहा हो तो उस समय पिंगला नाड़ी क्रियाशील होती है और जब बायें नासाछिद्र से श्वास तेज गति कर रहा हो तो उस समय इड़ा नाड़ी क्रियाशील होती है। यदि दोनों नासाछिद्रों से समान रूप से श्वास गति कर रही होती है तो उस समय सुषुम्ना नाड़ी क्रियाशील रहती है।

पिंगला नाड़ी के प्रवाह के समय शारीरिक कार्यों, भोजन के पाचन, दौड़–भाग आदि के लिये अधिक प्राण शक्ति मिलती है। उस समय व्यक्ति बहिर्मुखी प्रकृति वाला हो जाता है। साथ ही उस समय शरीर में गर्मी रहती है। जब शरीर में इड़ा नाड़ी का प्रवाह रहता है उस समय मनः शक्ति प्रधान रहती है। मन अन्तर्मुखी हो जाता है। मानसिक कार्य इस समय करने से लाभ मिलता है। निद्रा के समय भी इड़ा नाड़ी की क्रियाशीलता लाभप्रद होती है। इड़ा नाड़ी की गतिशीलता व्यक्ति को शान्त, प्रसन्न, स्थिर बनाती है।

मानवीय व्यवहार की समस्त गतिविधियां नाड़ियों के प्रवाह से प्रभावित होती हैं, लेकिन यौगिक अभ्यासों द्वारा इसकी गति को अपने अनुसार बदला भी जा सकता है। इसके लिये प्राणायाम बहुत ही प्रभावी अभ्यास है। उदाहरण के लिये यदि इड़ा नाड़ी क्रियाशील है और व्यक्ति को कोई शारीरिक जोशीला कार्य करना हो तो प्राणायाम द्वारा पिंगला नाड़ी को

क्रियाशील किया जा सकता है। इसके विपरीत यदि पिंगला नाड़ी चल रही हो और व्यक्ति को नींद, पूजा–पाठ आदि कार्य करने हों तो प्राणायाम द्वारा इड़ा नाड़ी को क्रियाशील बनाया जा सकता है। इड़ा और पिंगला नाड़ी में सन्तुलन स्थापित करने के लिये षट्कर्मों का अभ्यास करना लाभप्रद रहता है। इसके लिये 24 घंटे में 12 घंटे पिंगला तथा 12 घंटे इड़ा नाड़ी क्रियाशील रहनी आवश्यक होती है। जब ये दोनों नाड़ी शुद्ध एवं संतुलित हो जाती हैं तथा मन नियन्त्रण में आ जाता है तो उस समय सुषुम्ना नाड़ी प्रवाहित होने लगती है। ध्यान में सफलता के लिये सुषुम्ना का प्रवाहित होना आवश्यक होता है। जब पिंगला ज्यादा क्रियाशील होती है तो शरीर अशान्त रहता है जब इड़ा ज्यादा क्रियाशील हो तो मन कार्य करेगा जब सुषुम्ना क्रियाशील होती है तो कुण्डलिनी शक्ति की जाग्रति की क्रिया होती है।

19.5 नाड़ियाँ तथा तंत्रिका तन्त्र

नाड़ियाँ हमारे शरीर के स्वैच्छिक तन्त्रिका तन्त्र के दो पक्षों अनुकम्पी तथा परानुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र को प्रभावित करती है। पिंगला नाड़ी अनुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र से सम्बन्धित होती है और इड़ा नाड़ी परानुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र से सम्बन्धित होती है। अनुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र बाह्य वातावरण से सम्बन्धित गतिविधियों के उद्दीपन तथा त्वरण के लिये उत्तरदायी होता है। अनुकम्पी तन्त्रिकाएें हृदयगति को बढ़ाने, रक्त वाहिनियों को फैलाने, श्वसन गति को तेज करने के साथ–साथ आँखों, कानों एवं अन्य अंग अवयवों की कार्य क्षमता को बढ़ाने का कार्य करती है। परानुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र अनुकम्पी तन्त्रिका तन्त्र के ठीक विपरीत कार्य करती है जैसे – हृदय गति को मन्द करना, रक्तवाहिनियों को सिकोड़ना, खास गति धीमी करना आदि कार्य। योगाभ्यास द्वारा इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों पर नियन्त्रण करके तंत्रिका तंत्र के कार्यों पर भी नियन्त्रण एवं सजगता स्थापित की जा सकती है।

19.6 नाड़ियों के अस्तित्व के प्रमाण

हठयोग विद्या के अन्तर्गत समस्त क्रियाकलाप यहाँ तक कि कुण्डलिनी जागरण जैसी उच्चतम प्रक्रियाऐं नाड़ियों की गतिविधियों से ही प्रभावित रहती हैं। अतः वैज्ञानिक मान्यता हेतु शक्ति–प्रवाहों के अतीन्द्रिय माध्यमों अर्थात् नाड़ियों के अस्तित्व को सिद्ध करना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। हठयोगी ये मानते हैं कि मानव शरीर के अन्दर नाड़ी मण्डल शक्ति प्रवाह का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। इसी के द्वारा शरीर एवं मन दोनों को ऊर्जा प्राप्त होती है।

मनुष्य के शरीर में हजारों नाड़ियां हैं किन्तु इनमें तीन प्रमुख हैं इनके नाम हैं इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना। इन नाड़ियों का आधार शरीर अवश्य है किन्तु इनका कोई भौतिक अस्तित्व नही है। ये मात्र कार्यात्मक हैं। ये नाड़ियाँ गतिशील, सक्रिय, स्फूर्तिदायक, शरीर एवं मन को शक्ति प्रदान करने वाली हैं। तथा इनका स्नायुओं, रक्त कोषों तथा शरीर के अन्य सभी अंगों से गहन सम्बन्ध है। इन नाड़ियों की कोई शारीरिक संरचना न होने पर भी योगियों के अनुसार इनका अस्तित्व निश्चित रूप से है और उन्होंने शरीर में इन नाड़ियों के मार्ग तथा उन पर इनके पड़ने वाले प्रभावों का भी स्पष्ट वर्णन किया है।

'इन्टरनेशनल एसोसियेशन फॉर रिलीजन एण्ड पैरासाइकॉलोजी' के अध्यक्ष डॉ0 हिरोशी मोटोयामा नाड़ियों, आक्यूपंचर रेडियन, एवं चक्रों के अस्तित्व को प्रमाणित करने हेतु निरंतर कार्यरत है। उन्होंने योग के विज्ञान पर प्रकाश डालने के लिये एवं इस ज्ञान को वैज्ञानिक स्तर पर सिद्ध करने के लिये कुछ यन्त्रों का निर्माण किया है। उनके अनुसार ''पिछले दो

वर्षों से योग में वर्णित चक्रों और नाड़ियों की अनेक पुस्तकों के अध्ययन के पश्चात् मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि आसन, मुद्रा, प्राणायाम और धारणा के विकास का आधार नाड़ी मण्डल का जाल ही है।''

योग के अनुसार चक्र अतीन्द्रिय शक्ति को शारीरिक शक्ति एवं शारीरिक शक्ति को अतीन्द्रिय शक्ति में बदलने का कार्य करते हैं। इसका माध्यम नाड़ियाँ ही हैं। चक्रों और नाड़ियों के जो क्षेत्र बतलाये गये हैं वहाँ अनेक आक्यूपंचर मेरिडियन भी उपस्थित हैं। उदाहरण के लिये मेरूदण्ड में 'गवर्नर वेसेल' (नियामक वाहिका) सुषुम्ना के सदृश तथा शरीर के मध्य स्थित कन्सेप्शन वेसल (संकल्पन वाहिका) का प्रयोग कुण्डलिनी अभ्यास में होता है। अनेकानेक मेरिडियन किसी चक्र में आरम्भ या समाप्त होते हैं।

डॉ0 हिरोशी मोटोयामा ने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि नाड़ियों का अस्तित्व है। और यह ऊर्जा प्रवाह जिसे हम प्राण कहते हैं, की वाहक होती है।

19.7 नाड़ियों में असन्तुलन

नासिका में चलने वाला श्वास नाड़ियों से सम्बन्धित रहता है। हम कह सकते हैं कि हमारे भौतिक शरीर के अस्तित्व का कारण एक ऐसी ऊर्जा का प्रवाह है, जिसमें भौतिक तथा अतीन्द्रिय दोनों प्रकार की क्षमता है। स्वाभाविक श्वसन का नाड़ियों से गहनतम सम्बन्ध है। पिंगला की क्रियाशीलता बायें मस्तिष्क से तथा इड़ा की क्रियाशीलता दायें मस्तिष्क से सम्बन्धित है। स्वर योग में भी हमें इन नाड़ियों की गति के अनुसार शरीर एवं मन की स्थिति का पता चलता है।

प्राणायाम में नियन्त्रण स्थापित करके अधिकतम सूक्ष्म स्तरों पर ऐसा अधिकार प्राप्त किया जा सकता है जिससे ऊर्जा मुक्त की जा सकती है, तथा उसे शरीर के उन अंगों में जिन्हे हम शक्तिशाली बनाना चाहते हैं, स्वस्थ बनाना चाहते हैं तथा जिनका जागरण करना चाहते हैं, में भेजा जा सकता है।

डॉ0 आई0 एन0 रिग0 बुखारेस्ट ने रूमानिया ने अपने शोध से यह पता लगाया कि श्वसन और नाड़ियों के प्रवाह से शरीर और मन प्रभावित होते हैं। उन्होंने अपने शोध में पाया कि जिनकी श्वसन प्रक्रिया में, पिंगला नाड़ी की प्रधानता थी। ये लोग विशेष प्रकार के श्वसन सम्बन्धि रोगों से ग्रसित थे जैसे– दीर्घकालिक साइनोसाइटिस, कान में संक्रमण, नाक, कान या जीभ की शक्ति की आंशिक या पूर्ण रूप से निष्क्रियता, बारम्बार होने वाली ग्रसनी शोध (फेरिंगाइटिस), स्वरयंत्र शोध (लेरिंगाइटिस), टांसिलाइटिस एवं चीरश्वसनी शोध (क्रॉनिक ब्रोंकाटिस)।

उन्होंने यह भी पाया कि जिन व्यक्तियों की श्वसन प्रक्रिया में इड़ा नाड़ी की प्रधानता थी, वे स्मृतिलोप(एमनिजिया) बौद्धिक कमजोरी, सिर दर्द, थायरायड ग्रन्थि की अतिक्रियाशीलता, हृदयपात, यकृत की खराबी, आमाशय शोध, कोलाइटिस, पौप्टिक अल्सर, कब्ज तथा जननांगों से संबंधित बीमारियों से ग्रसित थे। साथ ही तनावग्रस्त रोगियों में पिंगला नाड़ी की अधिक क्रियाशीलता पायी जाती गयी थी। उनके शोध में नासिका अवरोध दूर करने पर बीमारियों में आराम पाया गया। डॉ0 रिग ने अपने शोध से सिद्ध किया कि श्वसन का प्रभाव उसने प्रवाह के अनुरूप शरीर और मन को बहुत हद तक प्रभावित करता है। हम कह सकते हैं कि नाड़ियों में असन्तुलन होने से व्यक्ति रोगग्रसित हो जाता है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति में श्वसन पर नियन्त्रण करने वाली यौगिक क्रियाओं को जोड़कर रोगोपचार में लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। साथ ही यौगिक अभ्यास प्राणायाम द्वारा अपने अस्तित्व के अधिक सूक्ष्म स्तर पर अतीन्द्रिय ऊर्जा तथा तंत्रिका संस्थान को प्रभावित कर

शरीर तथा मन की स्थिति को भी बदला जा सकता है। नासिका वो माध्यम है जो बीमारी को दूर करने में सहायक सिद्ध होता है। श्वसन की गति, दर, लय, लम्बाई, तथा समय पर नियन्त्रण, नासिका में श्वास एवं प्रश्वास की दर में परिवर्तन तथा कुम्भक के माध्यम से सजगता के सर्वोच्च स्तर में पहुँचने तथा चेतना के स्तर में परिवर्तन हेतु स्नायविक तथा मानसिक प्रक्रियाओं को शक्तिशाली बनाया जा सकता है।

हम कह सकते हैं कि यौगिक क्रियाओं की प्रमाणिकता स्वतः सिद्ध है, बस आधुनिक विज्ञान में उनको नयी तरह से प्रमाण देने की आवश्यकता है। वर्तमान में उपजे अनेकानेक रोगों के निवारण के लिये भी ये यौगिक प्रक्रियाऐं सहायक होती हैं। शरीर के बाह्य तथा आन्तरिक दोनों तरह के परिवर्तनों में और प्रक्रियाओं में निपूर्णता प्राप्त करने में भी यौगिक क्रियाऐं सहायक सिद्ध होती है। यह व्यक्ति को व्यक्तिगत एवं भौतिक स्तर की समस्याओं को निपटाने में भी सहायक सिद्ध होती है। अतः नाड़ियों का संतुलन व्यक्ति के लिये हर दृष्टि से परमावश्यक सिद्ध होता है जो कि यौगिक क्रियाओं से सम्भव है।

19.8 स्वर और नाड़ियां बदलने की कियाएं

- जिस स्वर को चलाना हो नाक के उस छेद (नथुने) पर कुछ देर तक ध्यान लगाने से स्वर चलने लगता है।
- जो स्वर चलाना हो उससे उल्टी दिशा में करवट लेकर लेटने से तथा पसली के नीचे तकिया दबाने से मनचाहा स्वर निकलने लगता है।
- स्वर को अंगूठे से दबाकर चालू स्वर से सांस लेकर दुबारा उसे दबाकर बंद स्वर से सांस निकालें।
- दौड़ लगाने से, मेहनत करने से और प्राणायाम करने से स्वर बदल जाता है।
- जिस स्वर को चलाना हो उससे उल्टी दिशा में रूई या बस्त्र की गोली रखने से वो चलने लगता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

- **बहुविकल्पीय प्रश्न –**

(1) नाड़ी शब्द संस्कृत के किस धातु से बना है, जिसका अर्थ गतिमान रहना है।
(अ) नाट्य (ब) नाड्य
(स) नाड्यम् (द) उपरोक्त में से कोई नहीं

(2) वशिष्ट संहिता के अनुसार नाड़ियों के प्रकार बताये गये हैं।
(अ) 76 हजार (ब) 71 हजार
(स) 72 हजार (द) 70 हजार

(3) शिव संहिता में नाड़ियों की संख्या बताई गई है।
(अ) साढे तीन लाख (ब) साढे पॉच लाख
(स) साढे चार लाख (द) साढे छः लाख

(4) यौगिक ग्रन्थों में मुख्य रूप से कितने नाड़ियो को प्रधानता दी गयी है।
(अ) दो (ब) तीन
(स) चार (द) पॉच

(5) इड़ा नाड़ी का रंग होता है।
(अ) नीला (ब) पीला

(स) लाल (द) काला

- **रिक्त स्थानों की पूर्ति करो –**

(1) सुषुम्ना के भीतर भी .... और नाड़ियों उपस्थित रहती है।
(2) इड़ा नाड़ी का सम्बन्ध .... तन्त्रिका तन्त्र से होता है।
(3) पिंगला नाड़ी का रंग .... होता है।
(4) पिंगला नाड़ी का सम्बन्ध .... तन्त्रिका तन्त्र से होता है।

- **सत्य और असत्य को चिन्हित करें –**

(1) सुषुम्ना नाड़ी में वज्रा, चित्रा तथा ब्रहम नाड़ियॉ उपस्थित रहती है। (................)
(2) हमारा दॉया नासाछिद्र में पिंगला नाड़ी तथा वॉया नासाछिद्र में इड़ा नाड़ी उपस्थित होती है। (............)
(3) सुषुम्ना नाड़ी का सम्बन्ध मेरूदण्ड से नहीं हैं। (................)
(4) ब्रहम ग्रन्थि का स्थान अनाहत चक्र के भीतर हृदय क्षेत्र में है। (................)

19.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि नाड़ियाँ क्या होती हैं? यौगिक अभ्यासों में इनकी क्या भूमिका होती है? तथा नाड़ियों का आध्यात्मिक एवं भौतिक लाभ क्या होता है? उपरोक्त इकाई को पढ़कर नाड़ियों से सम्बन्धित समस्त उद्देश्यों की जानकारी आपने प्राप्त की। आपने जाना कि व्यक्ति के जीवन में नाड़ियां एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। मन एवं शरीर की गतिविधियों में नाड़ियों की क्रियाशीलता को नियन्त्रित करके लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। इसके द्वारा व्यक्ति न केवल इन्द्रिय बल्कि अतिन्द्रिय स्तर पर सूक्ष्म लाभ भी प्राप्त कर पाने में सक्षम होता है।

नाड़ियों की विभिन्न संख्याँ भिन्न–भिन्न क्रियाकलापों में सहायक होती है। प्राण का प्रवाह पूरे शरीर में पहुँचाने में नाड़ियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, यह सूक्ष्म माध्यम सूक्ष्म शक्ति प्राण के प्रवाह का मुख्य साधन है। इसी के कारण योग के परम लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है, अन्यथा ऐसा सम्भव ही नहीं हो सकता था कि व्यक्ति कुण्डलिनी जागरण जैसी दिव्य क्रियाओं में सफलता प्राप्त कर सके। हम कह सकते हैं कि नाड़ियाँ योगाभ्यास में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

19.10 शब्दावली

- अतेन्द्रिय – इन्द्रियों से परे
- गन्तव्य – रास्ता
- वक्राकार – गोल–गोल घुमी हुई
- वर्णनातीत – जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता
- अनुसरण – पीछे चलना
- पौराणिक – पुराना
- मध्य मार्ग – बीच का मार्ग
- प्रविष्ट – प्रवेश
- प्रवृत्ति – स्वभाव
- अवरोध – रूकावट

19.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- **बहुविकल्पिय प्रश्नों के उत्तर –**

(1). ब (2). स (3). अ (4). ब (5). अ

- **रिक्त स्थानों के उत्तर –**

(1) तीन (2) परानुकम्पी (3) लाल (4) अनुकम्पी

- **सत्य और असत्य प्रश्नों के उत्तर –**

(1) सत्य (2) सत्य (3) असत्य (4) सत्य

19.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

कुण्डलिनी योग – सत्यानन्द सरस्वती
हठप्रदीपिका – स्वात्माराम सूरी
शिव संहिता –

19.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. नाड़ी से आप क्या समझते हैं? इसको विस्तार से समझाऐं।
2. नाड़ियों की योगाभ्यास में क्या भूमिका है? स्पष्ट करें।
3. नाड़ियों के प्रकारों का वर्णन करते हुए उनके कार्यों का वर्णन व प्रमुख तीन नाड़ियों को विस्तार से समझाऐं।
4. तंत्रिका तंत्र और नाड़ियों में सम्बन्ध स्पष्ट करें।
5. प्राण एवं नाड़ियों के सम्बन्ध पर प्रकाश डालें।
6. नाड़ियों के असन्तुलन से शरीर और मन पर पड़ने वाले प्रभावों को समझाऐं।
7. नाड़ियों के अस्तित्व के प्रमाणों की चर्चा करें।

इकाई – 20 चक्र

20.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में पाठकों को चक्र के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त होगी। चक्र योगग्रन्थों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। योगाभ्यास में सूक्ष्म संवेदनाओं को समझने एवं आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करने में चक्र एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, चक्र स्वयं में एक महत्वपूर्ण विषय है, यौगिक शक्तियों को समझने में चक्र सम्बन्धी विषय को समझने के लिये प्रस्तुत इकाई आपको सहायता प्रदान करेगी। इकाई के अध्ययन के पश्चात् विषय सम्बन्धी आपकी जिज्ञासाओं की संतुष्टि सम्भव होगी।

जैसा कि हम जानते ही हैं कि व्यक्ति के शरीर में अनेक ऐसी क्षमताऐं एवं शक्तियां हैं जिनको सामान्यतः वह स्वयं अनुभव नहीं कर पाता और वो आजीवन ही उनसे अनभिज्ञ रहता है। योगियों ने अपने तप और साधना से इन शक्तियों को शरीर में खोजा और उनको किस प्रकार प्राप्त किया जाये ये भी बताया। इन सूक्ष्म किन्तु शक्तिशाली शक्तियों में चक्र भी एक महत्वपूर्ण विषय है। योग के परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये इसे जानना एवं इसकी शक्ति का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक होता है, अन्यथा लक्ष्य प्राप्ति सम्भव नही हो पाती है। आइये इस बारे में विस्तार से जानें –

20.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई में आप जानेंगे

- चक्र किसे कहते हैं।
- चक्र के अर्थ एवं स्वरूप के बारे में।
- चक्र की संख्या के बारे में।
- चक्रों के कार्य के बारे में।
- योग में चक्रों के महत्व के बारे में।

20.3 चक्र

हठयोग में जब यौगिक साधनाओं के अन्तर्गत कुण्डलिनी शक्ति के जागरण का अभ्यास किया जाता है तो कुण्डलिनी सुषुम्ना नाड़ी के भीतर ब्रह्मनाड़ी से ऊर्ध्वगति करते हुऐ षट्चक्रों का भेदन करते हुऐ ही शिव स्थान सहस्रार में पहुँचती है, ये ही योग की उच्चतम अवस्था है। कुण्डलिनी के रास्ते में आने वाले ये षट्चक्र छः अवरोध होते हैं, जिस प्रकार व्यक्ति दरवाजे को खोलकर घर में प्रवेश करता है ठीक उसी प्रकार कुण्डलिनी भी इन छः दरवाजों को एक–एक करके खोलती हुई सहस्रार में स्थित अपने आराध्य शिव से मिलती है।

20.3.1 नामकरण – चक्र अर्थात घूमना। जब प्राण प्रवाह कुण्डलिनी जागरण के समय ब्रह्मनाड़ी में गति करता है तब छः अवरोध उसके रास्ते में आते हैं जिसके कारण वह इन स्थानों में टकराता है तब वह प्राण प्रवाह वहाँ गोल–गोल घूमने लगता है। इसी कारण इसे चक्र कहते हैं।

20.3.2 स्वरूप एवं स्थिति – योगियों ने अपने तपोबल से चक्रों को देखा एवं उनकी सोई हुई शक्ति को जागृत किया। चक्रों को कमल के फूल के समान स्वरूप वाला बताया जाता है। चक्र जागृत होने से पूर्व अपने–अपने निश्चित स्थानों पर अधोमुख अवस्था में बन्ध रहते हैं, परन्तु जागृत होने पर ऊर्ध्वमुखी होकर खिले हुऐ कमल के फूल के समान हो जाते हैं। हर चक्र का अपना अलग स्वरूप होता है, हर एक की अपनी–अपनी शक्तियाँ होती हैं।

शारीरिक स्तर पर चक्र तन्त्रिका जालक एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से सम्बन्धित होते हैं। योग में चक्र उन विशेष स्थानों को कहते हैं। जहाँ से सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त प्राणों को नियंत्रित किया जाता है। प्रत्येक चक्र एक स्विच की भाँति है जो मस्तिष्क के एक क्षेत्र विशेष को जाग्रत करता है। अधिकतर व्यक्ति में ये चक्र सुषुप्त तथा निष्क्रिय रहते हैं। यौगिक अभ्यास द्वारा चक्रों पर ध्यान एकाग्र करके चक्रों में प्राण प्रवाह प्रेरित किया जाता है जिससे वे सक्रिय बनते हैं। फलतः मस्तिष्क के सुषुप्त क्षेत्रों में जागृति आती है, तथा सूक्ष्म एवं कारण शरीर में उपस्थित शक्तियाँ जाग्रत होती हैं जिससे व्यक्ति को चेतना के उन उच्च स्तरों का अनुभव होता है, जो सामान्यतः उसकी पहुँच से बाहर की बात होती है।

जैसा कि आप जान चुके हैं कि सुषुम्ना के भीतर तीन और नाड़ियाँ उपस्थित होती हैं जो क्रमशः इस प्रकार से है – वज्रानाड़ी, चित्रनाड़ी, ब्रह्मनाड़ी

ये समस्त नाडियाँ सूक्ष्म होती हैं जिन्हें नग्न आँखों से स्थूल शरीर में नहीं देखा जा सकता। चक्र इनसे भी सूक्ष्म होते हैं। जब कुण्डलिनी ब्रह्मनाड़ी से ऊर्ध्वगति करते हुए आगे बढ़ती है तो उस मार्ग में उसे चक्र अवरोध के रूप में मिलते हैं तो आप समझ सकते हैं कि चक्र नाड़ियों से भी सूक्ष्म है। योगियों ने अपने तपोबल से इसे देखा और उनकी व्याख्या की। ये सामान्य व्यक्ति के बस से बाहर की चीज है। योग मार्ग में आगे बढ़ने वाले जिज्ञासु ही अपनी तपस्चर्या द्वारा इन्हें देख सकते हैं तथा अनुभव कर सकते हैं।

चक्र एक प्रकार से तन्तु गुच्छक के रूप में जाना जाता है, जो कि अनेकों आकृति वाले होते हैं। वह आकृति ऐसी लगती है जैसे कमल के फूल की पंखुड़ियाँ हों, साथ ही जिस प्रकार लकड़ी में घुन लग जाने से वह जिस प्रकार लकड़ी को काटता चला जाता है तो उसमें निरंतर प्राण के प्रवाह की गति से इन ग्रन्थियों में कुछ अक्षर जैसे आकृति बन जाती है जो कि चक्र के अक्षर के रूप में जाने जाते हैं।

जिस प्रकार नदी में पानी का तेज गति और गहराई भंवर उत्पन्न करती है ठीक उसी प्रकार प्राणवायु का सुषुम्ना प्रवाह इन चक्रों में होकर तेजगति से गुजरता है तो वहाँ एक प्रकार से सूक्ष्म भँवर पड़ जाता है जिससे एक आकृति जैसी दिखाई देने लगती है। इन आकृतियों को चक्र के यंत्र के रूप में हम जानते हैं।

हर चक्र का अपना एक अलग रंग होता है। साधना के दौरान व्यक्ति इनको अनुभव करता है। जैसा कि जानते हैं कि हमारा शरीर पंच तत्वों से निर्मित होता है और हमारे शरीर में हर तत्व का अपना एक स्थान होता है उसी प्रकार हर चक्र का भी शरीर में अपना स्थान होता है। चूँकि हर तत्व का अपना एक रंग होता है तो जब साधक चक्र की जागृति के लिये उस पर ध्यान लगाता है तो उसे चक्र विशेष पर कुछ रंग भी दिखाई देता है। जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाष तत्वों के अनुसार ही साधक को चक्र का रंग दिखाई देता है।

चक्रों में प्राण वायु गति करती है। उसमें यह गति में भी भिन्नता पायी जाती है। इसका कारण शरीर में उपस्थित वात, पित्त एवं कफ हैं। ये नाड़ियों से सम्बन्धित रहता है और इन्हीं के प्रताप से नाड़ियों की गति में भी भिन्नता आ जाती है। नाड़ी विशेषज्ञ इसी चाल को समझकर रोग का उपचार बताते हैं। तत्वों के प्रवाह, गति में अवरोध, रक्त प्रवाह, प्राणवायु प्रवाह आदि से नाड़ियों की एक विशेष गति हो जाती है। कहीं हाथी, कहीं मृग, मेंढक आदि की चाल हमें महसूस होती है तो हम इसे चक्र का वाहन कहते हैं।

हर चक्र का अपना एक देवता और देवी होती है जो उत्पादन, पोषण, ज्ञान, बल आदि कार्य में सहायक होते हैं। इन चक्रों का व्यक्ति के सम्पूर्ण शरीर पर प्रभाव पड़ता है। कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों को ये प्रभावित करते हैं। हर चक्र की अपनी एक विशेष इन्द्रिय होती है, जिसे चक्र की इन्द्रिय कहते हैं।

20.4 चक्र की संख्या

सामान्यतः चक्रों की छः संख्या बताई जाती है, परन्तु विभिन्न ग्रन्थों में चक्रों की संख्या को लेकर भिन्न–भिन्न मत दिये हैं जो कि इस प्रकार से है। षटचक्र के विषय में योगकुण्डली उपनिषद् में वर्णन मिलता है कि –

मूलाधार स्वाधिष्ठानं मणिपूरं तृतीयकम्।
अनाहतं विशुद्धं च आज्ञाचक्रं च षष्ठकम्।।
– (योग कुण्डली उपनिषद अध्याय तीन)

अर्थात् – मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा ये छः चक्र हैं। यह मान्यता योग चूड़ामणि उपनिषद, हठयोग प्रदीपिका तथा गोरक्ष पद्धति आदि ग्रन्थों में भी स्वीकृत है।

अथर्ववेद के अनुसार आठ चक्रों का वर्णन इस प्रकार से है –

अष्ठचक्रा नवद्वारा देवानां पूरोडयोध्या।
तस्यां हिरण्यय कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।
– (अथर्व0 10/2/31)

इस मन्त्र में आठ चक्र और नौ द्वार युक्त अयोध्यया नाम की नगरी इस मानव शरीर को बताया गया है। इस शरीर में आठ चक्र और नौ द्वार हैं जो ज्योति से आदृत हैं।

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा चक्र के अलावा ज्ञानचक्र एवं षट्दल चक्र को भी इसमें बताया गया है।

तन्त्र में नौ चक्रों का वर्णन मिलता है। इसमें आठ चक्र तो उपरोक्त वर्णित ही हैं, नौवा चक्र सहस्रार को बताया गया है।

सामान्यतः षट्चक्रों का ही ज्यादा वर्णन मिलता है। सहस्रार को जोड़कर बात करें तो सात चक्र ही मुख्य हैं। बांकि चक्र उपचक्रों के रूप में जाने जाते हैं। जिनकी अनेक संख्या शरीर में बतायी जाती है। हम यहां केवल मूल चक्रों का ही वर्णन करेंगे। चक्र से शरीर के अन्दर स्थित पंचतत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) के मूल केन्द्र स्थानों का ही वर्णन किया जाता है। लौकिक दृष्टि से यद्यपि ये सारे वर्णन असम्भव तथा विचित्र पूर्ण प्रतीत होता है परन्तु तात्विक दृष्टि से ये सब सत्य है। जैसा कि हम जानते हैं कि सृष्टि में उपस्थित पंचमहाभूत हमारे शरीर में भी उपस्थित है। ये वलयान्वित है इसलिये इनको चक्र कहते हैं। ये सब वर्णन काल्पनिक नही हैं।

हमारे शरीर के गुदा भाग में मूलाधार चक्र की स्थिति है यह पृथ्वी तत्व का स्थान है। पेडू वाले भाग में स्वाधिष्ठान चक्र है यह जल तत्व का स्थान है। उसके ऊपर नाभि वाले भाग में मणिपूर चक्र की स्थिति है, यह अग्नि तत्व का स्थान है। इसके ऊपर हृदय में अनाहत चक्र की स्थिति है यह वायु तत्व का स्थान है। गले में विशुद्धि चक्र का स्थान है, यह आकाश तत्व का स्थान है। कण्ठ से ऊपर भ्रूमध्य में आज्ञा चक्र की स्थिति है यह महत् तत्व का स्थान है। इसके ऊपर सहस्रार चक्र है जो शिव का स्थान माना जाता है। यह समस्त चक्र जब योग प्रक्रिया द्वारा जागृत कर लिये जाते हैं। तब कुण्डलिनी शक्ति चक्रों का भेदन करते हुऐ सहस्रार में ही परम शिव से जाकर मिलती है।

चक्रों की स्थिति अतिसूक्ष्म होती है। ये शक्ति से परिपूर्ण होते हैं, इन्हें जागृत करना पड़ता है। तभी ये अपनी शक्ति के प्रभाव से व्यक्ति को पूरा लाभ पहुँचा पाते है। उस समय ये सूक्ष्म चक्र दिव्य शक्ति से मुक्त विशालकाय हो जाते हैं। ठीक वैसे जैसे फिल्म की रील का आकार तो छोटा रहता है लेकिन पर्दे में वह बड़े आकार की फिल्म दिखाता है। प्रत्येक चक्र का अपना एक निश्चित स्वरूप होता है। कमल पुष्प की आकृति वाले इन चक्रों की अपनी एक निश्चित पंखुड़ियों का दल होता है। कमल का फूल प्रतीकात्मक रूप से यह चित्रित करता है, कि आध्यात्मिक जीवन में साधक को तीन अवस्थाओं को पार करना होता है – अविद्या, जिज्ञासा, एवं प्रबोधन। यह चेतना की निम्नतम अवस्था से उच्चतम अवस्था तक आध्यात्मिक विकास का चित्रण करता है।

कमल दल, जिन पर बीज मन्त्र अंकित रहते हैं। ये मन्त्र चक्र एवं उनसे जुड़ी नाड़ियों से सम्बद्ध अतीन्द्रिय ऊर्जा की विभिन्न अभिव्यक्तियों को दर्शाते हैं। आये प्रत्येक चक्र के वाहन, यन्त्र, तत्व, बीजयन्त्र, आदि के बारे में विस्तार से जानें –

20.4.1 मूलाधार चक्र (पेल्विक प्लेक्सस) – चक्रों का मूल आधार होने के कारण इसे मूलाधार चक्र कहते हैं। पुरूषों में इसका स्थान लिंग में तथा स्त्रियों में इसका स्थान गर्भाशय के ग्रीवा में होता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट होता है मूल + आधार। अर्थात् मूल केन्द्र।

मूलाधार चक्र चतुर्दल पद्मरूप है तथा इसका वर्ण लाल है। इसका भू लोक है। कमल के अक्षर वं, शं, षं, सं, है। इसका तत्व पृथ्वी है। गुण गन्ध है। तत्व बीज लं है। बीज का

वाहन ऐरावत हाथी है। इसका देवता ब्रह्मा जी है, शक्ति डाकिनी है। इसका यन्त्र चतुष्कोण है, ज्ञानेन्द्रिय नासिका है तथा कर्मेन्द्रि गुदा है। पद्म के चार अक्षर की चार वृत्तियां हैं – काम, क्रोध, लोभ, मोह।

मूलाधार चक्र कुण्डलिनी का निवास स्थान है। सर्प के रूप में स्वयंभू लिंग के चारों ओर लिपटी हुई कुण्डलिनी गहन निद्रा में लीन है। यह मनुष्य एवं ब्रह्माण्ड की समस्त शक्तियों की स्रोत है, चाहे वह काम शक्ति हो चाहे भावनात्मक, मानसिक अतीन्द्रिय या आध्यात्मिक शक्ति हो। यद्यपि शक्ति एक ही है, तथापि जिस चक्र के माध्यम से यह व्यक्ति होती है, उसके अनुसार विभिन्न गुणों एवं लक्षणों को धारण करती हैं।

मूलाधार चक्र का ध्यान पृथ्वी तत्व के लं बीज जप के साथ करना होता है। ध्यान करते समय इस प्रकार की भावना करते हैं कि पृथ्वी सत्व का रंग लाल व पीला मिश्रित सुवर्ण के समान अति दीप्तिमान है। इस प्रकार से सम्पूर्ण चक्र का ध्यान करते हैं। चक्र में ध्यान करने से व्यक्ति को ध्यान का फल प्राप्त होता है जो इस प्रकार से है – आरोग्यता, आनन्द, वाक्यसिद्धि, काव्यसिद्धि, सृजनात्मक, एवं रचना आदि में दक्षता की प्राप्ति आदि।

20.4.2 स्वाधिष्ठान चक्र (हाइपोगैस्ट्रिक प्लेक्सस) – मूलाधार चक्र से दो अंगुल ऊपर पेडू के पास स्वाधिष्ठान चक्र का स्थान है, स्वाधिष्ठान शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, स्व + अधिष्ठान। 'स्व' का अर्थ होता है 'अपना' और 'अधिष्ठान' का अर्थ होता है निवास स्थान। इस प्रकार स्वाधिष्ठान का अर्थ हुआ अपना निवास स्थान।

इसका षट्दल पद्मरूप है। इसका वर्ण सिन्दूरी रंग है। इसका भुव लोक है। तत्व बीज वं है। तथा बीज का वाहन मकर है, इसका देवता विष्णु है तथा उसकी शक्ति राकिनी है। इसका यन्त्र अर्द्ध चन्द्र है। चक्र की ज्ञानेन्द्रिय रसना है तथा कर्मेन्द्रिय लिंग है। पद्मदलों के छः अक्षरों की छः वृत्तियाँ हैं – प्रश्रय, विश्वास, अवज्ञा, मूर्च्छा, सर्वनाश और क्रूड़ता।

स्वाधिष्ठान चक्र का ध्यान करते समय वं बीज मन्त्र का पेडू वाले भाग में एकाग्रता बनानी चाहिये तथा सिन्दूरी रंग के साथ ये प्रक्रिया करनी चाहिये। चक्र पर ध्यान करने से व्यक्ति में प्रबुद्ध बुद्धि का उदय होता है, नव निर्माण की शक्ति, स्वेच्छा मृत्यु और जिह्वा में सरस्वती का वास आदि दिव्य फल प्राप्त होता है।

स्वाधिष्ठान चक्र इन्द्रिय सुखोपभोग की अभिलाशा का प्रतीक है, अर्थात् चेतना के इस स्तर पर मनुष्य मुख्य रूप से सुखद संवेदनाओं की प्राप्ति हेतु प्रयासरत रहता है। मूलाधार में जहाँ भौतिक सुरक्षा का प्रयास होता है, वहीं स्वाधिष्ठान में इन्द्रियों के माध्यम से आहार, मदय, मैथुन इत्यादि के रूप में व्यक्ति सुख प्राप्ति के लिए नित्य प्रेरित होता रहता है। जब स्वाधिष्ठान चक्र जाग्रत होता है तो इन वस्तुओं के प्रति अत्यधिक लालसा उत्पन्न हो सकती है। शारीरिक स्तर पर यह चक्र उत्सर्जन एवं प्रजनन अंगों से सम्बद्ध है। इस चक्र का मानस दर्शन इन अंगों की कार्यप्रणाली के दोष निवारण में सहायक हो सकता है। स्वाधिष्ठान की मुख्य वायु व्यान है और यह पूरे शरीर में व्याप्त है। यह और मणिपूर चक्र प्राणमयकोश के निवास स्थान है।

स्वाधिष्ठान चक्र में व्यष्टि एवं समष्टि चेतना का वास होता है। यह सभी संस्कारों एवं भूतकाल की स्मृतियों का भण्डारगृह है। यह मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों का केन्द्र है। इस चक्र की शुद्धि से व्यक्ति पाशविक वृत्तियों से ऊपर उठ जाता है।

इस चक्र को जाग्रत करने के लिये अन्धेरे आकाश के नीचे एक विशाल गहरे सागर और उसमें उठती हुई लहरों का मानसिक अवलोकन करते हैं। सागर की लहरों का उतार चढ़ाव सजगता के क्रमशः क्षीण तथा प्रवाहित होने का परिचायक है।

20.4.3 मणिपुर चक्र (एपिगैस्ट्रिक प्लेक्सस) – यह चक्र नाभि के ठीक पीछे मेरूदण्ड में स्थित है। मणिपुर का शाब्दिक अर्थ होता है मणियों का नगर। अग्नि का केन्द्र होने के कारण यह क्षेत्र मणियों की तरह चमकता रहता है। ये क्षेत्र प्राण एवं ऊर्जा से दीप्त हैं। यही कारण है कि इस क्षेत्र को मणियों का नगर कहते हैं।

मणिपुर चक्र दशदल पद्म है तथा इसका वर्ण नीला है। इसका स्व लोक है। पद्मदलों के 10 अक्षर डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं हैं। इसका तत्व अग्नि है तथा गुण रूप है। तत्व बीज रं है। बीज का वाहन मेष है। इसका देवता वृद्ध रूद्र है तथा शक्ति लाकिनी है। इसका यन्त्र त्रिकोण है। ज्ञानेन्द्रिय चक्षु है, तथा कर्मेन्द्रि चरण है। पद्मदलों के 10 अक्षरों की 10 वृत्तियां हैं – लज्जा, पिशुनता, ईर्षा, सुषुप्ति, विषाद, कषाय, तृष्णा, मोह, घृणा और भय।

यहाँ पर खाये गये पदार्थों के रस को रक्त के रूप में परिणत कर सम्पूर्ण शरीर में समान रूप से पहुँचाने वाला वायु समान वायु (प्राण) कार्य करता है।

मणिपुर चक्र आत्मनिश्चय, कियाशीलता एवं प्रभुत्व का केन्द्र है। इसका सम्बन्ध महत्वकांक्षा, इच्छाशक्ति तथा शासन करने की क्षमता से है। किन्तु नकारात्मक रूप में इसकी अभिव्यक्ति निरंकशता के रूप में हो सकती है। व्यक्ति सभी चीजों और व्यक्तियों को अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र समझने लगता है।

सौर्य जालक भोजन के पाचन एवं चयापचय से सम्बद्ध है। यह आमाशय की ग्रन्थियों, अग्नाशय, पित्ताशय तथा आमाशय के अन्य अंगों के कार्यों का संचालन करता है, जो पाचन एवं पोषक तत्वों के अधिग्रहण के लिये आवश्यक एन्जाइमों, अम्लों एवं रसों को उत्पन्न करते एवं उनका स्राव करते हैं। मणिपुर चक्र इन कियाओं को नियन्त्रित करने वाला अतीन्द्रिय केन्द्र है।

किडनी के ऊपर उपस्थित एड्रीनल ग्लेण्ड भी मणिपुर चक्र से ही सम्बन्धित होता है ये आवश्यकतानुसार हार्मोन्स का स्राव करती हैं जिससे सभी शारीरिक कियाओं में तीव्रता आ जाती है, मन सतर्क हो जाता है, ह्दय गति बढ़ जाती है श्वास प्रक्रिया अधिक तेज हो जाती है, शरीर सामान्य से अधिक कियाशील हो जाता है जिसे सामान्य रूप से संघर्ष या पलायन की प्रतिकिया कहते हैं जो व्यक्ति सुस्त या निराश रहते हैं या जिनका पाचन संस्थान ठीक से कार्य नहीं करता, उन्हें मणिपुर चक्र पर एकाग्रता का अभ्यास करते हुये उस भाग को ऊर्जावान बनाना चाहिये।

मणिपुर चक्र की जागृति के लिये दहकते हुए सूर्य या अग्नि गोलक का मानस दर्शन करना चाहिये, साथ ही इस क्षेत्र से विकसित होकर पूरे शरीर में व्याप्त हो रहे प्रकाश के रूप में ऊर्जा का अनुभव करते हैं। इसके बीज मंत्र रं का भी चिन्तन साथ में किया जा सकता है, इसके जागृत होने पर व्यक्ति को सम्पूर्ण कायव्यूह का ज्ञान हो जाता है और संहार तथा पालन की शक्ति प्राप्त हो जाती है, योगी का शरीर तेजस्वी और कान्तियुक्त बन जाता है।

20.4.4 अनाहत चक्र (कार्डियाक प्लेक्सस) – अनाहत चक्र का स्थान ह्रदय क्षेत्र होता है। वक्ष के केन्द्र के पीछे मेरूदण्ड में इसकी स्थिति है। अनाहत का शाब्दिक अर्थ होता है – जो आहत न हुआ हो। ह्रदय से सम्बन्ध होने के कारण इसका नाम अनाहत पड़ा है क्योंकि हमारा ह्रदय आजीवन लयबद्व तरीके से लगातार स्पन्दित होता रहता है। सृष्टि में दो वस्तुओं के टकराने से उत्पन्न हुई ध्वनि को आहत ध्वनि कहते हैं। जो कि सभी जगह सामान्यतः देखने को मिलती है, परन्तु अनाहत ध्वनि बिना किसी के टकराने से उत्पन्न होने वाली ध्वनि है, यह आद्य ध्वनि है यह सभी ध्वनियों का स्रोत है। यह ध्वनि ह्रदय में

सुनायी देती है। योगी उसे आन्तरिक, अजन्में, अनन्त, स्पन्दन के रूप में, ब्रह्माण्ड के स्पन्दन के रूप में अनुभव करते हैं।

अनाहत चक्र 12 पंखुड़ियों वाले कमल के फूल के रूप में होता है। इसका वर्ण अरूण शक्तिम है। इसका मह लोक है। पद्मदलों के अक्षर कं, खं, गं, घं, डं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं हैं, 12 अक्षरों की 12 वृत्तियाँ हैं – आशा, चिन्ता, चेष्टा, मतता, दम्भ, विकलता, विवेक, अहंकार, लोलूपता, कपटता, वितर्क, अनुताप। इसका तत्व वायु है तथा गुण स्पर्श है। तत्व बीज यं है। तथा उसका वाहन मृग है। इसका देव ईशानरूद्र है तथा उसकी शक्ति लाकिनी है। इसका यन्त्र षट्कोण है, ज्ञानेन्द्रिय – त्वचा तथा कर्मेन्द्रिय हाथ है।

शारीरिक स्तर पर अनाहत चक्र हृदय, फेफड़ों, रक्त परिसंचरण एवं श्वसन संस्थान से सम्बद्ध रहता है। रक्ताल्पता, रक्तचाप, हृदयगति बढ़ना, क्षयरोग, दमा तथा ब्रोंकाइटिस आदि रोगों से पीड़ित व्यक्तियों को आसन तथा अन्य योगाभ्यास करते समय अनाहत पर ध्यान करना चाहिये।

अनाहत चक्र को जाग्रत करने के लिये एक अरूणरक्तिम या षट्कोण का यं बीजमंत्र के साथ ध्यान करते हैं। वायु रहित स्थान में ज्योति जिस प्रकार स्थिर रहती है, उसी प्रकार की ज्योति की कल्पना हृदय क्षेत्र में की जाती है। ज्योति जीवात्मा का प्रतीक है, जो संसार की हवाओं से अप्रभावित रहता है। चक्र की जागृति से व्यक्ति में कवित्व शक्ति जाग्रत होती है। ध्यान लम्बा होने पर 10 प्रकार के नाद सुनाई देते हैं। व्यक्ति को ईशित्व सिद्धि प्राप्त होती है।

20.4.5 विशुद्धि चक्र (कैरोटिड् प्लेक्सस) – विशुद्धि चक्र गर्दन के पिछले भाग में, कण्ठ कूप के पीछे स्थित है। यह शुद्धि का केन्द्र है। यह 16 पंखुड़ियों वाला कमल दल है तथा धूम्रवर्ण है। इसका जन लोक है। पद्मदलों के अक्षर अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, लृं, लॄं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अः है। इस विशुद्धि चक्र में 16 दलों पर आकाश तत्व की सोलह वृत्तियां हैः निशाद, ऋषभ, गान्धार, शड़श, मध्यम, धौवत, पंचम – ये सात तो स्वर के रूप में हैं और अं, हूं, फट, वषट्, स्वधा, स्वाहा, नमः, विष और अमृत ये नौ बिना स्वर के हैं, कुल मिलाकर 16 वित्तियाँ है। चक्र का तत्व आकाश और गुण शब्द है, तत्व बीज हं है। उसका वाहन हाथी है। देवता पंचमुख वाले शिव तथा शक्ति शाकिनी हैं। यन्त्र शून्य गोलाकार है। चक्र की ज्ञानेन्द्रिय कर्ण तथा कर्मेन्द्रिय वाक् है।

विशुद्धि चक्र में सही समझ एवं विवेक की जागृति होती है। यहाँ जीवन के प्रवाह के साथ बहते हुऐ, सब चीजों को जैसे का तैसा स्वीकार करते हुए, अच्छे–बुरे का भेद किये बिना जीवन के द्वैत भाव को स्वीकार किया जाता है। यह चक्र स्वर रज्जु–स्वर यन्त्र प्रदेश तथा थायराइड एवं पैराथायराइड ग्रन्थियों को परिचालित करता है। शरीर के इस भाग में उत्पन्न रोगों को इस चक्र पर एकाग्रता करने से ठीक किया जा सकता है। गले के मध्य में ही अमृत के स्वाद का अनुभव होता है। अमृत बिन्दु चक्र से झरने वाला एक मीठा रस है। विशुद्धि चक्र में इसकी शुद्धि होती है तथा सम्पूर्ण शरीर में उपयोग हेतु भेजने के लिये इसे तैयार किया जाता है।

विशुद्धि चक्र की जागृति के लिये हं बीज मंत्र के साथ आकाश तत्व का ध्यान कण्ठप्रदेश में किया जाता है। साथ ही भाव किया जाता है। उस क्षेत्र में अमृत बूंद टपक रही है। जिसका स्वाद मीठा है। और उससे आनन्द की प्राप्ति हो रही है। विशुद्धि चक्र में ध्यान करने से भूत, भविष्य तथा वर्तमान तीनों कालों का ज्ञान हो जाता है। व्यक्ति शान्तचित्त तथा ज्ञानवान होता है, साथ ही तेजस्वी एवं दीर्घ आयु होता है।

20.4.6 आज्ञाचक्र (मेड्यूला) – आज्ञा चक्र मध्य मस्तिष्क में भ्रूमध्य के पीछे मेरूदण्ड के शीर्ष पर स्थित है। इस चक्र को तीसरे नेत्र, ज्ञानचक्षु, त्रिवेणी, गुरू चक्र, तथा शिव के नेत्र के नाम से भी जाना जाता है। गहन ध्यान की अवस्था में शिष्य इस चक्र द्वारा गुरू या ईश्वर से आज्ञा तथा मार्गदर्शन प्राप्त करता है।

आज्ञाचक्र द्विदल पद्म है। इसका वर्ण सफेद है। इसका तप लोक है। पद्म दलों के अक्षर हं, क्षं है। इन दो अक्षरों की दो वृत्तियां हैं प्रवृत्ति एवं अहंमन्यता। इसका तत्व महत् है। इसका तत्व बीज ओम् है। उसका वादन नाद है, इसका देव लिंग है तथा उसकी शक्ति हाकिनी है। इसका यन्त्र लिंगाकार है।

इस चक्र का तत्व महत् है इसी केन्द्र में प्रज्ञा तथा अन्तर्ज्ञान की जागृति होती है। जब आज्ञा चक्र जागृत होता है, तब मन स्थिर एवं शक्तिशाली हो जाता है तथा प्राणों के ऊपर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त होता है।

आज्ञाचक्र पीनियल ग्रन्थि से सम्बन्धित होता है, जो परिपक्व मनुष्यों में लगभग क्षीण हो चुकी होती है। आत्मिक स्तर पर यह बिन्दु मानसिक एवं आत्मिक आयामों के बीच एक सेतु है। आज्ञा चक्र परा मानसिक शक्तियों जैसे – अतीन्द्रिय दृष्टि, अतीन्द्रिय श्रवण तथा दूर संवेदन के जागरण के लिये उत्तरदायी होता है। विचार ऊर्जा का बहुत ही सूक्ष्म रूप होता है, आज्ञाचक्र के जाग्रत होने पर विचारों का सम्प्रेषण एवं अभिग्रहण सम्भव होता है। यह एक तरह से चेतना के गहरे एवं उच्च स्तरों के दरवाजे खोलने जैसा होता है। इस चक्र के जागरण से बुद्धि, स्मृति एवं एकाग्रता का विकास होता है।

आज्ञाचक्र को जाग्रत करने के लिये भ्रूमध्य में ज्योति का ध्यान करना चाहिये। ऊँ कार का ध्यान भी किया जा सकता है। इस चक्र पर ध्यान करने से दिव्य नेत्र प्राप्त होता है व्यक्ति को योगदृष्टि प्राप्त होती है। ऐसे व्यक्ति के लिये ब्रह्माण्ड में तत्व अज्ञात नहीं रहता अर्थात् वह समस्त तत्वों का ज्ञाता हो जाता है। समस्त चक्रों के ध्यान का फल केवल आज्ञा चक्र के जाग्रत होने पर प्राप्त हो जाता हैं।

20.4.7 सहस्रार चक्र (ब्रेन) – सहस्रार चक्र का स्थान सबसे ऊपर सिर के शीर्ष भाग में बताया गया है। यह वास्तव में चक्र नहीं चेतना का उच्च निवास स्थान है, हजार दल वाला होने के कारण इस चक्र को सहस्रारचक्र कहते हैं। इसमें 50 अक्षरों की 20 बार आवृत्ति है जो कुल मिलाकर 1000 (50x20=1000) की संख्या बनाते हैं। इस चक्र का सत्य लोक है। यह तत्वातीत है तथा तत्व बीज विसर्ग है। बीज का वाहन बिन्दु है। इस चक्र का देव परमब्रह्म है तथा इसकी शक्ति महाशक्ति है। इसका यन्त्र पूर्णचन्द्र निराकार है। इसका प्रभाव सर्वज्ञता, अमरता तथा मुक्ति है। जब कुण्डलिनी जाग्रत होती है तो विभिन्न चक्रों का भेदन करते हुऐ अपने स्रोत में मिल जाती है। पदार्थ एवं ऊर्जा के शुद्ध चेतना में समाहित होने की अवस्था आनन्दपूर्ण उन्माद की अवस्था है। इस अवस्था को प्राप्त करने पर योग जन्म मरण के चक्रव्यूह से मुक्त हो जाता है। साथ ही इस अवस्था में विभिन्न चक्रों की विभिन्न शक्तियाँ भी बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा मन के साथ वहां पूर्ण रूप से परमात्मा में लीन हो जाती हैं। तब उस साधक के लिये जगत की सत्ता भी समाप्त हो जाती है। साधक असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था प्राप्त कर लेता है।

अतः हम कह सकते हैं कि चक्र प्रणाली का प्रत्येक स्तर विभिन्न शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, अतीन्द्रिय एवं आध्यात्मिक तत्वों का सम्मिश्रण है। प्रत्येक चक्र का सम्बन्ध किसी न किसी स्नायविक जालक एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थि से होता है, जो कि विभिन्न अंगों एवं प्रणालियों से संबद्ध होते हैं। ये सभी चक्र मस्तिष्क की नियंत्रक प्रक्रियाओं से जुड़े होते हैं

जिनमें प्रत्येक में भावनात्मक, मानसिक, एवं अतीन्द्रिय तत्व होते हैं। समस्त चक्र हमारे अस्तित्व के भिन्न स्तरों के बीच समन्वय हेतु माध्यम का कार्य करते हैं। इनके माध्यम से ऊर्जा के स्तर को घटाने या बढ़ाने का अथवा उन्हें दिशा देने का काम भी होता है, चक्र पावरहाऊस है ये नाड़ियों के माध्यम से ऊर्जा को पूरे शरीर में प्रवाहित करते हैं।

चक्रों को समझने के लिये मेरूदण्ड के भिन्न–भिन्न स्तरों को शरीर के भिन्न–भिन्न भागों का नियन्त्रण माना जा सकता है। ध्यानावस्था में योगियों ने चक्र एवं नाड़ियों को देखा जिन्हें शरीर के भीतर शारीरिक एवं अतीन्द्रिय परिपथों एवं केन्द्रों के रूप में जाना। आज इन्हें वैज्ञानिक स्तर पर स्वीकार कर लिया गया है। परन्तु आश्चर्य होता है ये सोचकर कि योगियों की तपस्या का बल कितना रहा होगा जिन्होंने बिना किसी यन्त्र की सहायता से इतने गूढ़ रहस्यों को उजागर किया। योगियों ने यह सिद्ध किया कि मेरूदण्ड में स्थित चक्रों पर एकाग्रता से तथा मानसिक एवं अतीन्द्रिय शक्ति, श्वास एवं शारीरिक स्थितियों के माध्यम से कुछ शारीरिक एवं अतीन्द्रिय अनुभव संभव है। इन अभ्यासों के द्वारा शरीर, भावनाओं, मन, अतीन्द्रिय एवं आत्मा की मूलभूत एवं नैसर्गिक प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण कर पाना सीखा जा सकता है।

20.5 चक्र अस्तित्व के प्रमाण

डॉ0 हिरोशी मोटोयामा ने अपने चक्र सम्बन्धी शोध में ये पाया कि जिन व्यक्तियों के कोई न कोई चक्र जाग्रत था उनमें जागृत चक्र–विशेष से सम्बद्ध शारीरिक प्रणालियों के क्रियाकलापों में भी उल्लेखनीय अंतर होता है। जो चक्रों के अस्तित्व को प्रमाणितता प्रदान करते हैं। डॉ0 मोटोयामा ने अपने शोध के दौरान बहुत से स्वनिर्मित उपकरण तैयार करे, जिनमें से एक चक्र यंत्र है। इस यन्त्र से चक्रों के उत्तेजित एवं सक्रिय होने के समय शरीर के विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र के भीतर होने वाले परिवर्तनों का पता लगाया जा सकता है। इस यंत्र के अत्यधिक सूक्ष्म प्रवर्धक होने की वजह से शक्ति से सूक्ष्म से सूक्ष्म उत्सर्जन को भी नापा तथा रिकार्ड किया जा सकता था। डॉ0 मोटोयामा ने शारीरिक बीमारियों का पता लगाने के लिये अपने उपकरण का बड़े स्तर पर उपयोग किया है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

- **बहुविकल्पिय प्रश्न –**

(1) चक्रों का सम्बन्ध मुख्य रूप से किस संस्थान से है?
(अ) कंकाल तन्त्र (ब) श्वसन संस्थान
(स) पाचन तन्त्र (द) तन्त्रिका तन्त्र

(2) मूलाधार चक्र का सम्बन्ध है?
(अ) सीवनी प्रदेश से (ब) हृदय प्रदेश से
(स) उदर प्रदेश से (द) उपरोक्त सभी

(3) कुण्डलिनी शक्ति का निवास स्थान माना जाता हैं।
(अ) मणिपूर (ब) मूलाधार
(स) अनाहत (द) स्वाधिष्ठान

(4) विशुद्धि चक्र किस ग्रन्थि को प्रभावित करता है।
(अ) पीट्यूटरी (ब) थायराइड
(स) थाइमस (द) पीनियल

(5) मूलाधार चक्र की शक्ति है?

(अ) डाकिनी (ब) लाकिनी
(स) राकिनी (द) उपरोक्त सभी

- **रिक्त स्थनों की पूर्ति करो –**

(1) .... चक्र का स्थान भ्रूमध्य में है। यह .... ग्रन्थि से सम्बन्धित होती है।
(2) नाभि वाले भाग में मणिपूर चक्र की स्थिति है, यह .... तत्व का स्थान है।
(3) गले में विशुद्धि चक्र का स्थान है, यह .... तत्व का स्थान है।
(4) किडनी के ऊपर स्थित एड्रीनल ग्लेण्ड भी .... चक्र से सम्बन्धित है।

- **सत्य और असत्य को चिन्हित करें –**

(1) चक्रो का सम्बन्ध कुण्डलिनी जागरण से है। (............)
(2) अथर्ववेद में आठ चक्रो का वर्णन मिलता है। (............)
(3) तन्त्र में नौ चक्रों का वर्णन किया गया है। (............)
(4) कुण्डलिनी शक्ति चक्रों का भेदन करती हुए सहस्त्रार में परम शिव से जाकर मिलती है। (............)

20.6 सारॉश

प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि चक्र क्या होते हैं? चक्र कितने प्रकार के होते हैं? तथा इनकी शक्ति क्या होती है? साथ ही चक्रों के अस्तित्व के प्रमाणों को भी जाना। चक्रों का प्रभाव किस प्रकार हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करता है तथा यह ऊर्जा के केन्द्र किस प्रकार से ऊर्जा को अपने भीतर दबाये हुऐ होते हैं तथा जाग्रत होने पर अपनी दिव्यता का प्रमाण देते हैं। प्रस्तुत इकाई के द्वारा आपकी चक्र सम्बन्धी समस्त जिज्ञासाओं का समाधान हुआ होगा। आपने जाना कि चक्र अपने–अपने कार्यक्षेत्र में किस–प्रकार व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक पक्ष को प्रभावित करते हैं। चक्र जो कि ऊर्जा केन्द्र है यहाँ पर भौतिक तथा अतीन्द्रिय शक्तियाँ परस्पर कार्यरत रहती हैं। ये ही मानव के अस्तित्व का नियंत्रण करती है।
षट्चक्र एक प्रकार की सूक्ष्म ग्रंथियां हैं। इन चक्र ग्रंथियों में जब साधक अपने ध्यान को एकाग्र करता है तो उसे वहां की सूक्ष्म स्थिति का बड़ा विचित्र अनुभव होता है। इन चक्रों में विविध शक्तियां समाहित होती हैं। उत्पादन, पोषण, संहार, ज्ञान, समृद्धि, बल आदि। साधक जप के द्वारा ध्वनि तरंगों को चक्रों तक भेजता है पर ध्यान एकाग्र करता है, प्राणायाम द्वारा चक्रों को उत्तेजित करता है, आसनों द्वारा शरीर को इसके लिए उपयुक्त बनाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विभिन्न शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक प्रयासों के द्वारा साधक, शक्ति के केन्द्र इन ग्रंथि चक्रों को जाग्रत एवं उन्नत करता है। यह सारी क्रिया पूर्णतः वैज्ञानिक प्रणाली है।
अतः कहा जा सकता है कि चक्र शारीरिक एवं मानसिक दोनों तरह की ऊर्जा का उत्पादन करता है। तथा इन्हें नापा भी जा सकता है। ये विशिष्ट सुप्त क्षेत्र है। इन्हें पूर्ण रूप से जानना एवं इन पर अनुसंधान का कार्य अभी निरंतर करते रहने से हम इन्हें और सही रूप में जान पाने में सफल होंगे।

20.7 शब्दावली

- व्याप्त – फैले
- सुषुप्त – सोता

- दीप्तिमान – प्रकाशवान
- ज्ञानेन्द्रिय – जिनके माध्यम से ज्ञान की प्राप्ति होती है।
- कर्मेन्द्रिय – जिनके द्वारा हम कर्म करते हैं।
- अतीन्द्रिय – इन्द्रियों की सीमा से परे
- सृजन – उत्पत्ति करना
- आरोग्य – स्वास्थ्य
- दक्षता – निपूर्णता
- व्यष्टि – व्यक्ति सम्बन्धि
- स्मष्टि – सृष्टि सम्बन्धि

20.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- **बहुविकल्पिय प्रश्नों के उत्तर –**

(1). द (2). अ (3). ब (4). ब (5). अ

- **रिक्त स्थानों के उत्तर –**

(1) आज्ञा, पीनियल (2) जल (3) आकाश (4) मणिपूर

- **सत्य और असत्य प्रश्नों के उत्तर –**

(1) सत्य (2) सत्य (3) सत्य (4) असत्य

20.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानानन्द सरस्वती
कुण्डलिनी योग – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
घेरण्ड संहिता – निरन्जानन्द सरस्वती
Kundalini for Beginners - Ravindra Kumar
Yoga & Ayurveda - David Frawley

20.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. चक्र क्या है? उसके अर्थ को समझाते हुऐ इसके प्रकारों का वर्णन करें।
2. षट् चक्रो को विस्तार से समझाते हुए, योग में इनके महत्व को स्पष्ट कीजिए?
3. चक्र का स्वरूप स्पष्ट करते हुऐ इसकी स्थिति को समझायें।
4. चक्रों के अस्तित्व की प्रमाणिकता को समझायें।

इकाई – 21 कुण्डलिनी का स्वरूप एवं जागरण के उपाय

21.1 प्रस्तावना

कुण्डलिनी हठयोग विद्या का बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है। इसको समझना एवं इसकी जागृति हठयोगी का परम लक्ष्य होता है। प्रस्तुत इकाई में आप इस विषय में विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे। हठयोग में वर्णित कुण्डलिनी शक्ति से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बिन्दुओं को प्रस्तुत इकाई में विस्तार से समझाया गया है जो विषय को समझने में आपके लिए सहायक सिद्ध होंगे। प्रस्तुत इकाई में विषय सम्बन्धित जानकारी को सरल रुप में देने का प्रयास किया गया है। तो आइये जानें कुण्डलिनी शक्ति क्या है ? इसकी क्या दिव्यता है ? मनुष्य का जीवन वास्तव में दो प्रकार से संचालित होता है। एक भौतिक जो वह शरीर से जीता है दूसरा अध्यात्मिक जो वह अंतरात्मा से जीता है। इस दोहरे जीवन की परिपाटी का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि यह पूरा संसार हमारे भीतर भी ठीक उसी तरह संचालित हो रहा है जैसा कि हमें बाहर दिखाई देता है। श्वास–प्रश्वास के रुप में मंथन ठीक उस तरह संचालित हो रहा है जैसे देव और दानव के द्वारा समुद्र मंथन हो रहा हो और अमृत कलश के रुप में प्राण के जागरण की क्रिया निष्पादित हो रही है।

मनुष्य का जीवन यदि दो भागों में विभाजित किया जाये तो एक अन्नमयकोश और दूसरा प्राणमयकोश है जब हम अन्नमयकोश अर्थात् भौतिकवाद की बात करते हैं तो हमारा जन्म कुटुंब, परिवार, रहन, सहन, उठना, बैठना, संतान उत्पन्न करना, पीढ़ी दर पीढ़ी निर्वाह करना, धन कमाना, पद प्राप्ति की लालसा रखना, जीवन मरण के चक्र में फंस कर बार–बार जन्म लेकर पुनः अपने कर्मों को भुगतते जाना और अंत में मृत्यु को प्राप्त हो जाना बस यहाँ तक ही सिमित रह जाता है। वहीं हम अपने प्राणमय कोश की बात करें तो

यह ब्रहम्मांड के रहस्यों और आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से हमारे होने की वजह को दर्शाता है। जहाँ मानव जीवन–मरण, पाप–पुण्य से मुक्त होकर स्वयं का आत्मदर्शन करता है और उस महान दिव्य स्थली स्वर्ग अर्थात् "शांतिधाम का अधिकारी" बन जाता है।

कई बार साधकों के मन में यह कौतुहल का विषय होता है, की आत्मसाक्षात्कार होता क्या विषय है? ये मनुष्य कैसे ज्ञात कर सकता है? पर यदि हम स्वयं पर गौर करें तो हर अच्छी और बुरी घटना और उनसे जुड़ी अनुभूतियाँ ही वह पहली सीढ़ी हैं, जहाँ हम कुछ देर के लिए दुनियादारी से हट कर हम स्वयं के बारे में सोचते हैं। जिस प्रकार बिना ठेस लगे सोना गहने में नहीं गढ़ा जाता ठीक उसी तरह बिना पीड़ा के मनुष्य खुद को नहीं समझ सकता, खुद को जानने के लिए प्रेरित नहीं हो सकता।

प्राचीन समय से ही यह देखा गया है कि सभी व्यक्ति समान नहीं होते। कोई व्यक्ति अपने कार्य क्षेत्र में बहुत निपुण है तो कोई अपना दैनिक कार्य भी ठीक से नहीं कर पाता है। कुछ लोग बड़े–2 आविष्कार करते हैं तो कुछ लोग बिल्कुल निम्न स्तर का जीवन जीते हैं। यह सत्य अक्सर बुद्धिजीवों के मस्तिष्क में एक प्रश्न उत्पन्न करता है कि वह क्या है जो ऐसी सभी विभिन्नताओं का कारण है।

समय के साथ–2 मनुष्य यह जान पाया है कि हर व्यक्ति विशेष में एक विशिष्ट प्रकार की ऊर्जा निवास करती है। कुछ मनुष्यों में यह निष्क्रिय होती है, तो कुछ में शैश्वावस्था में होती है और कुछ लोगों में पूर्णतः जागृत अवस्था में होती है। यद्यपि इस ऊर्जा में असीमित क्षमताएं हैं, परन्तु इसका कोई आकार नहीं है। संसार में अलग–2 सभ्यताओं में इसका विवरण भिन्न–2 नाम से मिलता है। तथापि हमारे ग्रंथों में इसका उल्लेख प्राचीनतम है। इसे कुण्डलिनी कहा गया है।

21.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई को पढ़कर आप जान पायेंगे कि

- कुण्डलिनी शक्ति क्या है।
- कुण्डलिनी शब्द की उत्पत्ति किस प्रकार हुई है।
- कुण्डलिनी को विभिन्न ग्रन्थों एवं विभिन्न विद्वानों ने किस प्रकार से वर्णित किया है।
- कुण्डलिनी शक्ति का क्या स्वरुप होता है।
- कुण्डलिनी शक्ति को किस प्रकार जागृत किया जाता है।
- इसके जागरण से व्यक्ति में क्या परिवर्तन आते हैं।
- कुण्डलिनी जागरण के क्या लाभ होते हैं।
- कुण्डलिनी को योग के अन्तर्गत किस प्रकार से वर्णित करते हैं।
- कुण्डलिनी जागरण व्यक्ति में किस प्रकार आत्मज्ञान की प्राप्ति में सहायक होता है।

21.3 कुण्डलिनी शक्ति का नामकरण –

कुण्डलिनी शब्द कुण्ड शब्द से बना है जिस प्रकार कुण्ड में गहराई होती है, ठीक उसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति गहराई लिए हुए सोई हुई अवस्था में रहती है। इसीलिए ही इसे

कुण्डलिनी कहा जाता है। कुण्डलिनी शब्द की व्युत्पत्ति को दो और तरह से इस प्रकार समझा जा सकता है –

(1) दायीं तरफ सूर्यनाड़ी (पिंगला) बायें तरफ चन्द्र नाड़ी (इड़ा) इन दोनों नाड़ियों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी (अग्नि) में प्रवाहित शक्ति का कुण्डल अर्थात् सम्पुट होने के कारण इस शक्ति को कुण्डलिनी कहते हैं।

(2) मूलाधार को साढ़े तीन वलयों से लपेट कर प्रसुप्त रहने वाली शक्ति को मूलाधार कुण्डलिनी कहते हैं।

21.3.1 कुण्डलिनी का स्वरूप एवं स्थान – हठप्रदीपिका में तृतीय उपदेश के प्रथम श्लोक में कुण्डलिनी का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

सशैलवनधात्रीणां यथाधारोऽहिनायकः।
सर्वेषां योगतन्त्राणां तथा धारो हिकुण्डली।।

अर्थात् जिस प्रकार सर्पों के स्वामी शेषनाग पर्वत वन सहित सम्पूर्ण पृथ्वी के आधार हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण योग–तन्त्रों का आधार कुण्डली है। प्रस्तुत श्लोक में शेषनाग के समान ही कुण्डलिनी की महत्ता का बखान किया गया है।

कुण्डलिनीशक्ति कन्द जो कि मूलाधार में स्थित है, के ऊपरी भाग में सोई हुई टेढ़ी–मेढ़ी सर्प मे समान आकार वाली होती है। जो कि इड़ा–पिंगल नाड़ियों के बीच में स्थित है। कुण्डलिनी $3_{1/2}$ फेरे लगाये अपनी पूँछ को अपने मुँह में दबाये मूलाधार में सोई अवस्था में रहती है। ये तीन फेरे सत, रज, तम तीन गुणों, चेतना की तीन अवस्था जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति का प्रतीक हैं और आधा फेरा निरुद्वावस्था का प्रतीक है जो जाग्रत स्वप्न एवं सुषुप्तावस्था से ज्यादा ऊँची अवस्था है। इस प्रकार कुण्डलिनी शक्ति के $3_{1/2}$ फेरे पूरे ब्रह्माण्ड एवं चेतना की समस्त अवस्थाओं का प्रतीक है।

21.3.2 कुण्डलिनी शक्ति के विभिन्न नाम – कुण्डलिनी शक्ति को विभिन्न नामों से जाना जाता है – कुठिलांगी, कुण्डलिनी, भुजंगी, शक्ति, ईश्वरी, कुण्डली, अरुन्धती, तपस्विनी आदि। हठप्रदीपिका के तृतीय उपदेश के 100वें श्लोक में उपरोक्त नामों की चर्चा मिलती है।

21.3.3 कुण्डलिनी शक्ति के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के मत – पाश्चात्य विद्वानों ने कुण्डलिनी शक्ति को अपने–2 अनुभवों के आधार पर इस प्रकार से समझाया है–

- चैनिक योगदीपिका में कुण्डलिनी शक्ति को स्पिरिट फायर कहा गया है।
- सर्पन्टफायर के नाम से भी कुण्डलिनी शक्ति को जाना जाता है। क्योंकि वह सर्पनाम स्वरुप वाली उपमा से जानी जाती है।
- मैडम व्लैवेट्स्की ने इसको वैश्विक विद्युत शक्ति (कॉस्मिक् इलैक्ट्रिसिटी) कहती हैं।
- कुण्डलिनी शक्ति की तीव्रतम गति के विषय में मादाम व्लैवेट्स्की लिखती हैं कि – प्रकाश की गति 1,85,000 मील प्रति सेकेण्ड होती है, परन्तु कुण्डलिनी शक्ति की गति इससे भी तेज 3,45,000 मील प्रति सेकेण्ड होती है।
- सर जॉन् वुडरफ कुण्डलिनी के स्वरुप को वर्णित करते हुए कहते हैं कि – "Shortly Stated Energy (Shakti) polerises itself two forms, namely. Static or Potential (Kundalini) dynamic (the working forces of the body as prana.)"

- कुण्डलिनी के विषय में आर्थर ऑवलन् इस प्रकार से कहते हैं – "It is the individual bodily representative of the great Cosmic Power (Shakti), which create and sustains the universe."

हमारी भारतीय संस्कृति में ईश्वर की मान्यताओं को लेकर विभिन्न मत हैं और ये सब मत अपनी–अपनी मान्यताओं की प्रमाणिकता के आधार पर अपनी बात को सिद्ध करते हैं साथ ही उसके प्रमाण भी देते हैं। जैसे ईश्वर को दो रुपों में जाना जाता है एक साकार एवं दूसरा निराकार। साकार रुप मूर्तियों, प्रतीकों एवं चिन्हों के रुप में जाना जाता है और निराकार रुप आकार की सीमा में बँधा नहीं रहता है। ठीक इसी प्रकार कुण्डलिनी शक्ति को भी ऊर्जा के दो रुपों में जाना जा सकता है–

(1) स्थिर (potential) ऊर्जा एवं (2) गतिशील (kinetic) ऊर्जा।

कुण्डलिनी शक्ति के स्वरुप को समझने के लिऐ साकार स्वरुप की मान्यता सहायक होती है। कुण्डलिनी स्थिर ऊर्जा के रुप में शक्ति का प्रतीक है, एवं कुण्डलिनी गतिशील ऊर्जा के रुप में काली का प्रतीक होती है। कुण्डलिनी जागरण की प्रारम्भिक अवस्था में कुण्डलिनी को संभाल पाना कठिन होता है। उस समय ये काली के स्वरुप की तरह ही विकराल रुप में होती है। रक्त से लपलपाती जीभ तथा नरमुण्डों की माला गले में पहने हुए रजो गुण और मृत्यु की प्रबलता को दर्शाती हुई काली के स्वरुप के सदृश्य ही कुण्डलिनी का स्वरुप प्रारम्भ में इतना भयानक होता है। परन्तु इसके कारण ही व्यक्ति में दिव्यता प्राप्त होती है। इस भयानक दृश्य और अनुभव के बाद व्यक्ति का नया स्वरुप धीरे–धीरे सामने आने लगता है। ठीक उसी प्रकार जैसे रात के अंधेरे के बाद ही सुबह प्रकाश दिखता है। प्रतीक रुप में हम देखते भी हैं कि भगवान शिव भी देवी काली को नियंत्रित कर पाने में सफल नहीं हो पाये थे। उस शक्ति काली ने शिव को भी अपने बल से नीचे फेंक दिया था और उन पर अपने भयंकर स्वरुप के साथ खड़ी को गयी थी। ऐसे में देवताओं द्वारा उनकी स्तुति कर उनको प्रसन्न एवं शान्त किये जाने पर वे नियंत्रित हो पायी थीं। हम कह सकते हैं कि योग दर्शन में सुषुप्त कुण्डलिनी का सबसे पहला जागृत स्वरुप काली का है जो कि भयंकर एवं अनियंत्रित शक्ति है।

जब साधक अपने नियंत्रण में रखते हुऐ कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करता है तो वह उससे अनेक लाभ प्राप्त करता है। उस समय वह कुण्डलिनी शक्ति दुर्गा के रुप की तरह स्थिर शक्ति वाली हो जाती है। दुर्गा शक्ति का स्वरुप शान्त, प्रसन्न, शुद्ध, उदार गुणों से युक्त माना जाता है। यह एक अचेतन शक्ति है जो अष्टभुजा वाली शेर के ऊपर बैठी हुई अत्यन्त सुन्दर दिखने वाली देवी का स्वरुप है।

21.4 कुण्डलिनी जागरण

(1) हठप्रदीपिका में कुण्डलिनी शक्ति जागरण की प्रक्रिया के साथ में एक साधन गुरु कृपा भी बताया गया है। उसमें वर्णन मिलता है कि–

सुप्तागुरुप्रसादेन यदा जागर्ति कुण्डली।
तदा सर्वाणी पद्मानि भिद्यन्ते ग्रन्थयोऽपि च।। (3/2 ह० प्र०)

अर्थात् – गुरु के अनुग्रह से जब प्रसुप्त कुण्डली जग जाती है तब सभी पद्म (चक्र) और सभी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं।

(2) मुद्राओं के अभ्यास द्वारा भी कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है जिसका वर्णन हठ प्रदीपिका में इस प्रकार से है –

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम्।
ब्रह्मद्वारमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत्।। (3/5 ह० प्र०)

अर्थात् – सुषुम्ना के मूल स्थान में सोती हुई कुण्डलिनी को जगाने के लिये पूर्ण प्रयास के साथ मुद्राओं का अभ्यास करना चाहिये।

सामान्यतः मुद्राओं से पूर्व शुद्धिक्रिया, आसन एवं प्राणायाम का विधान बताया जाता है। इन अभ्यासों में पूर्ण पारंगत होने के बाद ही मुद्राओं का अभ्यास करना चाहिये। क्रमबद्ध अभ्यास ही योग में पूर्ण सफलता प्रदान करना है। अन्यथा अभ्यर्थी को लाभ के स्थान में हानि का सामना करना पड़ सकता है।

(3) गायत्री मंत्र के जाप द्वारा भी कुण्डलिनी शक्ति की जागृति सम्भव होती है। मानसिक स्तर पर भावनात्मक प्रगाढ़ता के साथ मंद गति से गायत्री मंत्र का जाप करने पर इस महान शक्ति का जागरण सम्भव होता है। परन्तु इसके साथ कुछ नियमों एवं तपस्चर्या का पालन करते हुए ये किया जाता है।

कुण्डलिनी एक सुषुप्त शक्ति है जो मूलाधार स्थान में निष्क्रिय अवस्था में पड़ी रहती है। यह हमारे शरीर में उपस्थित तीन मुख्य नाड़ी इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना में से सुषुम्ना के भीतर से होती हुई मूलाधार से सहस्रार में जाकर शिव से मिलती है। ये हमारे मस्तिष्क में पहुँचने के बाद एक विस्फोट करती है जो हमारी चेतना के स्तर को बढ़ा देता है। उस समय व्यक्ति के चक्षु खुल जाते हैं और वह भविष्य तक को देख पाता है।

सामान्यतः व्यक्ति जिन कर्मों से अपना प्रस्तुतिकरण कर पाता है जैसे संगीत, नृत्य, कविता, लेखन, विज्ञान, पेन्टिंग, लड़ाई आदि ये सब कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने से ही सम्भव है।

कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से व्यक्ति में दिव्य प्रकाश की उत्पत्ति हो जाती है। उसे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है उसकी प्राथमिकताऐं उसके मस्तिष्क की सोच एवं उसकी आसक्ति आदि में परिवर्तन आ जाता है। उसके शरीर की समस्त कोशिकाऐं नयी ऊर्जा से परिपूर्ण हो जाती हैं। व्यक्ति को नये जीवन प्राप्ति जैसी अनुभूति होती है। उसकी आवाज एवं उसकी शरीर की सुगन्ध एवं हार्मोन्स में परिवर्तन आ जाता है। जब ये महान शक्ति जागृत होती है उस समय कम शक्ति से युक्त व्यक्ति जिसका की मस्तिष्क कम सक्रिय रहता है एवं जिसकी कोशिकाओं में भी सामान्य ऊर्जा रहती है वह व्यक्ति दिव्य क्षमताओं से युक्त हो जाता है। उसका मस्तिष्क पूर्ण रुप से सक्रिय हो जाता है तथा शरीर की समस्त कोशिकाऐं ऊर्जावान हो जाती हैं। ये सामान्य से कई ऊपर की स्थिति होती है।

कुण्डलिनी शक्ति जागरण का प्राथमिक लक्षण ये होता है कि व्यक्ति को ऐसा लगता है कि उसके शरीर के समस्त अंग बहुत तेजी से कांप रहे हों वैसे जैसे कि एक गाड़ी जब चलना प्रारम्भ करती है तो वह तेजी से हिलती है। ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति को आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है। साथ ही उसका मस्तिष्क तेज उष्णता के अनुभव के साथ भारीपन का अनुभव करता है। उसे नशे जैसी अनुभूति होने लगती है। कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के समय व्यक्ति छः लक्षण अनुभव करता है जो इस प्रकार से हैं–

(1) परमानन्द की प्राप्ति
(2) पूरे शरीर में तेज कम्पन्न
(3) शरीर में नयी ऊर्जा का संचार
(4) नशे जैसे अनुभूति
(5) निन्द्रा

(6) चेतना के उच्च स्तर की प्राप्ति

21.4.1 कुण्डलिनी जागरण की क्रिया विधि – कुण्डलिनी ऊर्जा स्थूल शरीर सम्बन्धित, मानसिक सम्बन्धी या ग्रह–नक्षत्र सम्बन्धी नहीं है इसलिए इसे इस स्तर पर नहीं पाया जा सकता। यह शक्ति इनसे ऊँचे स्तर से सम्बन्धित है जिसे हम कारण शरीर कहते हैं। जो वस्तु, समय की सीमा से परे है। यह शक्ति मूलाधार में उपस्थित अचेतन शक्ति को जाग्रत कर उसको चेतना के उच्चतम केन्द्र से जोड़ती है जिसे सहस्रार कहते हैं। जब शक्ति और शिव का मिलन होता है तब प्रकाश उत्पन्न होता है। शिव का स्थान सहस्रार में माना जाता है। कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना के भीतर ब्रह्मनाड़ी से होती हुई मेरुदण्ड में उपस्थित सात चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार में शिव से जाकर मिलती है। चक्रों का भेदन करते हुऐ ऊपर चढ़ती हुई कुण्डलिनी शक्ति व्यक्ति के व्यक्तित्व में दिव्य परिवर्तन उत्पन्न करती है। सबसे महत्वपूर्ण चक्र आज्ञा चक्र होता है जिसे की व्यक्ति की तीसरी आँख भी कहते हैं। यह अन्तःज्ञान का केन्द्र होता है। आज्ञा चक्र मूलाधार एवं सहस्रार दोनों से जुड़ा रहता है। कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार चक्र में अचेतन रुप में रहती है। जो जाग्रत होने पर चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार में जाकर शिव जो कि परम चेतन स्वरुप हैं उनसे जा मिलती है। ये शक्ति जाग्रत होने पर व्यक्ति के स्थूल शरीर को प्रकाशवान बना देती है। व्यक्ति के मस्तिष्क में उपस्थित पिट्यूटरी ग्लेण्ड जो कि मास्टर ग्लेण्ड हैं सहस्रार से ही सम्बन्धित हैं। कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होने पर व्यक्ति चेतना के उच्चतम स्तर में गमन करता है ऐसी स्थिति में उसका शारीरिक प्रस्तुतिकरण भी दिव्य हो जाता है, जो कि सामान्य से बहुत अलग होता है।

21.5 कुण्डलिनी ऊर्जा एवं आत्मज्ञान

कुण्डलिनी का सहस्रार में पहुँचना, शक्ति का शिव से मिलन है और यहाँ से आत्मज्ञान की शुरुआत होती है। इस स्थिति में व्यक्ति का अहं नष्ट हो जाता है और व्यक्ति में "मैं" का भाव पूर्ण रुप से समाप्त हो जाता है। इस समय अभ्यासी एक तरह से मृत्यु का अनुभव करता है साथ ही उसके भीतर इस समय एक नया व्यक्तित्व जन्म लेता है। अभ्यासी में मैं और तू का भाव समाप्त हो जाता है। वह पूरे ब्रह्माण्ड को एक ही नजरिऐ से देख पाता है। लक्ष्य प्राप्ति के प्रयास की शुरुआत से लेकर और लक्ष्य प्राप्ति तक का यह समय एकाकी सजगता से पूर्ण होता है। जो कि अद्वितीय सुख से परिपूर्ण है। यह ही ब्रह्माण्डीय चेतना है। यही वह क्षण है जिसमें शिव और शक्ति को अलग–2 नहीं देखा जा सकता क्योंकि वे इस क्षण एक हो चुके होते हैं। साधक की समस्त जिज्ञासाऐं समाप्त हो चुकी होती हैं। उसका अब कोई प्रश्न उत्तर रहित नहीं रहता है। वह इस अवस्था में शान्त एवं पूर्ण सुख के साथ रहता है।

21.6 कुण्डलिनी एवं योग

योग की विभिन्न पद्धतियों में से हठयोग विद्या के अन्तर्गत हमें कुण्डलिनी शक्ति के बारे में चर्चा मिलती है। इसमें शरीर और मन की एक विशेष स्थिति से ऊपर उठकर की जाने वाली प्रक्रियाऐं सम्मिलित होती हैं। जैसा कि आप पहले भी जान चुके हैं कि हठ योग हकार एवं ठकार के मिलन की प्रक्रिया है। हकार यानि की सूर्य नाड़ी जो कि मूलाधार से शुरु होकर दायें नासाछिद्र से समाप्त होती है तथा ठकार यानि की चन्द्र नाड़ी जो कि मूलाधार से शुरु होकर हमारे बायें नासाछिद्र में जाकर समाप्त होती है। इन नाड़ियों में ही जीवनीशक्ति गति करती है जिसे प्राण के रुप में जाना जाता है। प्राण को सामान्यतया

वायु कह देते हैं परन्तु वायु और प्राण में बहुत अन्तर होता है। वायु बहुत सारी गैसों का मिश्रण होती है जबकि प्राण, वायु का शुद्ध सात्विक अंश होता है। प्राण के अभाव में जीव क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता जबकि वायु के बगैर व्यक्ति कुछ देर रह सकता है। प्राण शक्ति की व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। व्यक्ति के जीवन के हर एक पहलू में प्राण शक्ति कार्य करती है। कुण्डलिनी शक्ति की अवधारणा में भी प्राण शक्ति ही कार्य करती है। नाड़ियों में प्रवाहित होने वाली शक्तिशाली प्राण ऊर्जा को साधक अपने नियन्त्रण द्वारा लक्ष्य विशेष की ओर प्रवाहित करता है और इसका अभ्यास करते हुऐ लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

कुण्डलिनी योग के अनुसार व्यक्तिगत एवं ब्रह्माणीय रुप में प्राण की उपस्थिति को एक ठोस सत्य के रुप में स्वीकार किया गया है। योगियों के मतानुसार यह सम्भव है कि व्यक्ति अपने तंत्रिका तंत्र के ऐच्छिक नियंत्रण द्वारा प्राण शक्ति के दिव्य प्रवाह को मस्तिष्क की ओर गति दे सकता है। योगियों ने अपने अनुभवों से ये भी जाना है कि एकाग्रता जो कि योग की समस्त पद्धतियों में तथा योग में सफलता के लिए मुख्य साधन है। ये ही मूल आधार है ऐच्छिक नियंत्रण का जिसके द्वारा कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती है।

उन्होंने यह भी जाना कि व्यक्ति मस्तिष्ककीय नियन्त्रण एवं एकाग्रता में एक स्तर तक कुशलता प्राप्त कर लेने से अपनी मेरुदण्ड के भीतर से दिव्य प्रकाश को मस्तिष्क तक थोड़े–2 समय के लिये पहुँचा सकते हैं। अभ्यास द्वारा हम इसकी गति में वृद्धि एवं इसकी मस्तिष्क में स्थिरता का समय भी बढ़ा सकते हैं। इससे मस्तिष्क में दिव्य चमत्कारी प्रभाव प्राप्त होते हैं जो कि भौतिक, नाशवान, सांसारिक लोक द्वारा सम्भव नहीं है।

मेरुदण्ड के भीतर जिस के द्वारा ये दिव्य शक्ति ऊर्ध्वगामी होती है उस मार्ग को योगियों ने सुषुम्ना के नाम से जाना। जो कि योग में वर्णित नाड़ियों में मुख्य नाड़ी कही जाती है। योग में अनेकों नाड़ियों की चर्चा मिलती है। आधुनिक वैज्ञानिक योग की इन गहनतम शक्तियों को अभी अपने आविष्कार द्वारा सिद्ध कर पाने में सक्षम नहीं हो पाये हैं, परन्तु फिर भी वे तंत्रिका तंत्र पर व्यक्ति के नियंत्रण की बात को स्वीकार करते हैं जिससे व्यक्ति दिव्य चमत्कार कर पाने में सक्षम हो जाता है।

21.7 कुण्डलिनी शक्ति जागरण में मानव शरीर की महत्ता

मानव शरीर एक मशीन है जो निरन्तर कार्य करती रहती है। अनेकानेक तन्त्र इसमें कार्य करते रहते हैं जो कि विभिन्न अंग अवयवों से युक्त होते हैं। शरीर में उपस्थित प्राण शक्ति कोशिकाओं तक पहुँचकर उन्हें ऊर्जावान बनाती हैं। यह प्राण शक्ति मस्तिष्क को अधिक ऊर्जा प्रदान करती है जिससे वह महत्वपूर्ण कार्य कर पाने में सफल हो। मस्तिष्क हमारे शरीर का मुख्य अंग होता है जो शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तीनों तरह के प्रभावों से युक्त होता है। इसी के द्वारा शरीर के सारे कार्य सुचारु रुप से नियंत्रित हो पाते हैं। इसलिये मस्तिष्क का हमारे शरीर में बहुत महत्व होता है।

मानव शरीर चेतना के एक सीमित दायरे तक ही पहुँच पाता है जो कि मस्तिष्क की क्षमता एवं शरीर के अन्य अंग अवयवों की क्षमता पर निर्भर करता है। हर व्यक्ति के शरीर की अपनी एक निश्चित चेतना शक्ति होती है जिसके कारण ही उसकी शारीरिक एवं मानसिक शक्ति उसी सीमा में कार्य कर पाती है।

शरीर की इस सीमित शक्ति के कारण ही हमारी इन्द्रियो (ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ) की कार्य क्षमता भी सीमित होती है। यही कारण है कि एक सामान्य व्यक्ति अपनी सीमा से ऊपर उठकर अतिन्द्रिय क्षमताओं का अनुभव नहीं कर पाता है। वह उच्चतम चेतना की हल्की सी

कल्पना कर पाने में भी सक्षम नहीं हो पाता। यह चेतना शक्ति हर व्यक्ति में अलग–2 स्तर की पायी जाती है जिसका प्रयोग शारीरिक और मानसिक क्रियाविधि के रुप में व्यक्ति अपने जीवन में करता है। यह पूर्ण चेतना शक्ति का बहुत छोटा सा हिस्सा होता है।

सामान्यतः माना जाता है कि ऐसी कोई क्रिया पद्धति नहीं है जो कि मानवीय मस्तिष्क के प्राकृतिक सीमित दायरे को बढ़ाते हुए उसकी क्षमता में वृद्धि कर पाये। उसे सामान्य से ज्यादा क्षमतावान बनाते हुए असीम क्षमताओं से परिपूर्ण कर दे। मस्तिष्क की शक्ति को कुछ हद तक तो बढ़ाया जा सकता है जिसमें अध्ययन आदि प्रक्रियायें सहायक होती हैं। परन्तु मस्तिष्क की क्षमता इतनी बढ़ा देना कि व्यक्ति को इन्द्रियों से परे का ज्ञान हो जाये, और उसे शरीर की क्षमता से अधिक अद्वितीय शक्ति प्राप्त हो जाये, तो ऐसे प्रमाण हमें वर्तमान में सामान्यतया सरलता से प्राप्त नही होते हैं। परन्तु मानवीय मस्तिष्क की चेतना को सामान्य से उच्च स्तर पर पहुँचाना सम्भव है। जिसका एक महत्वपूर्ण साधन योग विद्या है। योग के समस्त ग्रन्थ पूर्णतया इसी ओर अग्रसित करने की पद्धति को बताते हैं। इन ग्रन्थों का मूल उद्‌देश्य मानवीय चेतना को बढ़ाना एवं उसका उत्कर्ष ही है।

आधुनिक जीव विज्ञान इस बात को स्वीकार नहीं करता कि व्यक्ति का मस्तिष्क चेतना के उच्चतम शिखर को छू ले और उसके शरीर में उसका कोई प्रभाव न हो। वर्तमान की कुछ प्रक्रियाऐं जैसे आसन, प्राणायाम, ध्यान, मंत्र, उपवास, पूजा–पाठ, प्रार्थना आदि व्यक्ति के शरीर एवं मन दोनों को प्रभावित करती हैं। तो ये स्वाभाविक ही है कि उपरोक्त पद्धतियों द्वारा जो चेतनावस्था में आने वाला परिवर्तन है वह व्यक्ति के शरीर में भी परिवर्तन उत्पन्न करता है।

प्राचीन योगियों ने अपनी साधना पद्धति के दौरान शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के प्रभावों को अपने ऊपर अनुभव किया लेकिन उन्होंने क्रिया के शारीरिक प्रभाव पर ध्यान केन्द्रित न करके क्रिया के आध्यात्मिक प्रभाव पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित किया। यही कारण है कि मस्तिष्क में होने वाले परिवर्तन की तुलना में हमें यौगिक ग्रन्थों में शारीरिक परिवर्तनों एवं प्रभावों का वर्णन कम मिलता है।

यहाँ तक कि कुण्डलिनी योग में भी आध्यात्मिक आधार को योग में पूर्ण सफलता का एकमात्र साधन नहीं माना गया है। वहाँ भी शारीरिक अनुशासन एवं शरीर के आन्तरिक अंगों की शुद्धि की बात को प्राथमिकता दी जाती है। उसके बाद ही यौगिक आध्यात्मिक प्रक्रिया को अभ्यास करने का विधान बताया जाता है। यदि हम आध्यात्मिक अभ्यास एवं कुण्डलिनी शक्ति जाग्रति आदि के अभ्यासों पर दृष्टिपात करते हैं तो पायेंगे कि इन समस्त पद्धतियों एवं अनुभवों का जो माध्यम है वह एक मात्र जीवित शरीर ही है।

समस्त योगाभ्यासों को करने एवं उनमें पारंगत होने के लिए एक उचित स्वास्थ स्तर को बनाये रखना परम आवश्यक होता है। तभी हम इन अभ्यासों को कर पाते हैं। एक अस्वस्थ शरीर इन अभ्यासों को कर पाने में सक्षम नहीं हो सकता। अस्वस्थ शरीर द्वारा ये कठिन अभ्यास संभव नहीं होते हैं। तो इनके बाद किये जाने वाले और कठिन अभ्यास कैसे संभव हो सकते हैं।

यौगिक अभ्यास के अन्तर्गत आने वाली शुद्धि क्रियाऐं जिनका वर्णन इस प्रकार से है –

(1) नेति– इसमें शरीर से नाक तक की सफाई की जाती है जिसमें जल और सूत्र का प्रयोग होता है।

(2) धौति– इसमें सूती वस्त्र को खाकर आमाशय की सफाई की जाती है।

(3) वस्ति– इसमें पानी द्वारा बड़ी आँत की सफाई की जाती है।

(4) त्राटक– इसमें आँखों को एक टक देखा जाता है।
(5) कपालभाँति– इसमें श्वास की विशेष प्रक्रिया द्वारा मस्तिष्क की शुद्धि की जाती है।

इसके साथ ही प्राणायाम की प्रक्रिया के अन्तर्गत श्वास को रोककर उन पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है। आसन में शरीर को विशेष आकृति प्रदान कर उस पर स्थिरता के साथ लम्बे समय तक बैठने का अभ्यास किया जाता है। ये आसन 84 लाख योनियों के अनुसार 84 लाख की संख्या में ही बताये गये हैं। जिनका अभ्यास साधक को करना होता है।

अतः यह कहना गलत नहीं होगा कि उपरोक्त समस्त शारीरिक अभ्यास साधक की आध्यात्मिक उन्नति के लिए ही हैं। कुण्डलिनी योग में साधक के योगाभ्यास द्वारा शरीर को सुदृढ़ बनाने की प्रक्रिया कुण्डलिनी जागरण की प्रथम प्रक्रिया है। इससे उसका शरीर गतिशील शक्ति के उस विस्फोट से होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को सहजता से सहन करने में सक्षम हो पाता है।

अतः हम कह सकते हैं कि मानव शरीर कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया में शरीर का स्वस्थ होना परम आवश्यक है इसके अभाव में ये अभ्यास पूर्ण होना सम्भव नहीं है।

21.8 कुण्डलिनी जागरण के लाभ –

हठ प्रदीपिका में वर्णन मिलता है कि जिस प्रकार चाभी द्वारा घर का दरवाजा (किवाड़) खोला जाता है ठीक उसी प्रकार योगी कुण्डलिनी के द्वारा मोक्ष के दरवाजे को खोलता है और उसका भेदन करता है अर्थात् उस पर गति करता है।

आगे कहा गया है कि कन्द के ऊपरी भाग में सोयी हुई कुण्डलिनी योगियों के मोक्ष के लिये होती है जो इस शक्ति को जान जाता है वह वास्तव में योग को भी जान लेता है परन्तु मूर्ख लोगों के लिए यही शक्ति बन्धन का कारण बनती है। कुण्डलिनी जागरण के अनेक लाभ हैं किंतु प्रमुख लाभ इस प्रकार हैं :–

1. व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक योग्यताएं एवं क्षमताएं अत्यधिक बढ़ जाती हैं।
2. मनुष्य अद्भूत ऋद्धियाँ एवं सिद्धियों का स्वामी बन जाता है।
3. किसी के मन की बात जान लेना, भविष्य का पूर्व ज्ञान हो जाना, बहुत दूर की घटनाओं और दृश्यों को देख लेना, एक साथ कई रुप बना लेना आदि अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।
4. चाहे जब गायब हो जाना, चाहे जहाँ प्रकट हो जाना आदि क्षमताऐं हासिल होना।
5. उत्तम स्वास्थ्य, प्रभावशाली व्यक्तित्व, नेतृत्व क्षमता, प्रभावी भाषण कला आदि योग्यताएं प्राप्त होना।
6. स्थाई प्रसन्नता एवं परमानन्द की प्राप्ति।
7. समस्त विकारों काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, प्रमाद आदि पर पूर्ण नियंत्रण एवं समस्त दुख, भय, चिंता, निराशा, अभाव आदि कमजोरियों का पूर्णतः निवारण हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पिय प्रश्न –

(1) कुण्डलिनी के स्वरूप व स्थान का वर्णन हठप्रदीपिका के तृतीय उपदेश के किस श्लोक में किया गया है?

(अ) प्रथम (ब) द्वितीय

(स) तृतीय (द) उपरोक्त सभी में

(2) मादाम व्लैवेट्स्की ने कुण्डलिनी शक्ति की तीव्रतम गति बताई है?

(अ) 345000 मील प्रति सेकेण्ड (ब) 34400 मील प्रति सेकेण्ड

(स) 455000 मील प्रति सेकेण्ड (द) उपरोक्त कोई नहीं।

(3) कुण्डलिनी शक्ति को अन्य नामों से जाना जाता है।

(अ) कुठिलागी (ब) भुजंगी

(स) तपस्विनी (द) उपरोक्त सभी।

(4) हठप्रदीपिका में तृतीय उपदेश के कौन से श्लोक में कुण्डलिनी के नामों की चर्चा मिलती है।

(अ) 100वें (ब) 110वें

(स) 99 वें (द) उपरोक्त सभी में ।

रिक्त स्थनों की पूर्ति करो –

(1) व्यक्ति के मस्तिष्क में पिट्यूटरी ग्लेण्ड है, जो .... चक्र से सम्बन्धित है।

(2) मेरूदण्ड के भीतर जिसके द्वारा कुण्डलिनी शक्ति उर्ध्वगामी होती है, उस मसर्ग को योगियों ने .... नाम से जाना है।

(3) चैनिक योगप्रदीपिका में .... शक्ति को स्पिरट फायर कहा गया है।

(4) साधक के योगाभ्यास द्वारा शरीर को सुदृढ़ बनाने की प्रक्रिया कुण्डलिनी जागरण की .. .. प्रक्रिया है।

सत्य और असत्य को चिन्हित करें –

(1) कुण्डलिनी जागरण के पूर्व शरीर की शुद्धि की आवश्यकता नहीं होती है। (............)

(2) कुण्डलिनी जागरण से व्यक्ति की शरीरिक व मानसिक योग्यताए एवं क्षमताएँ अत्यधिक बढ़ जाती है। (............)

(3) परमपिता का अर्द्धनारीश्वर भाग शक्ति कहलाता है। (............)

(4) हठयोग हकार एवं ठकार के मिलन की प्रक्रिया नहीं है। (............)

21.9 सारॉश

प्रस्तुत इकाई में आपने कुण्डलिनी सम्बन्धित समस्त विषयों की जानकारी को विस्तार से जाना। आपने जाना कि –

परमपिता का अर्द्धनारीश्वर भाग शक्ति कहलाता है। यह ईश्वर की पराशक्ति है (प्रबल लौकिक ऊर्जा शक्ति)। जिसे हम राधा, सीता, दुर्गा या काली आदि के नाम से पूजते हैं। इसे ही भारतीय योगदर्शन में कुण्डलिनी कहा गया है। यह दिव्य शक्ति मानव शरीर में मूलाधार में (रीढ़ की हड्डी का निचला हिस्सा) सुषुप्तावस्था में रहती है। यह रीढ़ की हड्डी के आखिरी हिस्से के चारों ओर साढ़े तीन फैरे लगाकर कुण्डली मारे सोए हुए साँप की तरह सोई रहती है। इसीलिए यह कुण्डलिनी कहलाती है।

यह कुण्डलिनी जाग्रत होती है तो यह सहस्रार में स्थित अपने स्वामी से मिलने के लिऐ ऊपर की ओर उठती है। जागृत कुण्डलिनी पर समर्थ सद्गुरु का पूर्ण नियंत्रण होता है। वे ही उसके वेग को अनुशासित एवं नियंत्रित करते हैं। गूरुकृपा रुपी शक्तिपात दीक्षा से कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर 6 चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार तक पहँचती है। कुण्डलिनी द्वारा जो योग करवाया जाता है उससे मनुष्य के सभी अंग पूर्ण स्वस्थ हो जाते हैं। साधक का जो अंग बीमार या कमजोर होता है, मात्र उसी की यौगिक क्रियाऐं ध्यानावस्था में होती हैं एवं कुण्डलिनी शक्ति उसी बीमार अंग का योग करवाकर उसे पूर्ण

स्वस्थ कर देती है। इससे मानव शरीर पूर्णतः रोगमुक्त हो जाता है, तथा साधक ऊर्जा युक्त होकर आगे की आधात्मिक यात्रा हेतु तैयार हो जाता है। शरीर के रोगमुक्त होने के सिद्धयोग ध्यान के दौरान जो बाह्य लक्षण हैं, उनमें यौगिक क्रियायें जैसे दायें–बायें हिलना, कम्पन्न, झुकना, लेटना, रोना, हँसना, सिर का तेजी से घुमना, ताली बजाना, हाथों एवं शरीर की अनियंत्रित गतियाँ, तेज रोशनी या रंग दिखाई देना या अन्य कोई आसन, बंध, मुद्रा या प्राणायाम की स्थिति आदि मुख्यतः होती हैं।

"कुण्डलिनी शक्ति" एक ऐसा ही माध्यम है जिसके जागरण से मनुष्य आत्मसाक्षात्कार की ओर बढ़ सकता है यह मानव जीवन में छिपी एक ऐसी शक्ति केन्द्र है जो नर से नारायण बनने की महानतम क्रिया का सम्पादन करती है। हमें हमारे भीतर छिपे उन सात द्वारों का परिचय कराती है, जिसके माध्यम से आत्म जागरण कर मानव विलक्षणता को प्राप्त करता है।

हमारे ऋषि–मुनियों ने दिव्य ज्ञान कैसे पाया? कैसे यहीं बैठे उन्होंने वो सब कुछ कह डाला और लिख डाला जो अत्यन्त ही रहस्यमयी रहा। पंचमहाभूतों से बने शरीर मे दृश्यता है पर त्रियामी शक्तियाँ वायु, अग्नि और आकाश से बने स्थूलशक्तियों को हम देख नहीं पाते अनुभत ही करते हैं। इसे देख पाना तभी संभव है जब हममें स्वंय दिव्यता का संचार हो और यह तभी संभत हो सकता है जब हमारे ज्ञान चक्षु खुले हों। हमारे शरीर में तीन प्रधान नाड़ियाँ हैं, जो हमारे शरीर को नियंत्रित किये हैं। इड़ा अर्थात् दायां स्वर, पिंगला अर्थात बायां स्वर और सुषुम्ना नाड़ी जो हमारे श्वास नलिका के साथ हमारे मस्तिष्क में स्थित है जिसका जागरण ही त्रिनेत्र का खुलना कहा जाता है। यही सिक्स सेन्स है। श्वास–प्रश्वास के द्वारा ऑक्सीजन गैस हमारे शरीर को ऊर्जा प्रदान कर रही है। जो श्वास हम लेते हैं वह सूक्ष्म रुप से हमारे भीतर प्रकाश उत्पन्न कर बाहरी और आंतरिक अनुभूतियाँ कराता है इसी को ही प्राण कहा गया है। यही श्वास–प्रश्वास के द्वारा जब सुषुम्ना नाड़ी में सम्मिश्रित होता है तब दिव्य प्रकाश उत्पन्न होता है। इसी को ज्ञान का जागरण कहते हैं। इसी को कुण्डलिनी कहा गया है। इसके द्वारा हम देह के ही नहीं समस्त ब्रम्हांड के रहस्यों को जान सकते हैं।

21.10 शब्दावली

- कौतुहल – उत्साह
- वलय – गोले
- पंचमहाभूत – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश
- अतीन्द्रिय – इन्द्रियों से परे
- उष्णता – गर्मी

21.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- **बहुविकल्पिय प्रश्नों के उत्तर –**

(1). अ (2). अ (3). द (4). अ

- **रिक्त स्थानों के उत्तर –**

(1) सहस्त्रार (2) सुषुम्ना (3) कुण्डलिनी (4) प्रथम

- **सत्य और असत्य प्रश्नों के उत्तर –**

(1) असत्य (2) सत्य (3) सत्य (4) असत्य

21.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हठप्रदीपिका – स्वात्माराम सूरी
2. योगविज्ञान – विज्ञानानंद सरस्वती
3. कुण्डलिनी योग – सत्यानंद सरस्वती
4- Kundalini – Pandit Gopi Krishna
5- Kundalini for Beginners – Dr. Ranvindra Kumar

21.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कुण्डलिनी से आप क्या समझते हैं?
2. कुण्डलिनी का अर्थ समझाते हुए विभिन्न विद्वानों द्वारा दिये गये मतों का वर्णन करें।
3. कुण्डलिनी शक्ति और आत्मज्ञान में क्या सम्बन्ध है?
4. कुण्डलिनी शक्ति जागरण प्रक्रिया का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हुए शरीर के महत्व को समझायें हुए।
5. आध्यात्मिक क्षेत्र में कुण्डलिनी का क्या योगदान है? स्पष्ट करें।